परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

❊ जन्मदिवस 19–03–1971 ❊ मुनिदीक्षा–11–05–1989 ❊ आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणाः–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

जैनों का संक्षिप्त इतिहास, दर्शन, व्यवहार एवं वैज्ञानिक आधार

लेखक
छगनलाल जैन

प्रकाशक
राजस्थानी ग्रन्थागार,
जोधपुर (राजस्थान)

(परम्परानायक)

परम पूज्य चारित्र-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)

परम पूज्य तीर्थभक्त-शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)

परम पूज्य सिद्धान्त-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

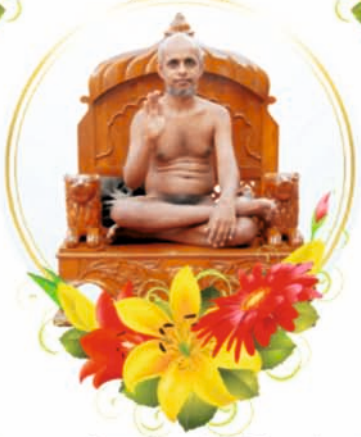

परम पूज्य तपश्चर्या-चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्रायः होता है। फलतः उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तृत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि-परिवार

जैनों का संक्षिप्त इतिहास, दर्शन, व्यवहार एवं वैज्ञानिक आधार

छगनलाल जैन (Retd. I.A.S.), डॉ. संतोष जैन, डॉ. तारा जैन

अर्हम्
21 जून 2013

उस लेखन का
महत्व होता है,
जो सत्याधारित और
दूसरों का पथदर्शन
करने वाला होता है।
श्री छगनलाल जैन
द्वारा प्रस्तुत 'जैनों
का संक्षिप्त इतिहास,
दर्शन व्यवहार एवं
वैज्ञानिक आधार'
पुस्तक पाठकों का
ज्ञानवर्धन और पथदर्शन
करने वाली सिद्ध हो।

शुभाशंसा
जोधपुर (राजस्थान)
आचार्य
महाश्रमण

जैनों का संक्षिप्त इतिहास, दर्शन, व्यवहार एवं वैज्ञानिक आधार

छगनलाल जैन
सेवानिवृत्त आई.ए.एस.
डॉ. श्रीमती संतोष जैन डॉ. श्रीमती तारा जैन

राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर

❖ *प्रकाशक :*

राजस्थानी ग्रन्थागार

प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता

प्रथम माला, गणेश मंदिर के पास,
सोजती गेट, जोधपुर (राजस्थान)
☎ 0291-2657531, 2623933 (O)
e-mail : info@rgbooks.net,
rgranthagar@satyam.net.in
website: www.rgbooks.net

❖ © लेखक

❖ ISBN - 978-81-86103-03-9

❖ **पहला संस्करण : 2013**

❖ **मूल्य : ₹400.00** (चार सौ रुपये मात्र)

राजस्थानी ग्रन्थागार के लिए टाईप सैटिंग परिहार डीटीपी एवं मुद्रण भारत प्रिंटिंग प्रेस, जोधपुर द्वारा

'Jaino Ka Sankshipt Itihas,
Darshan, Vyavahaar Evam Vegyanik Aadhar'

by Chaganlal Jain

Publisher: **Rajasthani Granthagar**, Sojati Gate, Jodhpur (Raj.)

First Edition : 2013 Price : ₹400

।। सम्यग् ज्ञान प्रदा भूयाद् भव्यानाम् भक्ति शालिनी
माता सरस्वती के चरणों में सादर समर्पित।।

प्रस्तावना

बहुत समय से एक ऐसे ग्रंथ की आवश्यकता थी जिसमें जैनों का संक्षिप्त इतिहास, उसका दर्शन, आचरण, और विज्ञान की नवीनतम् खोजों के अनुसार उसकी वैधता, सीमाऐं आदि हों। जिसके आधार पर यह साबित हो कि वह मानव धर्म बनने की योग्यता रखता है तथा विज्ञान एवं जैन दर्शन एक दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि सहयोगी हैं। इस हेतु कुल लगभग चार भागों में लेखों को विभक्त किया गया है।

प्रथम भाग में जैनों के इतिहास की रूपरेखा, हिन्दी, अंग्रेजी दोनों में, दूसरे एवं अन्य लेख–पोरवाल, ओसवाल श्रीमाल एक हैं एवं एक लेख महावीर के जीवन के मार्मिक प्रसंगों पर है। इतिहास के इन चंद पन्नों से हमारे महान आचार्यों, उनकी रचनाओं से हम परिचित होते हैं तथा महावीर के अनुयायी कहलाने के सार्थक भी हो सकते हैं। बाइबिल व जैन दर्शन में अहिंसा सम्बन्धी महात्मा ईसा मसीह की धारणाऐं अत्यन्त मार्मिक एवं महावीर की तरह प्रभावशाली हैं।

जैन दर्शन पर भिन्न–भिन्न विषयों पर लगभग ग्यारह लेख प्रस्तुत किये हैं जो नवकार महामंत्र, तत्वार्थसूत्र का संदेश, प्रतिक्रमण के महत्वपूर्ण तीन सूत्र वंदित्तु, सकलाहर्त, अजित शान्ति एवं परम श्रद्धेय आचार्य राजेन्द्रसुरी जी की अंतिम–देशना के रूप में मय सरलार्थ एवं श्रद्धाँजलि हैं। इसके साथ तत्वार्थ का मूल संदेश हिन्दी–अंग्रेजी में एवं कर्म–निवारण का संक्षिप्त छठा पाठ है मय कुछ अन्य दोहों के। इसके अलावा परमकृपालु देव श्रीमद्

राजचन्द्र के उद्‌गार, सम्यग् दर्शन, गुणस्थान, अनेकान्त एवं स्याद्वाद आदि सभी वर्गों के लिये उपयोगी ग्यारह लेख दर्शन भाग में हैं।

सभी वर्गों के लिए उपयोगी दस लेख आचार–व्यवहार भाग में सम्मिलित हैं। जो साम्प्रदायिकता, सुसंस्कार–अनेकान्त दृष्टि से, शाकाहार, मनुष्य जन्म से नहीं कर्म से महान होता है, हैं। गांधीजी की अहिंसा आधारित राजनैतिक, सामाजिक क्रांति, गुणानुराग, मेडकाऊ, बर्डफ्लू (Madcow disease bird flu, Dengue flu) बीमारियों से कत्ल, आरोपित गायों, मुर्गियों का कत्ल, गुणानुराग, जैन साहित्य का विश्व पर प्रभाव आदि हैं।

अन्त में जैन दर्शन और विज्ञान कहाँ तक समकक्ष, आगे या पीछे हैं एवं वर्तमान विश्व के लिये इन दोनों की एक दूसरे के पूरक रूप में आवश्यकता है इत्यादि का इस ग्रंथ में दोनों भाषा हिन्दी व अंग्रेजी में उल्लेख किया गया है। विज्ञान की नवीनतम्‌खोजों ने जैन दर्शन के हजारों वर्ष पूर्व घोषित सृष्टि के रचयिता, रचना, अणु–परमाणु, अनेकांत, जीव विकास पर बहुत हद तक समानता पायी है। विज्ञानानुसार सूक्ष्मतम जीव बेक्टीरिया, फफूंद के जीव, वायरस, प्रोटोजोआ आदि भी लाभप्रद एवं हानिप्रद हैं। इनसे ही दूध से दही बनता है। पेन्सीलिन व अन्य प्रभावी दवाएँ बनती हैं।

हमारी ऐतिहासिक उपलब्धियों के बारे में सामान्यतः अज्ञानता है। अतः संक्षेप में यह लेख उसकी पूर्ति कर सकेगा। 'पोरवाल, ओसवाल और श्रीमाल' की उत्पत्ति के लेख में ये जातियाँ जैनियों में वास्तव में एक ही गुरु–शिष्य द्वारा बनाई गयीं थीं, ऐतिहासिक प्रमाणों से दर्शाया है। नवकार महामंत्र के संदर्भ में इस महामंत्र की विशिष्टता को गहराई से पन्द्रह पृष्ठों में दर्शाया गया है। दर्शन के स्त्रोत गुण–स्थान, सम्यक्–दर्शन, प्रतिक्रमण–सूत्र, विश्वस्तरीय–जैन–साहित्य का उल्लेख, महावीर के जीवन के मार्मिक प्रसंग, श्रीमद् राजचन्द्र के उद्‌गार आदि लेखों में जैन

दर्शन की विशिष्टता, महत्वपूर्ण सिद्धान्त एवं आचरण की प्रेरणा, अनेकान्त दर्शन इत्यादि महत्वपूर्ण उल्लेख इन लेखों में उतारा गया है।

आचार–व्यवहार में जैन दर्शन एवं हमारी जीवन–पद्धति, मनुष्य, जन्म से नहीं कर्म से महान होता है, अहिंसा और शाकाहार, नशामुक्त–जीवन, विश्व में पशु, पक्षी, वध और शाकाहार हमारा त्राण, श्रेष्ठ आहार आदि अन्य उपयोगी लेख सम्मिलित किये गये हैं। अन्य लेख विज्ञान की रोशनी में जैन दर्शन है। वर्तमान युग में कोई दर्शन केवल पूजा–पद्धति, कर्मकाण्ड, देवी–देवताओं के भय, भ्रम पर नहीं चल सकता जब तक कि उसके सिद्धान्त प्रकृति के पोषण वनस्पति एवं जीव के विकास, मानव एवं अन्य जीवों के सहअस्तित्व पर निर्भर न हों। जैन दर्शन कितने सही अर्थों में विज्ञान सम्मत मानवतावादी धर्म है, प्रकृति एवं पर्यावरण के अनुकुल है, उसके आलोक में विज्ञान भी कितना और विकास कर सकता है।

एककोशिय वायुकाय जीवों पर विज्ञान के आधार पर उपयोगी लेख है। किस प्रकार प्रदूषण हमारी वायु, पृथ्वी, पानी, ईंधन, जीव मात्र के लिये घातक है, ध्यान देने योग्य है। उसका विज्ञान की नवीनतम खोजों के आधार पर विश्लेषण किया गया है जो जैन, अजैन समस्त वर्गों के लिए उपयोगी है। जैन–दर्शन ज्ञान और विज्ञान तथा समस्त जैन सम्प्रदाय भी एक दूसरे के पूरक हैं, विरोधी नहीं, सहयोगी हैं। जैनत्व , अहिंसा , सत्य , अनेकांत और अनासक्ति पर आधारित गंभीर एवं व्यापक दृष्टिकोण वाला दर्शन है। मेरे द्वारा इन लेखों से जैन एवं इतर जैन बंधुओं को इससे अवगत कराना प्रमुख उद्देश्य रहा है। कई लेख अंग्रेजी में स्वतंत्र अनुवाद के रूप में भी साथ–साथ लिख दिये हैं कि ताकि वर्तमान युग में कन्वेंट में पढे छात्र एवं अहिन्दी भाषा–भाषी अंग्रेजी के जानकार भी, उन से लाभान्वित हों।

इस पुस्तक के लिखने की प्ररेणा मुझे श्रद्धेय मुनिश्री रिषभविजयजी ने दी जो महाप्रभावी हैं। ज्योतिषाचार्य होने के साथ–साथ महान तीर्थ मोहनखेड़ा के सुसंचालन में मुख्य भूमिका निभाते हैं। मैं उनका हृदय से आभारी हूँ। नतमस्तक पूर्वक वंदना करता हूँ।

अन्त में हमारे त्रिस्तुतिक संघ के उदयमान आचार्य श्री रविन्द्रसुरी जी के प्रति मेरी सम्पूर्ण कृतज्ञता, वंदना प्रकट करता हूँ जो सदा ही ज्ञानवृद्धि में, जैसे मेरे द्वारा तत्वार्थ सूत्र के हिन्दी, अंग्रेजी अनुवाद पुस्तक प्रकाशन में भी तथा इस पुस्तक के प्रकाशन के लिए भी परम सहयोगी रहे हैं।

अन्त में मैं विशेष आभार मेरी बेटियाँ डॉक्टर संतोष जैन, एवं डॉ. तारा जैन के लिए भी प्रकट करना चाहता हूँ जिनकी इन लेखों के सम्पादन में काफी भागीदारी रही है। वास्तव में उन सबका आभारी हूँ व रहूंगा जो इन लेखों को आप तक पहुंचाने में सहयोगी होंगे और लाभान्वित होंगे। विनम्रता पूर्वक कमियों (त्रुटियों) के सुधार के लिए सुझावों की भी आपसे अपेक्षा करता हूँ।

विनीत

छगनलाल जैन

आशीर्वचन

ऊँ अर्हम्

श्री छगनलाल जैन द्वारा तत्वार्थ सूत्र जैसे मौलिक ग्रंथ जो समस्त आगम के सार रूप में पहला संस्कृत ग्रंथ है का हिन्दी, अंग्रेजी में सूत्रों का निकटतम् अनुवाद करने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। उसी क्रम में उन्होंने तथा उनकी पुत्री डॉ. संतोष जैन एवं डॉ. तारा जैन के सहयोग से जैन–इतिहास, जैन दर्शन व्यवहार एवं जैन दर्शन तथा विज्ञान का सापेक्षिक सम्बन्ध आदि पर लगभग इकतीस उपयोगी लेख लिखे हैं; जो उनके अध्ययनशीलता, गहन ज्ञान एवं जिज्ञासु प्रकृति एवं श्रम साधना के परिचायक हैं। श्री जैन, उनकी पुत्रियों एवं परिवार को मैं हार्दिक आशीर्वाद देता हूँ एवं इन सबके कल्याण की कामना करता हूँ । वे उत्तरोत्तर ऐसे पुनीत प्रयास करें। मुझे पूर्ण विश्वास है कि जैन एवं अन्य समाज का बौद्धिक वर्ग इनके प्रयास से बहुत लाभान्वित होगा। हिन्दी अंग्रेजी दोनों भाषाओं में कई महत्वपूर्ण लेख हैं। अतः अंग्रेजी भाषा–भाषी व अहिन्दी भाई–बहिन व समस्त पाठकगण देश भर में जैनत्व पर आधारित इन लेखों से लाभान्वित होंगें, आध्यात्म की ओर जीवन में अग्रसर होंगे ।

त्रिस्तुतिक संघ के आचार्य

श्री रविन्द्र सुरी

विषय-सूची

I. **जैनों का इतिहास**

1 जैनों का संक्षिप्त इतिहास 13

2 ऐतिहासिक प्रमाणों से पोरवाल ओसवाल एवं श्रीमालों के एक होने की पुष्टि 27

3 महावीर के जीवन के मार्मिक प्रसंग 38

4 जैन दर्शन एवं बाईबिल में महत्वपूर्ण समानता 43

5 Glimpses of History of Jains 48

II. **जैन दर्शन**

1 नवकार महामंत्र 65

2 सम्यक् दर्शन 88

3 गुण स्थान 94

4 Gunāsthana 102

5 अनेकान्त एवं स्याद्वाद 106

6 खरतर तपागच्छीय देवासिय राईय, पक्खि चउमासिय, एवं संवत्सरी श्रावक प्रतिक्रमण के प्रमुख तीन सूत्रों पर प्रकाश (1) वंदित्तु सूत्र (2) सकलार्हत एवं (3) अजित शांति 120

7 परम कृपालु देव श्रीमद् राजचन्द्र के उद्‌गार 127

8 परमश्रद्धेय गुरुदेव श्रीमद् राजेन्द्रसूरी की अन्तिम देशनामय सरलार्थ एवं श्रद्धांजलि 132

9 तत्वार्थ सूत्र की विषयवस्तु एवं संदेश 139

10 Message ot Tattvarth Sutra 147

11 कर्मबन्धन के कारण एवं क्षय तत्वार्थ के आलोक में..155

III. आचार-व्यवहार

1 जैन दर्शन एवं हमारी जीवन पद्धति (प्रयोग आधारित)..181

2 जैन साहित्य का विश्व पर प्रभाव 185

3 गुणानुराग 191

4 शाकाहार–जगत का त्राण 197

5 मनुष्य जन्म से नहीं कर्म से महान होता है 201

6 सुसंस्कार अनेकान्त दृष्टि से 207

7 साम्प्रदायिकता 212

8 नशामुक्ति शिविर एक अनुभव 218

9 An Appraisal of Gandhi and his ideas 224

10 How can the old age be made happy 230

11 Bovine slaughter and bird flu 235

12 A case for Vegetarianism 239

IV. जैन दर्शन एवं आधुनिक विज्ञान

1 जैन धर्म एवं आधुनिक विज्ञान 247

2 Jain Religion and Modern Science 260

3 विज्ञान के अनुसार सूक्ष्मतम वायु काय के जीवाणुओं का संरक्षण किस तरह 275

जैनों का इतिहास

जैनों का संक्षिप्त इतिहास

चौबीस तीर्थंकरों में से भगवान महावीर को ही ऐतिहासिक पुरुष माना जा सकता है। बौद्ध ग्रंथ जो बुद्ध के निर्वाण के तत्काल बाद बने उनके अनुसार महावीर बुद्ध के समकालीन थे तथा उनसे 30 वर्ष पूर्व ही पावापुरी में मोक्ष सिधार गये थे। जैन श्वेताम्बर परम्परा अनुसार ही महावीर के लगभग एक हजार वर्ष बाद 'आगम' संकलित व लिपिबद्ध किये गये तथा जो श्रुति की परम्परा के अनुसार महावीर के समय से चले आ रहे थे, उनके अनुसार वर्द्धमान महावीर का जन्म बी.सी. 599 (ईसा. पूर्व) चैत्र सुद तेरह ज्ञात्र क्षत्रिय कुल में वैशाली कुण्डग्राम, वर्तमान में पटना से 43 किलोमीटर दूर हुआ था। तब मगध पर श्रेणिक और उसके पुत्र कुणिक का राज्य था। बौद्ध–ग्रंथों के अनुसार तब शासक बिम्बसार और उसका पुत्र अजात शत्रु था। वस्तुतः 'दसा श्रुत स्कंध' (जैन) में पूरा नाम श्रेणिक–बिम्बसार लिखा हुआ है।

महावीर एवं बुद्ध दोनों अनुयायियों को "जिन" कहते थे। "आचारांग" सूत्र एवं "कल्पसूत्र" में जैनों को निर्ग्रन्थ कहा गया है। घोर तप कर निर्ग्रन्थ, राग द्वेष रहित बनने के लिये भी "जिन" कहलाते थे। जैनों के अनुसार उनकी ऐतिहासिकता बौद्धों तक यानी जैनों की महावीर तक सीमित नहीं थी क्योंकि महावीर के माता–पिता भी 23 वे तीर्थंकर पार्श्वनाथ के अनुयायी थे जो महावीर से 250 वर्ष पूर्व थे।

जैन दर्शन के पौराणिक मतानुसार विश्व और जैन धर्म दोनों अनादि हैं। समस्त काल चक्र का उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी दोनों

बराबर अर्द्ध चक्रों में विभाजन किया गया है। जिनमें प्रत्येक में छः छः (कीलें) आरे हैं। जैसे अवसर्पिणी में (1) सुषमा–सुषमा, (2) सुषमा, (3) सुषमा–दुषमा, (4) दुषमा–सुषमा, (5) दुषमा, (6) दुषमा– दुषमा है। प्रथम तीन आरों में लगभग 9 करोड़–करोड़ सागरोपम वर्ष समाप्त हो जाते हैं। सागरोपम से तात्पर्य जिसकी संख्या में गिनती संभव नहीं है। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव तीसरे आरे में हुए एवं उनका निर्वाण तीसरे आरे की समाप्ति के 3 वर्ष 8.5 माह पूर्व हुआ। शेष सभी तीर्थंकर चौथे आरे में हुए। हम अभी पाँचवे आरे में जी रहे हैं क्योंकि महावीर का निर्वाण पाँचवे आरे के प्रारम्भ से 3 वर्ष 8.5 माह पूर्व हुआ। 22 वे तीर्थंकर श्री अरिष्ट नेमी महावीर के निर्वाण से 84 हजार वर्ष पूर्व हुए तथा 21 वे तीर्थंकर उनसे पांच लाख वर्ष पूर्व हुए क्योंकि प्रथम आरा 4 करोड़– करोड़ सागरोपम वर्ष, द्वितीय तीन करोड़–करोड़ व तृतीय दो करोड़ –करोड़ एवं चतुर्थ एक करोड़ सागरोपम वर्ष में 42 हजार साधारण वर्ष कम लम्बा युग था। पाँचवा आरा 21000 साधारण वर्ष तथा छठा 21000 साधारण वर्ष का है। यही क्रमवार उत्सर्पिणी काल का रहता है।

उक्त तीर्थंकरों आदि महामानवों का वर्णन श्वेताम्बरों और दिगम्बरों दोनों के कई ग्रंथों में किया गया है । इनमें सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ आचार्य हेमचन्द द्वारा रचित "त्रिसृष्टि शलाका पुरुष चरित्र" है जिसमें 24 तीर्थंकर ,12 चक्रवृति, 9 बलदेव , 9 वासुदेव एवं 9 प्रतिवासुदेवों का वर्णन है। बलदेव उनके भ्राता वासुदेव कृष्ण तीर्थंकर नेमिनाथ के समय में हुए। प्रथम तीर्थंकर ऋषभेदव का वर्णन "विष्णुपुराण" व "भगवत पुराण" में मिलता है। उनके पुत्र भरत के नाम पर भारत वर्ष कहलाया। उसके पूर्व यह हिमवर्ष कहलाता था। अन्य किसी तीर्थंकर का हिन्दु ग्रंथों में उल्लेख नहीं है।

जैन–मत वैदिक–मत से बिल्कुल भिन्न है। ऋग्वेद में न पुनर्जन्म है, न कर्म सिद्धान्त है न निर्वाण है। वेदों में पशुओं की

बलि देना, देवताओं को प्रसन्न करने के लिये तथा मृत्यु के बाद स्वर्ग दिलाने हेतु बताया गया है। सौमरस पान से सभी इच्छित वस्तुएँ यहीं प्राप्त होना बताया गया है। इस हेतु पुरोहित सही मंत्रोच्चारण कर उचित माध्यम बनते थे। जैनों में न मंत्र है, न पुरोहित, न पशुबलि, न सोमरस। जैनों के महान तीर्थंकर क्षत्रिय थे जबकि उनके पुरोहित ब्राह्मण। इसी प्रकार ध्यान (योगशास्त्र), परमाणु सिद्धान्त (वैशेषिक), पदार्थ की अविनाशिकता (सांख्य–दर्शन), वैदिक–दर्शन से परे है, जिनका जैन दर्शन में समावेश है। इन अवैदिक प्रणालियों के प्रणेता कपिल, कणाद आदि भी 'तीर्थंकर' कहलाते थे। 24 वे तीर्थंकर महावीर ने 30 वर्ष की आयु में पंचमुष्ठि लोच कर दीक्षा अंगीकार की। साढे बारह वर्ष के घोर तप के उपरान्त उन्हे कैवल्य ज्ञान हुआ। तपस्या काल में उन्होंने केवल 350 दिन भोजन किया, 4166 दिन निर्जल उपवास रखे। उनका सर्वाधिक लम्बा उपवास 6 माह में 5 दिन कम का था। उन्होंने अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह व अनेकांत तथा स्याद्वाद के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया।

इन्द्र द्वारा ब्राह्मणी देवनंदा के कुक्षी से भ्रूण हटाकर माता त्रिशला के गर्भ से वर्द्धमान के जन्म लेने की जानकारी स्वयं महावीर ने गौतम के प्रश्न पर दी क्योंकि जब ब्राह्मण ऋषभदत्त एवं देवनन्दा उनके दर्शनार्थ आए तब देवनन्दा के स्तन से दूध बहने लगा। उसकी चोली खिंचने लगी शरीर की रोमावली के रोम , हर्षतिरेक से खड़े हो गये जैसे वर्षा के बाद कदम्ब का वृक्ष खिल उठता है। वह एकटक भगवान महावीर को देखने लगी। "ऐसा क्यों हुआ?" इस पर महावीर ने बताया यह ब्राह्मण स्त्री देवनंदा, मेरी माँ है जो मुझे वात्सल्य भाव से देख रही है। क्योंकि मेरी प्रथम उत्पत्ति उससे ही हुई थी। इसका वर्णन भगवती सूत्र (आगम) में उपरोक्त प्रकार से है।

महावीर ने 30 वर्ष की उम्र में संसार त्यागने पर पंचमुष्टि लोच करते हुए व्रत लिया कि मैं अब से कोई सावध कर्म नहीं

करूँगा। प्रथम चौमासा अस्थिग्राम में किया जहाँ प्रारम्भ में ही उनकी अहिंसा एंव निर्भयता की कठोर परीक्षा शूलपाणि यक्ष मंदिर में हुई। यक्ष जो पूर्व–भव में वृषभ था जो सेठ की लाभ/लोभ वृति के कारण बहती नदी में से शकट (बैलगाड़ी) के अधिक भार को निर्ममता पूर्वक खींचे जाने से सेंध टूटने व वहीं ग्राम में गिर पड़ने का शिकार था तथा जिसे ग्रामवासियों ने उसके लिये दिया गया जीवतव्य हड़प कर भूखों प्यासों मरने को बाध्य कर दिया था। उन पर वह दुर्दान्त रूप से कुपित था। महामारी अकाल आदि से ग्रामजन अस्थियों के यत्रतत्र ढेर बन चुके थे। जिसके विकराल अट्ठहास एवं नृश्संता से कोई भी जीवित नहीं बचता था। उसे अपनाने, शांत व अहिंसक बनाने का संकल्प महावीर ने लिया। उसके सारे क्रोध के भाजन बने।

उनकी ममतामयी करूणा ने उन पर किये गये वार विफल कर दिये। वह प्रभु चरणों में गिर पड़ा, वैर–भाव भूलाकर। तभी दुज्यंत आश्रम में ध्यान करते हुए अकाल ग्रस्त प्रदेश की गऊऐं उनकी कुटिया के छप्पर को तोड़ ले जाने पर आश्रम वासियों द्वारा उन्हें उलाहना मिला। तब आत्म– साधना हेतु उन्होंने और कठोर व्रत लिया। जहाँ अवमानना, घृणा न हो वहाँ रहकर खण्डहरों, वीरान जंगलों में ध्यान किया जाये। अधिकाशंतः मौन रखा जाये। देह धारण के लिए अँजलि भर से अधिक भोजन न लिया जाये । मुक्ति पथ की इस लम्बी यात्रा में (42 चौमासे) निम्न प्रकार किये –अस्थिग्राम (1) , चंपापुरी(3), वैशाली तथा बनियाग्राम (12), राजगिरि तथा नन्दा (14), मिथि (6), बदिधित्ता (2), अलाबिया (1) , पालिया भूमि (1) , सावत्शी (1), पावा (1)।

इसी प्रकार अहिंसा, अपरिग्रह, सत्य, आचौर्य एवं ब्रह्मचर्य के कठोर तप प्रयोग किये। उनकी अनार्य–देश की यात्रा में उन पर कुत्ते छोड़े गये। उन्हें काटा गया, बांधा गया, गुप्तचर समझकर उन्हें यातनायें दी गयीं । यहाँ तक कि शूलि पर चढ़ाने अथवा बलि देने के लिये लाया गया। फिर भी वे अंहिसा पथ से

विचलित नहीं हुए। साधना–काल में प्रथम वर्ष में ध्यान अवस्था में ग्वाले ने अपने बैल पुनः न मिलने पर और उत्तर न पाने पर चर्म जुए से निर्ममता पूर्वक पीटा। इन्द्र उनकी रक्षा के लिए उपस्थित होने पर उसे कहा "आत्मा मुक्ति का मार्ग स्वालंबन का मार्ग है, इसमें किसी के सहारे की आवश्यकता न कभी रही है, न रहेगी।" साधना काल के लगभग साढे बारह (12.6) वर्षों में केवल 350 दिन छोड़कर, महावीर ने निर्जल उपवास किये।

महावीर के बाद के जैन संघ में प्रथम छः आचार्य सुधर्मा, जम्बू, अप्रभव, शंयंभव, यशोभद्र एवं भद्रबाहु तथा संभूतविजय हुए। जम्बू अंतिम केवली हुए। श्रुतकेवलि– शंयंभव ने अपने पुत्र मणक शिष्य को संक्षेप में समस्त जैन दर्शन का ज्ञान कराने के लिए दशवैकालिक सूत्र की रचना, दस अध्याय मात्र में कर दी। जिसे मणक ने छः माह में ही अध्ययन कर लिया। उसकी तब मृत्यु हुई जिसका पूर्व बोध शंयंभव को होने से ही उन्होंने उक्त रचना की थी। पुत्र शिष्य की मृत्यु पर गुरु को गहन शोक हुआ। तब शिष्यों ने पूछने पर मणक उनका पुत्र होने का रहस्य बताया। पहले नहीं बताने का कारण बताया कि पहले बता देने पर मणक को ज्ञात होने पर गुरु शिष्य का अनुशासन नहीं रह पाता। शिष्यों के आग्रह पर उक्त ग्रंथ को लुप्त नहीं किया।

भद्रबाहु–प्रथम, अंतिम श्रुतकेवलि थे। जिन्हें 14 पूर्व एवं 12 अंगों का ज्ञान था। महावीर निर्वाण के 170 वर्ष बाद उनका स्वर्गवास हुआ। भयंकर अकाल में साधुओं का नियमित अध्ययन छूट गया था। तब भद्रबाहु नेपाल चले गये थे। स्मृति से उनके साधुओं ने 11 अंगों की रचना की। लेकिन दृष्टिवाद, जो 12 वां अंग था, रह गया। तब श्री संघ ने आदेश दिया कि भद्रबाहु स्वामी पाटलीपुत्र संघ सभा में आवें। लेकिन उनका महाप्राण व्रत वहाँ प्रारम्भ हो जाने से वे बारह वर्ष तक नहीं आ पाये। इस पर संघ के आदेश से नेपाल में ही 500 साधुओं को दृष्टिवाद सीखाना शुरू किया। तदुपरान्त भद्रबाहु ने नेपाल छोड़कर भारत की ओर

प्रयाण किया वे पटना आये। परन्तु इस विहार में स्थूलिभद्र के अलावा उनके सभी शिष्य पिछड़ गये। पटना में भद्रबाहु ने स्थुलिभद्र को अपना समस्त ज्ञान देने का प्रयास किया। स्थूलीभद्र की सात बहिने वहाँ जब दर्शनार्थ आईं तो उन्हें चमत्कृत करने के लिये स्थूलिभद्र सिंह बन गये। भद्रबाहु को पता चला तो उन्होंने स्थूलिभद्र को आगे सीखाने से मना कर दिया। सारे संघ की विनती पर शेष अंग या पूर्वों का ज्ञान इस शर्त पर करवाया कि वे आगे चार अध्याय किसी को नहीं पढायेंगे। भद्रबाहु के बाद स्थूलिभद्र आचार्य हुए तब चन्द्रगुप्त मोर्य का शासन था।

अशोक के पौत्र सम्प्रति थे। उन्होंने जैन धर्म का दक्षिण भारत में भी प्रचार किया। तमिलनाडू में ब्राह्मिलिपि में 300 बी. सी. में लिखाये शिलालेख प्राप्त हैं। वे जैनों के बताये जाते हैं। जो मदुराई व तिन्नेवली जिलों में हैं। ईसा की पहली कुछ शताब्दियों में जैन धर्म ने तामिल साहित्य पर भी प्रभाव डाला। अशोक से 100 वर्षों के भीतर जैन धर्म पश्चिम में पठानकोट तक पहुंच गया। तब जैनाचार्य सुहस्तिन और उनके शिष्य रोहरण थे, जिनके शिष्यों ने वहाँ प्रचार किया था।

ईसा की पांचवी सदी में वल्लभी नगर गुजरात में आचार्य क्षमाश्रमण देवर्द्धि के नेतृत्व में अब तक श्रुति परम्परा पर तीर्थंकरों एवं मुख्यतः महावीर से गणधरों को जो आगम ज्ञान प्राप्त था, वह पीढी, दर पीढी शुद्ध श्रवण, उच्चारण एवं स्मरण से चला आ रहा था तथा जिसके दीर्घकाल प्रवाह से नष्ट होने की आशंका थी। उसे श्वेताम्बर धर्मगुरुओं के सम्मेलन में संकलित, संग्रहित कर लिपिबद्ध कर लिया गया। कल्पसूत्र पूरा हुआ जो भद्रबाहू ने प्रारम्भ किया था। 11 अंगों की रचना की गई जो निम्न है –

(1) आचारंग सूत्र, (2) सूर्यगडांग (सूत्रकृतांग), (3) थाणांग (स्थानांग), (4) समयवयाग, (5) भगवती वियाहपन्ति (भगवती व्याख्या प्रवृति), (6) नायधम्म कहाओ (ज्ञातधर्म कथा), (7) उवसगदसाओ (उपासक दर्शाया), (8) अन्तगददसाओ, (9)

अनुतेराव वैयादासो, (10) पनहवागर (प्रश्न व्याकरण), (11) विवागसूयंक (विवाकसूत्र) ।

इनके अलावा बारह उपांग अथवा सहायक अंग हैं। दस प्रकीर्ण बिखरे हुए टुकड़े हैं। फिर छः छेद सूत्र तथा विशिष्ट ग्रंथ एवं मूल सूत्र आदि हैं।

अतः कुल अंग, उपांग, प्रकीर्ण, छेदसूत्र, विशिष्टग्रंथ एवं मूल सूत्र मिलाकर 45 ग्रंथ हैं , जिन्हें 'आगम' कहा जाता है। अंगों के अलावा ग्रंथों में कुछ कमीबेशी भिन्न–भिन्न सम्प्रदायों में मानी गई है। उपरोक्त ग्रंथों पर बाद के जैनाचार्यों ने भाष्य भी लिखे । पौराणिक गाथाओं को श्वेताम्बर "चरित्र" कहते हैं। तत्पश्चात् निम्न जैनाचार्यों की रचनायें एवं मंदिर आदि स्थापत्यकृतियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। जैन धर्म के प्रभावी आचार्य पुस्तक में साध्वी संघमित्रा द्वारा निम्न अतिरिक्त तथ्य दिये गये हैं। उत्कर्ष काल 530 वि.स. 1530 तक का 1000 वर्ष का बताया है , जिसमें आचार्य सिद्धसेन हुए; जिन्होंने "न्याय अवतार" मौलिक रचना की है। स्वयं कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य ने उनके लिए कहा है, "सिद्धसेन की महान गूढार्थक स्तुतियों के आगे मेरे जैसे व्यक्ति का प्रयास अशिक्षित व्यक्ति का आलाप मात्र है।" आचार्य समन्तभद्र "स्याद्वाद" के संजीवक आचार्य थे। सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य नेमीचन्द, चामुण्डराय के गुरु थे। गोम्मटसार उनकी प्रसिद्ध कृति है। वि.स. 1132 में जिन्होने 1.36 लाख लोगों को जैन बनाया वे मणिधारी जिनचन्द्र दादा के नाम से विख्यात थे। उनकी परम्परा में जिन कुशलसूरि चमत्कारिक आचार्यों में थे जो भक्तों की मनोकामना पूर्ण करने में कल्पवृक्ष तुल्य थे। उदयप्रभसूरि ने "नेमिनाथ चरित्र" संस्कृत में लिखा।

हरिभद्रसूरी जिनदत्त सूरी के शिष्य थे। वे संभवतः 705 से 775 ई. में हुए। "योग दृष्टि समुच्चय" उनका ग्रंथ था । उन्होंने 444 ग्रंथों की रचना की , हालांकि उनमें से 88 ढूंढ लिये गये हैं। 11 वी सदी में कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्र सूरी हुए । 1089 से

1173 ईसवी तक उनकी रचनाएं भी सहस्त्रों थीं। जिनमें "त्रिशष्टि श्लाघा पुरुष चरित्र", 'व्याकरण', "सिद्ध हेम शब्दानुशासन", "कुमारपाल चरित्र" आदि प्रमुख थीं। अन्य जैनाचार्यों में अकबर के समय श्री हरीविजय जी हुए। आईने अकबरी में 21 प्रथम श्रेणी के विद्धानों में तथा उनमें जो गैर–मुस्लिम का उल्लेख है, उनमें हरीविजय जी भी थे , जिनका अकबर ने फतेहपुर सीकरी में सन् 1582 में अभिनंदन किया था। उनके उपदेश से सम्राट अकबर ने अपने राज्य में कुछ विशिष्ट दिनों के लिये हिंसा, आखेट बन्द किया था।

आबू पर्वत पर सन् 1032 में विमलशाह ने विश्वविख्यात विमल–वसहि आदिनाथ मंदिर बनवाया। जैन वास्तुकला का वह स्वर्णकाल था। तत्पश्चात् सन् 1232 में वस्तुपाल तेजपाल ने नेमिनाथ मंदिर बनवाया। ये दोनों जिनालय विश्व में अपनी स्थापत्य एवं शिल्पकला में बेजोड़ हैं। संगमरमर के पत्थर में इन दोनों मंदिरों के गूढमण्डप, झूमर, गोपुरम, रंगमंडप, खम्भों, हस्तीशाला व अन्य मूर्तियाँ जिस तरह उत्कीर्ण की गई हैं एवं जो बारीक कारीगरी का अद्वितीय प्रभाव छोड़ा हैं वह किसी चितेरे से कम नहीं है। इसी प्रकार राणकपुर का सुन्दर, पर्वतीय उपत्यका में स्थित , विशाल जैन मंदिर , जो नलिनीगुल्म विमानाकार का है, स्थापत्य एवं शिल्पकला का अत्यन्त मनमोहक नमूना है , जिसे 1439 में धरणाशाह के द्वारा बनवाया गया था।

उल्लेखनीय है कि ये तीनों अनुपम भव्य मंदिर जो हजारों वर्षों बाद भी कला एवं संस्कृति के क्षेत्र में अद्वितीय रहे हैं, पोरवाल जैनों द्वारा बनवाये गये थे। आज पोरवाल, ओसवाल, श्रीमाली में सामान्यतः विवाह शादी नहीं होती है, जबकि इनकी उत्पत्ति स्थान एवं समाज भीनमाल(श्रीमाल) नगर से ही थे। श्री अगरचन्द नाहटा, जिन्होंने पोरवाल इतिहास की प्रस्तावना लिखी है, ने बताया है "श्रीमालनगर जो वर्तमान में भीनमाल है, उसमें पूर्व दरवाजे के आस पास बसे लोग जिन्हें जैन बनाया वे श्रीमाल

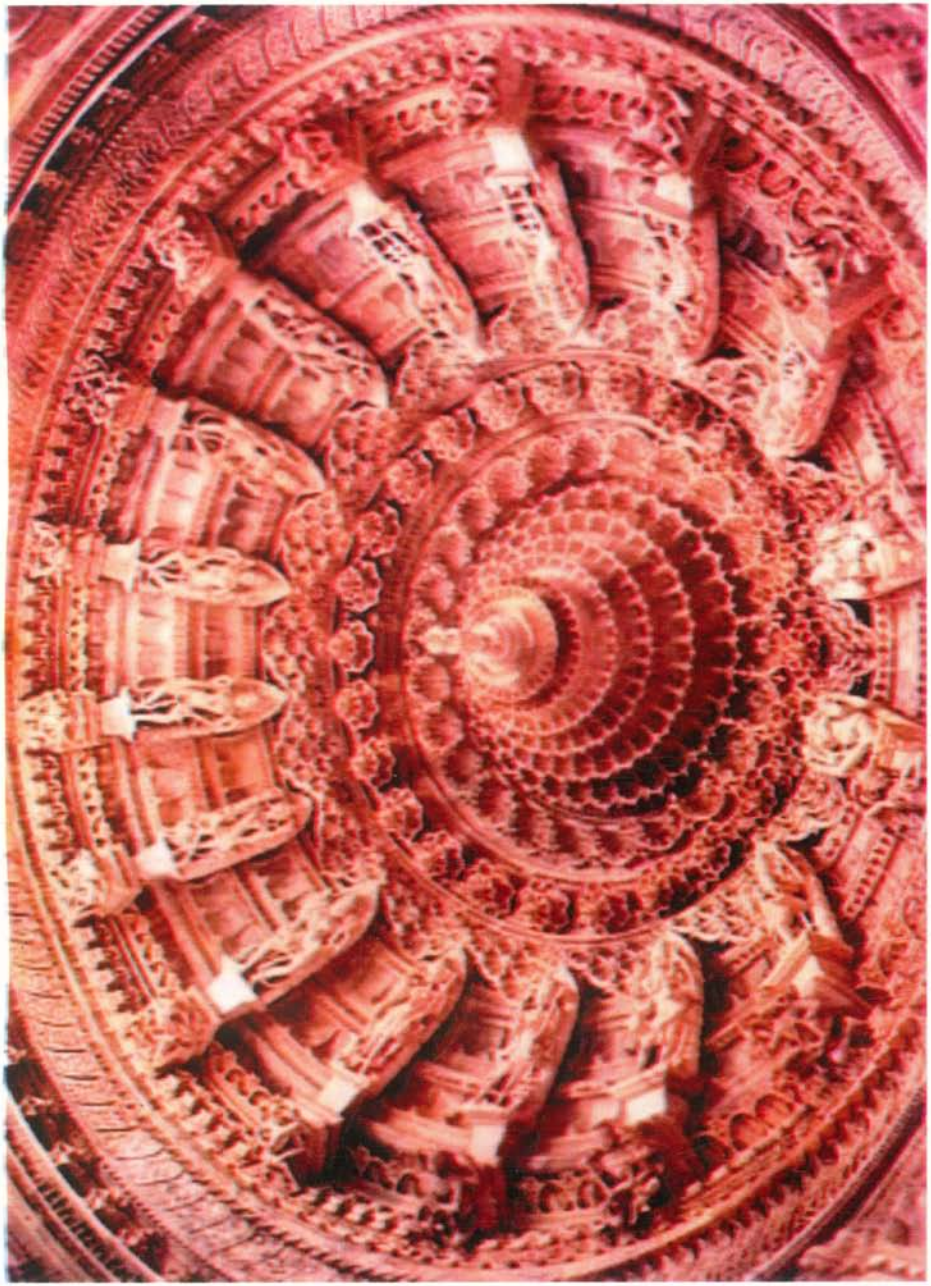

माउण्ट आबू के दिलवाड़ा जैन मन्दिर

प्रागवाट (पोरवाल) जैन कहलाये तथा जिन श्रेष्ठी परिवारों को रत्न– प्रभसूरी आठवीं शताब्दी में ओसियां ले गये वे ओसवाल कहलाये। वास्तव में इन दोनों में कोई अंतर नहीं है। रत्नप्रभसूरि के गुरु की पीढ़ी में ही उदयप्रभसूरी थे; जिन्होंने श्रीमालनगर में प्रागवाट या पोरवाल जैन बनवाये थे।

श्वेताम्बर संघ में खरतरगच्छ का प्रारम्भ 1060 में हुआ जिन्होंने चैत्यवासी साधुओं को हरा दिया। उनके साहसिक चरित्र के लिये उन्हें यह पदवी दी गई। फिर 1289 में उग्र तपस्या करने वाले साधुओं का अलग गच्छ 'तपागच्छ' बना। तदुपरांत त्रिस्तुति संघ अलग बना। इसी तरह आंचलगच्छ एवं लोकागच्छ और बने। आंचलगच्छ का तात्पर्य है शुद्ध धार्मिक विधि की रक्षा करना। इनके अनुयायी मुंह पर मुंहपती की जगह कपड़े पर आंचल टुकड़ा रखते है। (आंचल में)। त्रिस्तुति में श्री राजेन्द्रसूरी ज्ञानदर्शन चरित्र की अनुपम त्रिवेणी हुए हैं; जिनका "राजेन्द्र अभियान विश्वकोष" जैन जगत के लिये जैन साहित्य की अनुपम देन है। वर्तमान में इस मत के विद्वान जयंतसेनसूरी एवं शांत सरल आचार्य श्री रवीन्द्रसूरी हैं।

लोंका साधु नहीं बने। वे गृहस्थ उपदेशक ही थे लेकिन उनके कई शिष्य मुनि बन गये जो बाद में स्थानकवासी कहलाये। हालांकि स्थानकवासी मानते हैं कि लोंकाजी ने दीक्षा ली थी। लोकाशाह ने मूर्तिपूजा का विरोध किया यह जानकर कि जैन धर्म–ग्रंथों में इसका उल्लेख नहीं। पर यह सत्य नहीं है। मूर्तिपूजा जैन–धर्म में लम्बे समय से प्रचलित है। शुब्रिंग के अनुसार जैन शास्त्रों में मूर्तियों का प्रसंग आता है। उदाहरणार्थ उन्होंने "रणायधम्म कहाओ" 210 बी रायपसैनज 87 बी 64 (चौथा) आदि का उल्लेख किया है। स्थानकवासी आचार्य धर्मदास जी हुए। उन्होंने अपने 22 विद्वान शिष्यों के दल बनाये, तब से 22 सम्प्रदाय कलाया। यह सम्प्रदाय मंदिर मार्गी नहीं है लेकिन महान संत इस सम्प्रदाय में भी हुए। हाल में इतिहासज्ञ त्यागी आचार्य

हस्तीमल जी, तपस्वी मुनिश्री मिश्रीमल जी हुए। बाईस सम्प्रदाय में भी छोटे छोटे समुहों में काफी विभाजन हुए हाल में आगम वेता प्रकाश मुनि प्रभावी आचार्य हैं एवं उनके महान त्यागी मुनि शालिभद्रजी विशेष उल्लेखनीय हैं।

पाँच महाव्रत, पाँच समितियां व तीन गुप्तियों के धारक, मुनि पंथ को तेरापंथ कहते है। यह शक्तिशाली संगठन है। आचार्य भिक्षु के नेतृत्व में उदय हुआ जिसके अनुसार एक ही आचार्य इसमें होने का विधान किया गया। इस पंथ के चौथे आचार्य जयाचार्य ने विशाल साहित्य की रचना की। सात आगमों पर टीका के अतिरिक्त सहस्त्रों– सहस्त्रों पदों की रचना की। वर्तमान युग के विचारक क्रांतिकारी आचार्य तुलसी तथा श्री नथमल मुनि महाप्रज्ञ हुए। तत्पश्चात् महाप्रज्ञजी ने विपुल साहित्य रचना कर तेरापंथ को और व्यापकता दी।

कदाचित साध्वी बनाने के पूर्व छात्राओं को ऐसी सतत् वर्षों तक शिक्षा दें, समुचित रूप से कटिबद्ध करने की , इनका देश भर में या विश्व में एकमात्र लाडनू का विद्यालय है। उससे एक सीढी नीचे 'समण–समणी' कक्षा के और उपासक बनाये हैं, जो पर्याप्त अध्ययन कर विदेश भ्रमण कर लोगों को जैन दर्शन एवं आचार व्यवहार से नमूने के रूप में अवगत कराते हैं। यह समय की आवश्यकता है एवं प्रयास स्तुत्य है। आचार्य महाप्रज्ञजी ने तेरापंथ को ज्ञान दर्शन क्षेत्र में नई ऊँचाईयाँ दी। वर्तमान में 'महाश्रमण' तपस्वी जी तेरापंथ के आचार्य हैं।

जैन श्वेताम्बर शाखा के साथ दिगम्बर विभक्ति भी उल्लेखनीय है। दोनों शाखाओं के धार्मिक एवं दार्शनिक विश्वास बिल्कुल समान हैं तथा पौराणिक गाथाएँ भी बिलकुल समान हैं। अन्तर नहीं के बराबर है। महावीर के बाद प्रथम पांच छः शताब्दी तक दिगम्बर सम्प्रदाय का इतिहास अंधकार मय ही रहा। शायद दोनों शाखाओं में भेद विशिष्ट नहीं हुआ था। दोनों सहमत हैं कि महावीर के बाद केवल तीन आचार्य गौतम, सुधर्मा एवं जम्बू ही

केवली हुए हैं। बाद में आचार्यों में विष्णुदेव, अपराजित, और गोवर्धन हैं। श्रवणबेलगोला की सूची ईस्वी सन् 1600 के अनुसार दिगम्बरों के अंतिम आचार्य, जिन्हें अंगों का (आगमों का) थोड़ा बहुत भी ज्ञान था, महावीर निर्वाण के 653 वर्ष बाद स्वर्गवासी हो गये। भद्रबाहु द्वितीय उन आचार्यों में से हैं जो महावीर निर्वाण के 515 वर्ष बाद स्वर्गवासी हुए। वे दक्षिणी भारत के थे।

दिगम्बर महान आचार्य कुंदकुंद भी दक्षिण भारत के थे और वे स्वयं को भद्रबाहु द्वितीय का शिष्य बताते थे। वे ही दक्षिण में जैन धर्म को ले जाने वाले थे। वे बी.सी. 12 में स्वर्ग सिधार गये। भद्रबाहु द्वितीय के शिष्यों में गुप्तीगुप्त, माघनन्दी प्रथम, जिनचन्द्र प्रथम एवं कुन्दकुन्द थे जो एक के बाद एक आचार्य बने। भद्रबाहु प्रथम अंतिम श्रुतकेवली थे। उनके बाद आचार्य दशपूर्वी अर्थात् ग्यारह अंग और दसपूर्वी के जानकार थे। उनके नाम विशाखा, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जयसेन, नागसेन, सिद्धार्थ, श्रुतसेन, विजय व बुद्धिलिंग, देवप्रथम, धरसेन हैं। धरसेन ऐसे मुनि हैं जिन्हें महावीर के पूर्व से चले आने वाले पूर्वों के अंश का ज्ञान था जिसे उन्होंने अपने शिष्य पुष्पदंत और भूत बलि को दिया। इनमें कुछ को दिव्यदृष्टि–अष्टांग महानिमित्ता विद्या थी , जिसके आधार पर भद्रबाहु द्वितीय ने उज्जैयनी में 12 वर्ष अकाल पड़ने की पूर्व घोषणा कर दी थी। श्रुतकेवली न रहने पर तथा दिगम्बर मतानुसार गणधरों का श्रुतज्ञान अधिकांश विलोपित हो जाने पर भद्रबाहु द्वितीय के शिष्य भूतबलि एवं पुष्पदत्त ने "षटखण्डागम" की रचना की।

आचार्य कुन्दकुन्द ने 84 ग्रंथों की रचना की। उन्होंने प्राकृत भाषा में लिखा है जो मथुरा क्षेत्र की भाषा थी अर्थात् दक्षिण में भी जैन विद्वान अनेक थे। उन्हें गणधर के समान पूजा जाता था। श्रवण बेलगोला के शिलालेख ई. 1368 में लिखा है कि जब कुंदकुंद चलते थे उनके पाँव धरती से चार अंगुल ऊपर रहते थे। उनके नाम ग्रीवा, एलाचार्य, गृद्धपिच्छी, पदमानन्दी आदि थे।

दक्षिण के कोण्डा ग्राम, जो गुंटकल स्टेशन के समीप है, में, जन्म लेने से कुंदकुंद कहलाये। उनके तीन ग्रंथ "समयसार", "प्रवचनसार", "पंचस्त्किाय" सारत्रय कहलाते हैं। कुंदकुंद के बाद सर्वाधिक यशस्वी आचार्य उमास्वाति थे, जो 135 ई. से 219 ईस्वी तक जीवित रहे और वे कुन्दकुन्द के ही शिष्य थे। इनका उपनाम "गृहपिच्छी" था। श्वेताम्बरो के अनुसार उमा उनकी माता का नाम था, स्वाति उनके पिता का नाम था। वे दोनों शाखाओं मे मान्य थे। "तत्वार्थ सूत्र" उनकी प्रसिद्ध रचना है। इसमें तर्क शास्त्र का समावेश है। इन्होंने लगभग पांच सौ ग्रंथ लिखे हैं, जिनमें से आज बहुत ही कम जानकारी में हैं। दिगम्बर यह समझते हैं कि "पूजा प्रकरण", "प्रशमिति" एवं द्वीप समास" उन्हीं के लिखे हुए हैं।

श्रवण बेलगोला के 1163 में ईस्वी के शिलालेख की पट्टावली के अनुसार उमास्वामी के शिष्य समंतभद्र थे। जिन्होंने "तत्वार्थ सूत्र" पर एक भाष्य लिखा है जो "देवागम सूत्र" अब "आप्त मीमांसा" के नाम से जाना जाता है। जैनों के स्याद्वाद की संभवतः पहली बार उसमें पूरी व्याख्या की गई थी। इस श्रृंखला में लोहाचार्य द्वितीय, यश कीर्तिनन्दी, देवानन्दी पूज्यपाद भी हैं। पूज्यपाद ने उमास्वामी के ग्रंथ पर भास्य 'सर्वाथ–सिद्धि' लिखा है। इसके बाद अकलंक है। जिनके साथ कर्नाटक के महान जैनाचार्य का काल समाप्त हो जाता है। विन्टरनिट्ज का विश्वास था कि वे करीब–करीब समन्तभद्र के समकालीन थे और दोनों ही आठवीं सदी के उतरार्द्ध में हुए। उन्होंने तर्कशास्त्र पर "न्याय विनिश्चय", "लब्धिशास्त्र" एवं "स्वरूप संबोधन" लिखा। कर्नाटक के गंगराजा के मंत्री चामुण्राय के गुरु एवं मित्र विद्वान आचार्य नेमीचन्द हुए; जिन्होंने तीन महत्वपूर्ण ग्रंथ त्रिलोकसार, लब्धिसार एवं गोम्मटसार लिखे। उत्तर भारत में मध्यकाल में एक महत्वपूर्ण दिगम्बर लेखक हुए जो हरिषेण थे; जिन्होंने "बृहत कथाकोष" लिखा। वर्तमान में विद्यानंद मुनि आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

दिगम्बरों एवं श्वेताम्बरों के मूल दर्शन में अन्तर नहीं के बराबर है। विस्तार में कहीं नगण्य अंतर निम्न प्रकार हैं – जैसे 19 वे तीर्थंकर मल्लीनाथ स्वामी को श्वेताम्बर स्त्री मानते थे, जबकि दिगम्बर उन्हें पुरुष मानते थे, क्योंकि दिगम्बर मत के अनुसार स्त्री, गृहस्थ, एवं शूद्र की मुक्ति नहीं हो सकती।

1. महावीर ने वस्त्र छोड़कर दिगम्बरत्वरण ग्रहण किया था जो मोक्ष के लिये अनिवार्य है। लेकिन जम्बु–स्वामी के बाद आचार्यों ने इस प्रथा का त्याग कर दिया।
2. दिगम्बरों के अनुसार केवली को भोजन लेने की आवश्यकता नहीं। इसी प्रकार निवृति भी जरूरी नहीं है। लेकिन यह केवल शास्त्रीय बिन्दु है क्योंकि दोनों अभिमत मानते हैं कि निकट भविष्य में कोई भी केवली नहीं होगा।
3. दिगम्बर नहीं मानते है कि महावीर का भ्रूण देवनन्दा ब्राह्मणी की कुक्षी से त्रिशला माता के गर्भ में स्थानान्तरित किया गया।
4. दिगम्बरों के अनुसार महावीर का विवाह नहीं हुआ एवं या उनके पुत्री थी। अन्य छोटे छोट मतान्तर बाद के हैं।

वास्तुकला में श्रवणबेलगोला में अत्यन्त सुन्दर बाहुबली की प्रस्तर मूर्ति 17 मीटर ऊंची 931 ईस्वीं में चामुण्डाराय ने बनवाई। होयसल्ला राजाओं के भंडारी हुल्ल ने चतुर्विंशिती जिनालय श्रवण–बेलगोला में बनवाया। शुब्रिंग के अनुसार काफी संख्या में गंग, राष्ट्रकूट, होयशल्ला वंशों के राजाओं ने अपने आप को जैनों का मित्र साबित किया है। एक दूसरी बाहुबलजी की मूर्ति 37 फुट 1603 ईस्वी में वेनूर (मैंगलोकर तालुका में) बनवाई गई थी।

उत्तरी भारत में 11 वीं सदी से 19 वीं सदी की पाई गई प्राचीन दिगम्बर मूर्तियां हैं। इन सबमें महत्वपूर्ण खजुराहो के जैन मंदिरों के समूह हैं जो 10वीं से 11 वीं सदी के हैं जो चन्देल राजपूतों की बुन्देल की राजधानी के धनी जैनी व्यापारियों द्वारा

निर्मित थे। इसमें एक मंदिर पार्श्वनाथ का है , जिसकी तुलना इसी स्थान के सुप्रसिद्ध कन्द महादेव के मंदिर से की जाती है। दूसरा समूह झांसी जिले के देवगढ़ में हैं – 31 मंदिरों का – जिनमें हजार से अधिक प्रतिमाऐं हैं , उनमें से एक का वर्णन "भारत की धरती पर निर्मित होने वाली सर्वश्रेष्ठ कलाकृति" के रूप में किया जाता है।

इस महान ऐतिहासिक विरासत से न केवल हम समस्त जैन अपने एकता सूत्र खोजें बल्कि हृदय मंथन करें कि हम महावीर के कितने समीप हैं ? क्या हम उनके सच्चे अनुयायी हैं या गहराई में कही अवांछनीय उत्तरीय/वस्त्र गोशालक की तरह हैं, जो सदैव महावीर के साथ रहते हुए उन्हीं का विरोध करता था? हम अपने जीवन में महावीर के सिद्धान्तों का पालन कहाँ तक करते हैं? जैन धर्म के सिद्धान्तों में दृढ़ आस्था एवं जीवन में उनका आचरण करने पर ही हम इस महान् प्राग्–ऐतिहासिक जैन दर्शन व संस्कृति का प्रसाद समस्त संत्रस्त मानवजाति में वितरित करने के सुपात्र बन पायेंगे।

संदर्भ ग्रंथों की सूची –

1. आधार ग्रंथ– जैनों का इतिहास– लेखक डॉ. असीम कुमार राय।
2. अनुत्तर महावीर–3 भाग– श्री वीरेन्द्र कुमार जैन ।
3. जैन दर्शन स्मृतिमार्ग–पूज्य मुनि दिव्य रत्न एवं विमल बोधि विजय जी।
4. जैन साहित्य श्वेताम्बर दिगम्बर–डॉ रमेश चन्द्र राय।

ऐतिहासिक प्रमाणों से पोरवाल-ओसवाल एवं श्रीमालों के एक होने की पुष्टि

आधार ग्रंथ–

1. 'प्राग्वाट– इतिहास' – श्री दौलतसिंह लोढा।
2. पोरवाल समाज का इतिहास – डॉ. मनोहरलाल पोरवाल।
3. सिरोही के कुल गुरुओं द्वारा संकलित वंशावलियाँ– पंडित हीरालाल हंसराज का जैन गौत्र संग्रह ।
4. डॉक्टर गौरी शंकर औझा द्वारा विषय सम्बन्धित लेखादि हैं।
5. इतिहास की अमर बेल–ओसवाल–मांगीलाल भूतोड़िया लाडनूँ ।

इन्द्रगढ़ मांडल भीलवाड़ा के शिलालेख संवत् 767 एवं अन्य संस्कृत में लिखे शिलालेख जिसमें 'प्राग्वाट' शब्द प्रयोग किया गया है।

पोरवाल इतिहास साक्षी है कि जैन धर्म दिवाकर आचार्य श्री उदयप्रभ सूरी ने श्रीमाल– नगर जिसे वर्तमान में भीनमाल कहते हैं, वहाँ संवत् 795 अर्थात् 738 ई. में 62 श्रीमाल परिवारों एवं आठ प्राग्वाट–ब्राह्मणों को जो पुरू दरवाजे के समीप निवास करते थे को बोध देकर 'जैन' बनाया। उसके लगभग दो शताब्दी बाद रत्नप्रभसूरी जो उसी परम्परा के थे उन्होंने श्रीमाल नगरी से उपकेशनगर (वर्तमान में ओसियाँ) में, श्रावकों को ले जाकर उन्हें जैन बनाया जो कालान्तर में ओसवाल कहलाये। श्री अगरचन्द जी

नाहटा बीकानेर वासी जो हाल में जैन दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान हुए हैं, उन्होने प्राग्वाट इतिहास की प्रस्तावना में स्पष्ट किया है कि, "दोनों उपरोक्त आचार्यों ने मात्र जैन–श्रावक बनाये थे, लेकिन स्थान विशेष के कारण पोरवाल, ओसवाल, फलोदिया, रामपुरिया या काम विशेष से वे भण्डारी, कोठारी, मेहता आदि कहलाये। वास्तव में इन तथाकथित जातियों में कोई धार्मिक, समाजिक भेद नहीं है।" अतः इनमें एकता के प्रयास स्तुत्य हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से प्राग्वाट क्षेत्र मेवाड, सिरोही, गोडवाड़, गुजरात, आबू, चन्द्रावती, कुंभलगढ़, माण्डल के समीप पूर नगर आदि रहा है।

पोरवालों में अनेक गोत्र हैं, जिनमें से निम्न कुछ हैं। पद्मावती, काश्यप, पुष्पायन, आग्नेय, वच्छम, लांब, त्राणि, कासम, कासिद, कुडाल, आनन्द, अग्नि, शाह, सिंघवी, सोलंकी, सोरठा, मारवाड़ी, पुरवीर, परमार, कासेन्द्र, नरसिंह, माधव, अंबा, मूथा, संघवी, डोसी, पारख, धारचन्द्र, पण्डिया, नाहर, हिरण आदि। इनमें से कई गोत्र जैसे सोलंकी परमार, नाहर आदि गौत्र ओसवालों में भी हैं।

पोरवालों की कुलदेवी अम्बा माता है। –"जय अम्बेमात, कुलदेवी तू पोरवाल की तू ही अधिष्ठाता। पद्मावत पद्मासनी माँ चक्ररूप धारी जगत की पालनहारी, करती सिंह सवारी। जय अम्बे माता।"

पोरवाल इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों को अनेक पोरवाल महान राजा, महाराजा, दर्शनवेताओं, अद्वितीय वास्तुकारों, वैरागी, महायोद्धा, कवियों आदि ने सुशोभित किया है। समयाभाव से इनमें कुछ विश्व–स्तर के श्लाघनीथ पुरुषों का जो पोरवाल इतिहास के विशिष्ठ जाज्वल्मान रत्न है, उनका ही वर्णन किया जा रहा है।

मानव जाति की श्रेष्ठतम् स्थापत्य एवं शिल्प की अलौकिक देन में से एक हैं दिलवाड़ा (माँऊट आबू) के जैन मंदिर। देश एवं

पोरवाल राजा वस्तुपाल एवं तेजपाल द्वारा माउण्ट आबू में निर्मित
नेमिनाथ भगवान का भव्य मन्दिर।

काल की सीमाओं को लांघकर बनाया गया विमलवसिह भगवान श्री आदिनाथ का मंदिर आचार्य श्री वर्धमानसूरी द्वारा प्रतिष्ठापित किया गया था। यहाँ शिल्प का प्रचूर वैभव है। इसे वीर विमल शाह द्वारा सन् 1029 में बनवाना शुरू किया था जिसकी लागत लगभग 18 करोड़ रूपये आई। जिसे 1500 कुशलतम् कारीगरों द्वारा बनवाया गया था। इस मंदिर का रंगमण्डप, गूढमण्डप, भमतियाँ सब अनुपम शिल्प कला से आश्चर्य चकित् करने वाली हैं। एवं आज हजार वर्ष बाद भी नया जैसा ही दिखता है। 'वीर विमल शाह' गुजरात के राजा भीमसेन प्रथम के महादण्डनायक थे। उन्होंने सिंध को तथा चन्द्रवती को फतेह किया था, वहाँ से भेंट प्राप्त की। नाडोल राजा ने स्वर्ण– सिंहासन दिया। वे अद्वितीय पराक्रमी एवं धनुर्धर थे। माता अम्बिका की असीम कृपा से उन्होंने इस विश्वविख्यात मंदिर का निर्माण किया।

वस्तुपाल तेजपाल बन्धु जिन्होंनें सौराष्ट्र विजय किया उन्होंने दिलवाड़ा में ही उपरोक्त जिनालय के समीप ही सन् 1229 इस्वी में लगभग दो सौ वर्ष पश्चात् 'लूणवसिंह' नामक भगवान नेमिनाथ का अपूर्व शिल्प युक्त मंदिर का निर्माण प्रारम्भ किया। जिसका रंग–मण्डप का झूमर अर्द्ध पुष्पित कमल वाला है, संगमरमर का यह अद्‌भूत शिल्पकला का अकल्पनीय चरितार्थ स्वप्न है। नौचोकिये एवं सारा मंदिर अपनी बारीक शिल्प कला से अत्यन्त मन मोहक है। यदि कोई सानी हो सकता है तो वह पूर्व वर्णित मंदिर की चौकियों में से विशिष्ट उत्कीर्ण झांकियां हैं। तेजपाल के पुत्र के नाम पर लूणवसिंह नाम दिया था।

इन बन्धुओं का विवाह चन्द्रावती श्रेष्ठी धरणीशाह की पुत्रियों– ललिता एवं अनुपमा से क्रमशः हुआ था, जिन्होंने मंदिर निर्माण में सक्रिय सहयोग दिया। देराणी झेठाणी के गौखरे भी अत्यन्त प्रख्यात हैं।

इन बन्धुओं ने सोमनाथ मंदिर का पुनः निर्माण भी दस करोड़ रूपयों की लागत से करवाया। करीब तीन हजार मंदिरों के

तोरण, एवं विश्वनाथ मंदिर बाराणसी का जीर्णोद्धार तथा अनके धर्मशालाऐं, सरोवर, निर्मित करवाये। ये भी परम– योद्धा एवं अमात्य थे। स्वयं कई प्रदेशें के राजा भी रहे।

इतिहास प्रसिद्ध हेमू दिल्ली का शासक बना जो हेमन्तविमानि कहलाया। जिसने अकबर के साथ 1556 में सत्तर हजार घुड़ सवारों सहित युद्ध किया। डॉ. मनोहरलाल के अनुसार वह घूसर बनिया पोरवाल था जो यू.पी. क्षेत्र में अब तक पाये जाते हैं। आँख में तीर लगने से घायल होने पर इतिहास ने करवट ली; अन्यथा हेमू ने हुमायू की प्राण रक्षा की थी एवं आदिल शाह के साथ बंगाल विजय किया था , जो भारत का शासक बनता।

धरणाशाह ने स्वप्न में नलिनी–गुल्म–विमान देखा। उसी के आकार का अत्यन्त अनुपम राणकपुर का भव्य विशाल "आदिनाथ' मंदिर बनवाया। वे नांदिया ग्राम से मेवाड़ आये। कुंभलगढ़ के मंत्री बने। अनुपम दानवीर बने। माद्री पर्वत की उपत्यका में त्रेलोक्य दीपक धारण–विहार का जिनालय 99 लाख स्वर्ण मुद्राओं की लागत से बनवाया। 1438 ई. में लगभग 1500 कारीगर, मजदूर लगाकर 50 वर्षों की अवधि में पूरा किया। जिसकी नींव 1438 ई. में रखी। 'लूणवसिंह' के पुनः 200 वर्षों के पश्चात् चालीस फुट ऊँचे 1444 संगमरमर के कारिगरी युक्त–खम्भों पर मंदिर आधारित हैं, जिन्हें सामान्यतः गिनना कठिन है ऐसी ही उनकी स्थिति है। यह विशाल वैभवशाली शिल्प का अनुपम मंदिर है जो तीन मंजिला वाला है , जिसमें कुल चौरासी देवकुलकाऐं हैं। ऐसे ही महापुरुष हुए हैं–दानवीर भामाशाह जिन्होंने मेवाड़ राज्य भर को अकाल राहत की पूर्ण सहायता देकर अमर नाम कमाया।

अन्त में इस कड़ी में जैन धर्म प्रवर्तक नीतिशास्त्र ज्ञाता , जैनदर्शनवेता एवं आगम पंड़ित श्री लोकोशाह पोरवाल का नाम चिरस्मरणीय रहेगा। वे सिरोही के अरठवाड़ा ग्राम में 1415 ई. में पैदा हुए। उनकी लेखनी अति सुन्दर थी। जैसलमेर के आगमों

की प्रतियाँ तैयार करते करते एक एक अतिरिक्त प्रति तैयार की। आगमों का गहराई से अध्ययन किया। स्वयं तो साधु न बन सके लेकिन बाईस सम्प्रदाय के सन् 1473 ई. 44 साधु अनुयायी बनाए। इनमें एक विशिष्ठ गच्छ आज भी आगम अनुसार शास्त्र अध्ययन एवं आचरण के लिए विख्यात है।

श्री मांगीलाल जी भूतोड़िया द्वारा रचित उपरोक्त ओसवाल इतिहास के प्राक्कथन में ओसवाल जाति की उत्पत्ति के बारे में लेखक द्वारा विभिन्न मतों से कोई निश्चित निर्णय नहीं पाने पर डॉ. एल.एम. सिंघवी द्वारा अपने प्राक्कथन पृष्ठ 10/11 पर यह कहा गया है कि यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि यह घटना किसी एक ही दिन हुई हो। निर्विवाद रूप से भगवान नेमिनाथ एवं भगवान पार्श्वनाथ और भगवान महावीर के समय में हुई थी। तदन्नतर कई सदियों तक जैन धर्म स्वीकार करने पर किसी व्यक्ति या समुदाय को क्षत्रिय या ब्राह्मण से वैश्य बनना पड़ा हो इसका प्रमाण स्पष्ट रूप से नहीं मिलता। पृष्ठ 15, श्री भूतोड़िया के ईसा पूर्व 500 वीं शताब्दी निष्कर्ष का मुख्य आधार कुछ बही–भाटों एवं चारणों द्वारा प्रयुक्त शब्द विरात 70 वर्ष आधार माना है। कुछ बही भाट चारणों ने आबू पर्वत पर यज्ञ के अग्नि कुण्ड से प्रकट चार क्षत्रिय वीरों के साथ जोड़ते हुए यह बताया है कि उस वंश में उपल देव का जन्म हुआ जिन्होंने कालान्तर में ओसियां में नया राज्य स्थापित किया एवं सर्पदंश से मृत उनके पुत्र को रत्नप्रभ सूरि ने पुनर्जीवित किया ।

यह सर्व विदित है कि यह छंद कविता इत्यादि कुछ 300–400 वर्षों से अधिक पुराने नहीं हैं। मेरे विचार में जैन ओसवाल जाति के उद्भव का समय मारवाड़ रे प्रगना री विगत संवत् 1033 से पूर्व का रहा होगा। लेकिन यह तारीख भगवान महावीर के परिनिर्वाण के 70 वर्ष बाद ही पड़ती है यह नहीं कहा जा सकता। अर्थात् जो विद्वान इतिहासकार अगरचन्द नाहटा ने पोरवाल इतिहास की भूमिका में उल्लेख किया है कि वि.स. 764

में 775 उदयप्रभ सूरि भीनमाल पधारे एवं तथा 200 वर्ष पश्चात् उनके परस्पर के शिष्य रतनप्रभ सुरि द्वारा लोगों को जैन बनाकर ओसियां ले जाने पर वे ओसवाल कहलाए, यही कथन ज्यादा उपयुक्त एवं वास्तविक प्रमाणों पर आधारित है। यह पोरवाल ओसवाल के एक होने तथा श्रीमालों का भी उत्पत्ति, स्थान, धर्मगुरु आदि एक ही होने का सटीक प्रमाण है।

ओसवाल इतिहास के लेखक श्री मांगीलाल द्वारा अपनी रचना के पृष्ठ 198 पर भी उल्लेख किया है कि पोरवाल, ओसवाल, श्रीमाल व श्रीमाल नगरी के राजा आदि उन्हीं सभी के प्रयासों से रतनप्रभ सुरि नें गुरु उपाधि धारण की। इसलिए श्रीमालों को ओसवालों के प्रथम गोत्र में गिनते हैं। इनके कई गौत्र ओसवाल या पोरवाल या दोनों में पाये जाते हैं। कश्यप, आग्रेय, मेहता, गांधी, कटारिया, बोहरा, कूकंडा, नाहर कई–कई गोत्र दोनों में हैं। इनमें श्रीमाल और ओसवाल भी सम्मिलित हैं। पृष्ठ 198 पर उल्लेख किया है कि ओसवालों के 440 गौत्र माने थे लेकिन अन्य कई और सूचियों के अनुसार उनके 2600 गौत्र संग्रहित हैं। उनमें पोरवाल, श्रीमाल तथा पल्लीवाल भी शामिल हैं।

श्रीमालों में महाकवि माघ का नाम विशेष महत्वपूर्ण है क्योंकि महाकवि कालीदास के बाद 'शिशुपाल वधम' उस श्रेणी का ग्रंथ माना गया है। इसी ग्रंथ के पृष्ठ 330 के अनुसार माघ के पिता का नाम दप्त या दत्त था। ये श्रीमालपुर के श्रीमाल गोत्रीय महाजन श्रेष्ठी थे। माघ का समय छठी शताब्दी का है। डॉ हरमन जेकोबी माघ का समय सप्तम शताब्दी से पूर्व मानते हैं। सातवीं शताब्दी में प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी भीनमाल के शासक राजा वरमलात का उल्लेख किया है।

श्रीमाल श्रेष्ठी उदयन–ये प्रसिद्ध उद्योगपति थे। पृष्ठ 335 पर उल्लेख है कि वे मारवाड़ से कर्णावटी जाकर बस गए। आचार्य हेमचन्द्र को आठ वर्ष की उम्र में दीक्षा का श्रेय भी श्रेष्ठी उदयन को ही है। उन्होंने कुमारपाल को भी आश्रय दिया था। ऐसा

उल्लेख मिलता है कि कुमारपाल ने बड़ी सेना सहित सपाद लक्ष्य पर आक्रमण किया। इस युद्ध में कुमारपाल को अपार धन हाथ लगा। 7 करोड़ स्वर्ण मोहरें और 700 अरबी घोड़े, उसके अधिकार में आए।

गुजरात के दानवीर जगडुशाह–श्रीमाल वंशीय धन कुबेर जगडुशाह ने वि.स. 1311 से 1323 के बीच पड़े महा दुष्काल के समय लाखों मन अनाज लोगों में वितरीत किया व लाखों लोगों को जीवनदान दिया। उस समय गुजर राजा विशाल देव के मंत्री तेजपाल की सहायता से जगडुशाह ने कच्छ, भद्रेश्वर प्रकोटे का निर्माण करवाया। 70 भव्य मंदिर एवं 900 प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करवाई।

एक अन्य श्रीमाल गौत्रीय शाह ठक्कर पेरू का नाम सम्मान से लिया जाता है। राज दरबार में उनके वंशजों को ठक्कर की उपाधि मिली। अल्लाऊद्दीन खिलजी ने उन्हें अपना भण्डारी नियुक्त किया। वि.स. 1313 में कुतबुद्दीन शाह दिल्ली के तख्त पर बैठा। उसने भी ठक्कर पेरू को राज्य की टकसाल का मुख्य अधिकारी नियुक्त किया और इस प्रकार 1377 से 1382 में भी बादशाह ग्यासुद्दीन तुगलक के शासन काल में भी इसी पद पर बहाल रहे। उन्होंने 'रत्न परीक्षा' के बेमिसाल ग्रंथ लिखे। अन्य भी जैसे 'ज्योतिसार', 'गणित सार', 'वास्तु सार' आदि विशिष्ट ग्रंथों की रचना की।

अब प्रसिद्ध ओसवालों का उल्लेख किया जाता है।

विक्रम संवत् 1320 में माण्डवगढ़ के उक्केशवंशीय श्रेष्ठी पेथड़ कुमार हुए। इन्होंने 84 विभिन्न स्थानों में जिन मंदिर बनवाये। वे तपागच्छ आचार्य धर्मघोष सुरि के भक्त थे। कहते हैं कि भगवती सूत्र में जहां–जहां पर गौतम शब्द आया एक–एक स्वर्ण मुद्रा दान में दी । इसी तरह 36000 स्वर्णमुद्रा से आगम की पूजा की।

ओसवाल जाति के बच्छावत गौत्र के श्रेष्ठियों ने बीकानेर राज्य की बहुत सेवा की। 1488 में राव बीकाजी ने राज्य की नींव डाली और बहोथरा वत्सराज जी को अपना प्रधान बनाया। 1578 में जब भंयकर अकाल पड़ा तो कर्मचन्द ने हजारों कुटुम्बों को कई माह तक अन्न प्रदान किया। विक्रम संवत् 1604 और 1657 के बीच मेवाड़ उद्धारक उदयपुर के ओसवाल गौत्रीय सूर्य भामाशाह को कौन नहीं जानता। भामाशाह का जन्म 1604 में हुआ। राणा उदयसिंह के ज्येष्ठ पुत्र प्रताप भी दुर्ग की तलहटी में रहते थे। तभी भामाशाह और प्रताप में दोस्ती हुई। वे राज्य के प्रधान बने। 1633 में हल्दीघाटी का युद्ध हुआ। राजा प्रताप स्वाधीनता के लिए जुझते हुए भटकते रहते थे और बिलाव के रोटी ले जाने से दुखी होकर मेवाड़ छोड़ सिंध चले जाने को तैयार हुए। तब राज्य के दीवान भामाशाह ने जीवन भर का संचित द्रव्य उनके चरणों में रख दिया। कर्नल टॉड के अनुसार यह धन 2500 सैनिकों के 12 वर्ष निर्वाह के लिए प्रर्याप्त था। राणा प्रताप ने इससे खोया हुआ लगभग समस्त राज्य पुनः अपने अधिकार में ले लिया। भामाशाह खुद भी राणा के साथ लड़े।

17 वीं शताब्दी जैसलमेर के प्रसिद्ध भंसाली गौत्र में ओसवाल श्रेणी हुई। उन्होंने 1655 में लोद्रवपुर में प्रसिद्ध पार्श्वनाथ का मंदिर बनाया। थाहरूशाह को बादशाह अकबर ने दिल्ली में सम्मानित किया। बादशाह ने रायजादा का खिताब दिया।

17 वीं शताब्दी में महान योगीराज आनंदधन जी हुए। उनकी अध्यात्म पर चौबीसी बहुत लोकप्रिय हुई। मेड़ता के श्वेताम्बर जैन परिवार ओसवाल जाति के धनाढ्य सेठ के पुत्र थे। आनंदधन ग्रंथावली में उनके रूप में उन्होंने लिखा है कि, "ऋषभ जिनेश्वर प्रितम म्हारो और न चाहूं कंत, रिझया साहब संग, न परिहरे भोगे साधि अनंत।"

मूणोत नेणसी का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। आप कलम और तलवार दोनों के धनी थे । उनके वंशज जैन रहे एवं

कालान्तर में ओसवाल कुल में शामिल होकर मुणोत कहलाए। 1714 ईस्वी में जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह जी ने अपना दीवान बनाया । राजा की अनुपस्थिति में वे शासन संचालन करते। उन्होंने राजपुताने का इतिहास लिखा। जिनमें कुओं, जमीन, जनसंख्या का पूरा वर्णन है। राज्य की ओर से अनेक लड़ाईयाँ लड़ीं। 1705 में महाराज ने नैणसी को जैसलमेर पर चढाई करने के लिए भेजा। इसी तरह 1706 में पोकरण पर भी फतह की । 9 वर्ष तक राज्य के दीवान रहे। इसी तरह जगत सेठ माणकचन्द के पास अपार धन सम्पत्ति थी। बंगाल, बिहार, उड़ीसा में उनकी टकसाल के रूपये उपयोग में आते थे। कर्नल जेम्स टॉड ने लिखा है कि जगत सेठ माणकचन्द के पास इतना सोना चांदी था कि गंगा पर सोने की ईंटों का पुल बनाया जा सकता है।

सेठ खुशालचन्द 1820 में दिल्ली के बादशाह शाह–आलम ने उनको जगत सेठ की उपाधि से सम्मानित किया। उन्होंने 108 सरोवर एवं अनेक मंदिर बनाए। अन्य उल्लेखनीय व्यक्तियों में नाहटा मोतीचन्द शाह, संघवी दयालदान सती पार, जगत सेठ माणकचन्द, फतैचन्द, महताबचन्द, खुशालचन्द हुए तथा अन्य में हरकार सिंधी, इन्द्रराज दीवान, अमरचन्द सुराणा, इत्यादि हुए। गेलड़ा गौत्रीय में उत्तमचन्द का विवाह लखनऊ के राजा बच्छराज की कन्या से हुआ। उन्हीं के पौत्र शिव प्रसाद, बहुभाषा विज्ञ थे। आप वायसराय द्वारा लेजिसलेटिव कोंसिल के सदस्य नियुक्त किए गए। उन्हें सितारे–हिन्द की पदवी से 1931 ई. में अंग्रेज सरकार द्वारा विभूषित किया गया । उन्होंने हिन्दी साहित्य को अपनी रचनाएं दीं। 1902 में आपके सहयोग से 'बनारस अखबार' का जन्म हुआ। आपके प्रयास से अदालतों में हिन्दी का प्रवेश हुआ। इसलिए भारतेन्दु हरिशचन्द्र जैसे विख्यात मनीषी भी आपको गुरु मानते थे। अमर शहीदों में अमरचन्द बांठिया का नाम

उल्लेखनीय है। वे ग्वालियर के दीवान थे । उन्होंने तात्यां टोपे एवं रानी लक्ष्मीबाई की मदद में 25–50 लाख रुपये खर्च किये।

श्रीमाली जाति के अनमोल हीरों में श्रीमद रायचन्द्र हुए। मात्र 19 वर्ष की उम्र में बम्बई में पीटरसन की अध्यक्षता में एक सार्वजनिक सभा में "शतावधान" का प्रयोग कर अद्‌भूत धारण शक्ति का परिचय दिया। सारे भारत में नाम हो गया। वे स्मरण शक्ति के चमत्कार का अदभूत नमूना थे। लेकिन श्रीमद् राजचन्द्र ने कभी इसको महत्व नहीं दिया। उन्होंने साधना के कई प्रयोग किए। आत्मसिद्धि नामक ग्रंथ की रचना की जो जैन धर्म का सर्वोत्तम ग्रंथ माना जाता है। इसमें 142 दोहों के माध्यम से जैन दर्शन का सार पेश किया है।

सेठ सोहनलाल दुग्गड़ फतेहपुर के थे लेकिन दानवीरता के अद्‌भूत नमूनों में ऐसे अनुपम थे कि जहाँ जरूरत समझते बिना बुलाए ही वहां स्वयं थैलों में नोट भरकर पहुंच जाते। शेखावाटी, थली में स्कूलें, सामाजिक संस्थाएँ, हरिजन परिवार व विधवाएं सभी उनके दान से अनुग्रहित रहे। इतना दान दिया कि उसका लेखा–जोखा भी नहीं किया जा सकता। आचार्य तुलसी ने उन्हें 'सूखी धरती का मेघ', कहा। लेकिन उन्हें धर्म के नाम पर आचार्य, साधुसंत, मठाधीश, पण्डे पुजारी अच्छे नहीं लगते थे जो केवल अपनी पूजा करवाने में लगे रहते हैं।

अन्त में वर्तमान काल में डॉ दौलतसिंह कोठारी एवं श्रीमाल गौत्र डॉ. विक्रम साराभाई का नाम, विशेष उल्लेखनीय है। डॉ कोठारी को रक्षा विशेषज्ञों में 'पदमविभूषण' से अलंकृत किया गया एवं इसी प्रकार डॉ. विक्रम सारा भाई को 'अंतरिक्ष एवं परमाणु ऊर्जा विज्ञान' में पदम विभूषण से अंलकृत किया गया क्योंकि भारत को वैज्ञानिक उन्नत देशों की श्रेणी में लाने का श्रेय उन्हें प्राप्त हुआ। देश विदेशों में उन्हें सम्मान प्राप्त हुए। विक्रम सं. 2027 में वियाना के 14 वे अन्तर्राष्ट्रीय विज्ञान कॉंग्रेस के आप सभापति चुने गए। नभ, भौतिक तथा परमाणु ऊर्जा के शांति परक

उपयोगों में डॉ साराभाई का योगदान अतिश्रेष्ठ रहा। इसी क्रम में डॉ. मोहनसिंह मेहता उदयपुर तथा जीवराज मेहता मुम्बई को भी पदमविभूषण से अलंकृत किया गया है। सेठ कस्तुरभाई, लालभाई, पंडित सुखलाल संघवी एवं श्री डी.आर. मेहता का नाम भी सम्मान पूर्वक लिया जाता है। जिन्हें अपनी विशिष्ट सेवाओं के कारण पद्म भूषण से अलंकृत किया गया है।

इन सब श्रेष्ठी वर्गीय पोरवाल, ओसवाल श्रीमाल वर्ग की हस्तियों का संक्षेप में सिंहावलोकन किया गया है जिससे मुख्यतः यही पाया गया है कि इनकी उत्पत्ति लगभग एक ही समय में, एक ही धर्मगुरु से या उनकी परम्परा के धर्म गुरु द्वारा उन्हें जैन धर्म अपनाने की प्रेरणा स्वरूप उद्‌गम से हुई है। निःसन्देह ये सब मूल रूप से एक हैं एवं इनमें अन्तर किया जाना उचित नहीं है। जैसा पूर्व में उल्लेख किया है। ओसवालों की सूची में पल्लीवाल भी ठीक ही शामिल किए गए।

महावीर के जीवन के मार्मिक प्रसंग

इन्द्र द्वारा ब्राह्मणी देवनन्दा के कुक्षी से भ्रूण हटाकर माता त्रिशला के गर्भ से वर्धमान के जन्म लेने की जानकारी स्वयं महावीर ने गौतम के प्रश्न पर दी क्योंकि जब ब्राह्मण ऋषभदत्त एवं देवनन्दा उनके दर्शनार्थ आये तब देवनन्दा के स्तन से दूध बहने लगा। उसकी चोली खिंचने लगी। शरीर की रोमावली से रोम हर्षातिरेक से खड़े हो गये, जैसे वर्षा के बाद कदम्ब का वृक्ष खिल उठता है। वह एकटक भगवान महावीर को देखने लगी। "ऐसा क्यों हुआ?" इस पर महावीर ने बताया , "यह ब्राह्मण स्त्री देवनन्दा मेरी माँ है, जो मुझे वात्सल्य भाव से देख रही है क्योंकि मेरी प्रथम उत्पत्ति उससे हुई थी।" इसका वर्णन भगवती सूत्र (आगम) में उपरोक्त प्रकार से है।

महावीर ने 30 वर्ष की उम्र में संसार त्यागने पर पंचमुष्टि लोच करते हुए व्रत लिया कि "मैं अब से कोई सावद्य कर्म नहीं करूंगा।" प्रथम चौमासा अस्थिग्राम के शूलपाणि–यक्ष–मंदिर में हुआ। यक्ष जो पूर्व भव में बैल था, तथा सेठ की लाभ– लोभवृत्ति के कारण बहती नदी में से शकट (बैलगाड़ी) के अधिक भार को निर्ममता–पूर्वक खींचे जाने से , सेंध टूटने व वहीं ग्राम में गिर पड़ने का शिकार था, तथा जिसे ग्रामवासियों ने उसके लिये दिया गया जीवतव्य हड़प कर भूखों–प्यासों मरने को बाध्य कर दिया था; अतः उन पर वह दुर्दान्त रूप से कुपित था। महामारी, अकाल आदि से ग्राम–जन अस्थियों के ढ़ेर बन चुके थे। जिसके विकराल रूप अट्टहास एवं नृशंसता से कोई भी जीवित नहीं बचता था। उसे अपनाने, शांत व अहिंसक बनाने का संकल्प महावीर ने

लिया। उसके सारे क्रोध के वे भाजन बने। उनकी ममतामयी करूणा ने उन पर किये गये वार विफल कर दिये। वह प्रभु चरणों में गिर पड़ा, वैरभाव भुलाकर।

उन्हीं दिनों दुज्यंत आश्रम में ध्यान करते हुए, अकालग्रस्त–प्रदेश की गऊएं, उनकी कुटिया के छप्पर को तोड़ ले जाने पर आश्रमवासियों द्वारा उन्हें उलाहना मिला। तब आत्मसाधना हेतु उन्होंने और कठोर व्रत लिया। जहाँ अवमानना–घृणा न हो, वहाँ रहकर खण्डहरों– वीरान जंगलों में ध्यान किया जाये, अधिकांशत मौन रखा जाये, देह धारण के लिए अंजलि में आहार लिया जाये । मुक्ति–पथ की इस लम्बी यात्रा में कुल (42) चौमासे, (प्रति वर्ष में एक) निम्न संख्या में किये गये– अस्थिग्राम (1), चंपापीशी (3), वैशाली तथा बनियाग्राम (12), राजगिरी तथा नालन्दा (14), मिथिला (6), बदिधित्ता (2), अलाबिया (1), पानिया भूमि (1), सावत्थी (2) एवं पावा (1)।

इसी प्रकार अहिंसा, अपरिग्रह, सत्य, अचौर्य एवं ब्रह्मचर्य के कठोरतम प्रयोग किये। अनार्य देश की भी यात्राऐं कीं, जहाँ उन पर कुत्ते छोड़े गये, उन्हें काटा गया, बांधा गया, गुप्तचर समझकर उन्हें यातनाऐं दी गयीं, यहाँ तक की शूलि पर चढ़ाने या बलि के लिए ले जाया गया, फिर भी अहिंसा–पथ से विचलित नहीं हुए।

साधना काल के प्रथम वर्ष में ध्यान अवस्था में ग्वाले ने अपने बैल सौंपे और पुनः न मिलने पर एवं उत्तर न पाने पर उन्हें चर्म जुए से निर्ममता पूर्वक पीटा। इन्द्र उनकी रक्षा के लिए उपस्थित होने पर उसे कहा , "आत्म मुक्ति का मार्ग स्वावलम्बन का मार्ग है। इसमें किसी के सहारे की आवश्यकता न कभी रही है और न कभी रहेगी।" साधना काल के लगभग बारह वर्ष छः माह में केवल 349 दिन (11 माह 19 दिन) छोड़कर शेष दिन (4166) उपवास किये। यहाँ तक कि कुछ निर्जल– उपवास भी किये। दीर्घ तपस्या के उपवास निम्न अंतराल से किये जैसे छः माह में 5 दिन कम वाला एक दीर्घ उपवास, चार माह वाले 9 बार

तप, तीन माह वाले दो बार तप, ढाई माह वाले छः बार तप, डेढ माह वाले दो बार, एक माह वाले 12 बार, 15 दिन वाले 72 बार। आज भी तपस्वियों के उदाहरण हैं , जिन्होंने पांच माह या अधिक तक तप कर पारण किया, लेकिन कदाचित ही किसी ने इतनी दीघ्र अवधि तक तपकर, कर्म निर्जरा की हो!

अहिंसा के अभिनव–प्रयोग में जो उन्होंने छः माह में पांच दिन कम वाला, व्रत (उपवास), कोशाम्बी नगरी में अपने आत्मोद्धार के लिए दृढ़ संकल्प के साथ रखा था, वह तप तत्कालीन सामाजिक–विकृतियाँ जैसे दास–प्रथा, नारी की अवनत अवस्था के विरूद्ध एवं राजाओं के स्वेच्छाचारी एवं नृशंस–जीवन से प्रजा को मुक्ति दिलाने के लिए किया गया था। कोशांबी नगरी के कामुक (शतानीक)राजा ने पड़ौस की चंपानगरी के राजा स्नेनकेवल (दधिवाहन) से न केवल सुवर्ण, धन, माल, लूटा एवं रक्तपात किया, वरन् उसकी रूपवती पत्नि को जो कोशांबी नरेश की ही सम्बन्धी थी और उसकी पुत्री राजकुमारी चंदनबाला का भी अपहरण किया। चंदन बाला को उड़ाने वालों ने, एक श्रेष्ठी धन्ना के यहाँ उसे विक्रय किया, जिसे धन्ना सेठ की पत्नि ने इर्श्या वश बंदी बनाकर तलघर में रखा। राजा से रंक तक कोशाम्बी नगरी में सभी चिंतातुर हो गये कि महावीर किसी से भी अन्न ग्रहण क्यों नहीं कर रहे हैं ? किसके पापों का यह परिणाम है? अन्त में अपने सभी अभिग्रह पूर्ण होने पर उसी दासी बनी चंदनबाला से बाकुले ग्रहण कर पारण किया। आत्म विजय का एवं हृदय–मंथन का यह श्रेष्ठतम् उदाहरण हो सकता है।

इसी प्रकार साधना काल की अंतिम अवधि में पुनः ग्वाले द्वारा अपने बैल उन्हें सौंपे जाने व लौटने पर बैल न मिलने पर वह अनुत्तर–महावीर पर भंयकर क्रोध से आगबबूला हो गया, उसने कहा, "क्या तुम्हारे कान मिट्टी के प्याले हैं, उनमें तेल डाला है? बार–बार पूछने पर भी तुम उत्तर नहीं देते, न ही संकेत करते हो। इन कानों का तुम्हें कोई लाभ नहीं।" कहकर कोई भयंकर

प्रतिशोधवश, बैर के वश उसने दोनों कानों में सीखें–कीले ठूंस दीं तथा बाहर से उनकी लो को तोड़ दिया। लोगों के द्वारा उस पर कुपित होने पर महावीर ने उसे दोष मुक्त किया कि त्रिपृष्ट–वासुदेव के अठारहवे भव में यह ग्वाला जो मेरा अनुचर था मेरे आदेश के विरूद्ध संगीत जारी रखने के कारण मेरे ही द्वारा उसके कानों में गर्म–गर्म शीशा डलवाने का यह परिणाम है। खोरक वैध द्वारा उन सीखों को खींचवाकर निकालने पर रूधिर की वेगवती धारा ने महावीर के प्रति उस अंतरवैर को धो कर ग्वाले के चित्त को शांत किया। इस कठोर साधना के बाद जब रिजुवालिका नदी के तट पर साल वृक्ष के नीचे वैशाख सुदी दसमी को दो दिन के उपवास के साथ, ध्यानावस्था में गोदोहन आसन में उन्हें केवल–ज्ञान प्राप्त हुआ, तब दिगदिगान्त देदिप्यमान हो गये।

उनके साधनाकाल में एक अवांछित उत्तरीय की तरह, गोशालक उनसे दीर्घ अरसे (6 वर्षो तक) जुड़ा रहा। तब गोशालक पर भी गुप्तचर होने का शक होने से तथा उसकी आमोद–प्रमोद की आदत होने से, वह पीटा जाता रहा। भगवती सूत्र के कथानुसार गोशालक स्वयं को सर्वज्ञ घोषित कर रहा था। गौतम ने उसकी सर्वज्ञता जाननी चाही महावीर ने कहा, "गौशालक अपने आपको सर्वज्ञ समझता है, पर है नहीं।" तब महावीर के दो अनुयायियों के प्रतिवाद करने पर उसने उन्हें भस्म कर दिया। महावीर के समझाने पर उन पर भी तेजोलैश्या का प्रयोग किया जो उनकी देह को तपाकर, उनकी प्रदिक्षणा दे गौशालक के शरीर में घुस गई। फिर भी गौशालक बोला "तेजोलेश्या से तुम्हारी छः माह में मृत्यु होगी।" भगवान ने कहा, "यह असत्य है, मैं सौलह वर्ष और विचरण करूंगा पर तुम तेजोलेश्या के प्रभाव से सात दिन में मर जाओगे, इसमें कोई सन्देह नहीं।" दुखी गौशालक ताप को कम करने के लिए मदिरा के प्याले पीने लगा और नाचने गाने लगा। कुम्हारिन हालाहल, जिसके यहाँ वह रहता था, उसको झुक झुक कर नमन करने

लगा। यह कथा भी हेमचन्द्राचार्य द्वारा रचित "त्रिशष्टि–शलाधा पुरुष", में वर्णित है।

गोशालक आजीविकों का नेतृत्व करता था। आँचारंग–सूत्र में लिखा है एक निगण्ठ मुनि, आमोद–प्रमोद का परित्याग कर देता है। लेकिन जो निगण्ठ आमोद-- प्रमोद से प्रेरणा लेता है वह स्वयं आमोदमय हो जाता है, वह असत्यवादन कर सकता है । इसलिए महावीर ने चार– महाव्रतों के साथ ब्रह्मचर्य को भी जोड़ा। महावीर ने ऐसे धर्म की नींव डाली जो 2500 वर्षों से अपरिवर्तित रहा क्योंकि वह सत्य, अहिंसा, संयम एवं तप पर आधारित था। साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका चतुर्विध संघ की स्थापना की।

जैनों का विश्वास है महावीर ईसा पूर्व 527 में निर्वाण को प्राप्त हो चुके थे अतः बुद्ध उनसे 16–17 वर्ष पूर्व मुक्त हो चुके थे। यह अभिमत सिंहल बौद्ध– परिपाटी पर आधारित है, लेकिन बौद्ध ग्रंथों में यह तथ्य भी स्पष्ट उल्लेखित है कि महावीर के निर्वाण की सूचना, बुद्ध को आनन्द ने दी जिससे यह निष्कर्ष भी निकलता है कि वे महावीर– निर्वाण के समय जीवित थे। यह निःसन्देह है कि दोनों महामानव समकालीन अवश्य थे।

सत्य, अहिंसा के अभिनव प्रयोग, राजनैतिक क्षेत्र में इसी क्रम में महात्मा गांधी ने कर, न केवल भारत को आजादी दिलाई वरन् तत्पश्चात् अंधेरे महाद्वीप–दक्षिण अफ्रीका में भी, एवं अन्य देशों में तथा हाल में मिश्र, टयुनिशिया, लिबिया सीरिया आदि में स्वतंत्रता के लिए यह प्रजातांत्रिक एवं कुछ हद तक अहिंसक क्रांति आई है। यहाँ तक कि इन मार्मिक अहिंसक प्रयोगों की कड़ी में श्री अन्ना हजारे ने मात्र 4 दिन के अनशन से सर्वव्यापी भ्रष्टाचार के विरूद्ध जन लोकपाल बिल बनाने की समिति हेतु आम सहमति बना ली। शस्त्र एक से एक बढ़कर हैं लेकिन अहिंसा अमोघ शस्त्र है। युद्ध में लाखों योद्धाओं को मार गिराने वाले से आत्म विजय करने वाला श्रेष्ठ है।

–जय महावीर

जैन दर्शन एवं बाईबिल में महत्वपूर्ण समानता

महात्मा ईसा के अवतरण के पूर्व यहूदी समाज में बर्बरता, युद्ध, रक्तपात एवं प्रतिशोध की भावना प्रचण्ड रूप में थी। यहाँ तक कि उनके धर्मग्रंथ "ओल्ड टेस्टामेंट" में भी 'दांत के बदले दांत', 'आँख के बदले आँख', निकालने के आदेश थे। प्रेम, मोहब्बत, सेवा लुप्त प्रायः थी। अपनों से बड़ों का आदर नहीं किया जाता था । परमेश्वर के ओदश के विपरीत आचरण था। इसलिए यीशु ने कहा था, "जिन बच्चों को मैंने एक लम्बे समय तक पालन पोषण किया और उनको बढाया वे बड़े आसानी से मेरे विरूद्ध हो गये। जानवर, गधे और भैंस भी अपने मालिक को पहचानते हैं । ओह! वे कैसे पापी लोग हैं मैं उनके लिए चाहे कुछ भी करूं किन्तु वे कुछ भी विचार नहीं करते।"

भगवान महावीर के अवतरण के पूर्व भी कुछ ऐसा ही वातावरण भारत में व्याप्त था। धर्म के नाम पर कर्मकाण्ड, यज्ञों में अनगिनत पशुओं की हत्या, यहाँ तक कि नर बलि भी देने की परम्परा थी। पुरोहितों व ब्राह्मणों का एकाधिपत्य था। समाज में शूद्रों तथा स्त्रियों की अवमानना थी। उन्हें क्रय, विक्रय की वस्तुएँ एवं दास–दासी समझा जाता था। राजा निरकुंश थे एवं लूटमार, युद्ध, धन व वैभव लिप्सा उनके लक्ष्य में थे। प्रजा संत्रस्त थी।

प्रभु इशु ने बारह वर्ष की उम्र में मंदिर के धर्म गुरुओं के साथ चर्चा की। वहाँ रूपयों के लेन देन करने वालों को उन्होंने फटकारा। धर्मगुरु चकित रहे। प्रभु महावीर भी बचपन में मतिज्ञान,

श्रुतिज्ञान, अवधिज्ञान के धारक थे। राजकुल में पैदा होते हुए भी जगत के सुखों से उदासीन थे। उनके माता–पिता एवं बड़े भाई उन्हें संसार में रहने के लिए बाध्य करते थे लेकिन उन्होंने अपनी धन सम्पत्ति का वर्षो दान किया। इशु ने भी कहा, "पाप से मन फिराओ और प्रभु की ओर लौट आओ। धन्य हैं वे जो दीन एवं विनम्र है क्योंकि स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है। यहाँ पृथ्वी पर धन इकट्ठा न करो, यहाँ नष्ट हो सकता है, चोरी हो सकता है। स्वर्ग में धन इकट्ठा करो जहाँ इसका मूल्य कभी नहीं घटेगा। वहीं तुम्हारा मन भी रहेगा जहाँ तुम्हारा धन है। कुबेर के पूजक ईश्वर के पुजारी नहीं हो सकते। ऊंट का सूई की नोंक से जाना सरल है लेकिन धनवान का स्वर्ग में जाना कठिन है।" यहाँ स्वर्ग से तात्पर्य मोक्ष से है। प्रश्न व्याकरण सूत्र आगम में परिग्रह के लिए भगवान महावीर ने कहा "अर्थ ही अनर्थ करता है। इससे आसक्ति होती है। अन्त समय तक देवों एवं इन्द्रों को तृप्ति नहीं।"राजा के अधीन कितने अफसर, नौकर, सेना, सार्थवाह, दास– दासी भार्याएं एवं भोगों उपभोगों की सामग्री, मणी, कंचन होती है फिर भी यह सब कुछ अशरण है। अधुवम है, चंचल है। परिग्रह पाप कार्यों का मूल है। ये हिंसा करवाते हैं। इनके हेतु झूठ बोलते हैं। अपमान, यातनाएँ सहते हैं। फिर भी अप्राप्त की तृष्णा एवं प्राप्त में वृद्धि बनी रहती है। मनुष्य को प्राणों से हाथ धोना पड़े उसे पाने में, एवं रक्षा करने में सदा भयग्रस्त रहता हो, लेकिन पदार्थ तो अपने साथ बंधते नहीं, हम बंध जाते हैं। "प्रशंसा युक्त शब्द सुनने से साधू राग न करें। वाद्ययंत्रों पर मुग्ध न हों , आभूषणों की मधुर घँटियों की ध्वनि सुनकर प्रमुदित न हों। तरूणों–रमणियों के हास्य की, स्नेही जनों द्वारा भाषित प्रशंसा–वचनों की आंकाँक्षा न करें, मनोज्ञ पर राग नही। स्त्रियों के सुन्दर अंगों की ओर आकर्षित न हों। ऐसे पुराने स्मरण से मुँह मोड़ें। आहार संयत करें। रसयुक्त प्रणीत–भोजन न करें। ब्रह्मचर्य भी साध्य हो सकेगा। ऐसा अपरिग्रह जिसने पा लिया वह देह से ज्यादा आत्मिक आनन्द, वीतराग के समभाव आदि को पा

सकेगा।" प्रभु यीशु ने भी महावीर की तरह व्यक्तिगत, आमोद प्रमोद का जीवन नहीं जिया, वरन् आत्मोद्धार एवं लोक कल्याण को ही लक्ष्य रखा। महावीर ने साढे बारह वर्ष तक घोर तपस्या कर केवल ज्ञान प्राप्त किया तथा तीस वर्ष तक प्राप्त ज्ञान को जन समुदाय में वितरित किया। प्रभु यीशु भी अहिंसा, अपरिग्रह, सत्य, अचौर्य एवं ब्रह्मचर्य की राह पर चले जो जैन दर्शन की आधार शिला है।

साधना काल में प्रभु महावीर को विविध कष्ट उठाने पड़े। उन पर ध्यानावस्था में शूल–पाणी नें क्या–क्या उपसर्ग नहीं किये? भुजंग होकर लिपटा, कांटों में उन्हें बांध दिया। सिंदूरी–आग की लपटों से जलाया। भंयकर अट्टहास घोष किये। महाविषधारी द्वारा उन्हें अतिक्रोध से झल्ला कर उन पर वार किये, क्रूर प्रहारों के साथ डसा गया। देवों , असूरों, मालवों द्वारा उन्हें प्रताड़ना दी गयीं। कोड़े बरसाये गये। कुत्ते छोड़े गये। उन्होंने शीत–ताप, क्षुधा, प्यास को समभाव से सहा। दास प्रथा व नारी उत्थान को निमित्त रखते हुए अपने संकल्प अनुसार लगातार पांच माह से अधिक तप के पश्चात् चंदनबाला से बाकूले – रूक्ष – भोजन ग्रहण कर, पारण किया। कदाचित ही कहीं उनके जैसी कठोर साधना, अहिंसा, व्यवहार एवं आदर्श में दृष्टिगोचर होती है। व्यवहार में अनेकांत एवं दर्शन में स्याद्वाद को उन्होंने अपनाया।

यदि अंहिसा की अन्य कोई ऐसी अनुपम मिसाल व्यक्तिगत जीवनं में है तो प्रभु ईशु में निखरकर सामने आई है। शैतान एवं सर्प द्वारा प्रभु ईशु को भी अनेक कष्ट दिये, उपसर्ग किया। तत्कालीन नेताओं, पदाधिकारी एवं राजा के प्रतिनिधि द्वारा उन्हें कदम–कदम पर यातनाएँ दी गईं। फिर भी उनके मूल उपदेश, अहिंसा, सत्य एवं प्रेम की अनुपम त्रिवेणी थे।

"अपने शत्रुओं से प्रेम करो। जो तुम से घृणा करते हैं उनके साथ भी भलाई करो। जो तुम्हें श्राप देते हैं उनकी प्रसन्नता के लिए प्रार्थना करो। तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ मारें तो दूसरा

गाल भी सामने कर दो।" जब महावीर ध्यानावस्था में थे ग्वाले द्वारा इंगित किये बैल उसके लौटने पर नहीं मिले तो उन्हें चाबुक मारे, उन्हें कुएँ में लटकाया जाने लगा, तब इन्द्र ने चाहा कि वह प्रभु की रक्षा करें, लेकिन उसे अनुमति नहीं दी। इसी प्रकार साधना के अंतिम चरण में भी ग्वाले के बैल न मिलने पर असह्य क्रोध से आग बबुला होकर ग्वाले ने प्रभु के कानों पर खीलें ठोंके। विश्व वंद्य चरम अहिसंक महावीर ने वैर की इस अंतहीन श्रृंखला का हृदय के भीतर निगुढ़ अंधकार की पर्तों के पीछे दर्शन किया कि वैर और प्रतिशोध की अटूट परम्परा जिससे संसार के प्राणी भव भव से ग्रस्त एवं त्रस्त हैं जैसा कि स्वयं महावीर के द्वारा अपने पूर्वभव त्रिपृष्ठ वासुदेव के भव में अत्यन्त क्रोध एवं अंह के वश यह ग्वाला जो तब शैयापाल था, उसके द्वारा मधुर संगीत में लयलीन होने से, उसे बंद न करने की अवज्ञा करने से, उसके कानों में गर्म–गर्म शीशा डलवाने का स्वयं को दोषी पाया एवं स्थापित किया की केवल क्षमा, अद्वितीय प्रेम ही इसका समाधान है। पापों से प्रायश्चित एवं छुटकारों का एकमात्र उपाय है। उसे वरण किया। अपूर्व धैर्य पूर्वक ग्वाले द्वारा कानों में लकड़ी की कीलें ठोकने पर अपार वेदना को बिना प्रतिशोध सहन किया जिससे वैर बदले की अन्तहीन श्रृंखला समाप्त हो।

ऐसा ही चरम उदाहरण विश्व इतिहास में प्रभु यीशु का है, जब शैतान यहूदा चाहता था कि यीशु को धोखे से पकड़ा दें यहुदा के साथ सैनिकों की टुकड़ी एवं पुलिस थी। यहुदा यीशु के पास आया, आगे बढ़ा और मित्र के समान उनका गाल चूमा। तब यीशु के साथी ने अपनी तलवार खींचकर मुख्य पुरोहित के नौकर का कान उड़ा दिया। यीशु ने उससे कहा"अपनी तलवार म्यान में रखो जो तलवार चलाते हैंवे तलवार से मारे जायेंगें।"धर्म प्रचार तीर और तलवार से नहीं होते। धर्म की जीत दोनों की जीत है जिसमें किसी की हार नहीं होती।" यीशु के विरूद्ध झूठी गवाहियाँ दी गईं और झूठे आरोप लगाये गये। मुख्य पुरोहित ने पूछा– बता

तू परमात्मा का पुत्र मसीह होने का दावा करता है या नहीं? यीसु ने कहा हाँ मैं हूँ ", तब उसने कहा "यह परमेश्वर की सरासर निन्दा है।" "प्राणदण्ड" दें उन्होंने उनके मुँह पर थूका, थप्पड़ मारे, कोड़े मारे। जैसे महावीर के लिए मखलि गौशालक ने कहा , "वे सर्वज्ञ नहीं मैं सर्वज्ञ हूँ।" जिसका महावीर ने उस पर न क्रोध किया न बदला लिया।

पीलातुस ने पूछा, "क्या तुम यहुदियों के राजा हो ?" तब यीशु ने कहा, "मेरा राज्य इस जगत का नहीं।" सैनिकों ने काँटों का मुकुट पहनाया, उपहास किया; "यहुदियों के राजा को प्रणाम।" पीलातुस ने कहा में यीशु में कोई दोष नहीं पाता हूँ। लेकिन यहुदी नेता ईर्ष्या रखते थे देखा कि भीड़ उपद्रव कर रही थी तब पीलातुस ने पानी मंगवाया। भीड़ के सामने कटोरे में हाथ धोते हुए कहा कि ,"मैं इस भले मनुष्य के खून से निर्दोष हूँ।" भीड़ ने कहा, "उसका खून हम पर और हमारी संतान पर हो।" जब यीशु को क्रॉस पर चढ़ा रहे थे तो यीशु ने फिर भी प्रार्थना की, "पिता इन्हें क्षमा करें क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं।"

परम अहिंसक महावीर एवं यीशु में ऐसी अपूर्व समानताएं हैं। काश विश्व की सबसे बहुसंख्यक जाति इसाईगण अपने जीवन एवम् व्यवहार में, एवम् अन्य लोग भी प्रभु महावीर से प्राणी मात्र के प्रति अहिंसा एवं करूणा को हृदयंगम कर सकते ! शाकाहार एवं विश्व प्रेम के प्रति और सक्रिय रचनात्क सबक लेते !

GLIMPSES OF HISTORY OF JAINS

Only Mahaveer the last of twenty four Tirthankars can be called historical person, in view of available evidences. Other Tirthankars belong to antiquity or realm of mythology. The buddhists scriptures just written after Buddha, mention, Mahaveer as Nayputta of Nigantha or Jina being contemporary of Buddha. 'Swentamber Jains' canonical texts coming down on the basis of correct utterances, audition from Guru to the disciples, were reduced to writing in the fifth century A.D., narrate the birth of Lord Mahaveer in B.C. 599 on Chaitra Sudi 13. He was of 'Gyatra-Kul' a Ksahatriya prince of Kundgram Vaishali, which is about 43 KM. from Patana, then ruled by Srenik- Bimbasar- so mentioned in 'Dassa- Sut-Skandh' (Jain text) or Bimbasar in Buddhist texts. Nirgrantha or 'Jin' meant getting rid of passions-aversions and attachments.

The parents of Mahaveer followed the 'Chaturyan-Dharma'- fourfold religion. Non violence, Truth, Nonstealing and Non Possession (Ahimsa, Satya, Achaurya and Aparigrapha of Lord Parswanth born 250 years before Mahaveer.) As per Jain mythology the 22nd

Tirthankara Arishtnemi was born 84,000 years before the birth of Lord Mahaveer and the 21st Tirthankar 5 lac years before that. The cosmic time division in Jains is in 6 aeons each of descending and ascending order.

The first era of a descending order (Avasarpani) is Sushama-Shushama, Sushama, Sushama-Dushama, Dushama-Sushama, Dushama, Dushama-Dushma. Each consisting of four crore (sagaropam) years, (i.e. beyond calculation) 3 crore-crore, 2 Crore- Crore, 1 Crore less by 42000 years consisting of four aeons. The fiftth one 21000 ordinary years and this sixth one of 21000 ordinary years respectively. The Ist Tirthankara Rishabhdey was born in IIIrd aeon and attained salvation three year and 8.5 months before the end of the IIIrd era. So also Mahaveer attained 'Nirvana'in the same period before the end of the IVth era. Except Rishabdeo all Tirthankares belonged to the IVth era. The account of all 24 Tirthankares and remaining 39 great personages has been given by: 'Kalikal- Sarvagya' Hamachandrcharya in his treatise - 'Trishast Salgha- Purush.' The others are 12 Chakravartis, 9 Baldeos, 9 Vasudeos as and 9 prati-Vasudeos. Baldeo's brother was Vasudeo Krishna, who belonged to the period of Tirthankare 'Neminath'. Rishabdeo finds mention in 'Bhagwat Purana' and 'Vishnu Puran'. No other Tirthankars figure in Hindu-texts.

There is a distinct Jain- Ramayan, called 'Padma Charitra' of 'Padma Purana'. Padma is the Jain name of 'Ram'. In Jain Ramayana the account of 'Padma' given in Trishasti Salgha- Purush', Laxman is held 'Narayan-Vasudeo' and Ram is Baldeo, Ravana being 'prati-

Vasudeo'. In a Diagmber Ramayan Sita was the daughter of Mandodari, the wife of Ravana who fearing some evil foreboding sent her on her birth to Mithila and got her buried in the land, there. She was found by king Janak while tilling a field and was brought up by him. The rest of the legend is almost the same.

JAINISM & VEDIC RELIGION:

The Jain religion differs from Vedic religion which emphasized rites like animal sacrifices to appease Gods and dieties to go to heaven after death. Purohits served medium to utter correct 'Mantras' and perform ablutions. 'Someras- drink' offered all heavenly joys and pleasures on earth itself. Jainism had no place for priest- crafts, animal- sacrifices, rituals and Somras drinks etc. The prime of place in 'Nirvān' went to Kshastriya-trithankars instead of Brāhmin- priests. Jains adopted non- vedic concepts of Meditation from 'Yogshastra', Atomic particles and their indestructibility of 'vaishashik' and 'sāmkhaya' respectively. Their preceptors 'Kapil' and 'Kanad' were also called 'Tirthankars'.

The division into 'Brāhmin', 'Kshastriya', 'Vaishya', and 'Shudra' is based on our actions and not on castes (Uttaradhana 25/312, 313). The division based on birth through castes, breeds ego and vanity. Virtues and merits alone are worthy. Sutrakratang' in Agmic text (IInd part 6th chapter/44) gives an account of discussion of Ardrak Muni with a 'Vedic Purohit' who says, "One who feeds two thousand disciples earns virtues and attain Heaven". Ardrek controverts him. "Feeding two thousand sacred cats (Brahmins- if engaged in animal sacrifices)

would undergo untold sufferings of hell, encircled by hungry wild animals'. Harikeshibal Muni was Chandāl or untouchable by birth but was highly venerated being. Mere cropping of hair, or utterance of 'OM', 'OM' would entitle no one to be, 'Sraman or Brahamin' respectively. It is equanimity- 'Samatā' and delving deep in soul, living as per its dictates would call one 'Sraman or "Brahmin".

CHARACTERISTIC EVENTS OF MAHAVEER'S LIFE:

(Bhagawati- Sutra Āgam) gave a graphic account through a query from Gautam; the principal disciple of Mahaveer, to him, "why is it so that when Devananda and her husband Rihabhudtta - Brāhmin joined the congregation to pay their obesiance to Lord Mahaveer, Devnanda stood intently gazing the Lord, her bodice tightened, breasts secreted-oozing milk, hair stood on their ends. She felt such exhilaration as a kadamb tree blossomed suddenly after rains?" Mahaveer himself clarified, to Gautam "this Brahmin- lady 'Devnanda'; is my mother, looking- at me full of motherly compassion because my first birth was through her."

Mahaveer at the age of thirty renounced world, pulled up his hair by his first undertaking, vow to schew actions inculcating sins henceforth. He dedicated himself to conquer passions of anger, pride, concert, deciet, and aversion, by undertaking severe most penances. He felt great was the burden of past sins-accumulated of previous births and exemplary effort of penances was called for. He would not lag behind in manliness. He even mentioned it in 'Acharang Agam,' "It was highly difficult and improbable elsewhere; as I could destroy the mighty

chain of past accumulated sins; and therefore I may realise your potential , don't let it lie dormant."

In the very first rain-stay at Asthigrām (of his 42 rain stay of his ascetic life) he took up challenge to test his soul force, through means of utter fearlessness and non-violence. It came from Yaksha-Shoolpani, (a demi-God turned violent through hellbent hatred of persons of the ill fated village Asthigram). The legend is that poor bullock was subject to grave cruelty first by the greedy trader harnessing it in bullock-cart heavily laden with goods, wading through a torrental river. The ox was almost broken, left in the village to be looked after by the villagers against the maintenance given by the trader. Through sheer callous neglect and misappropriation of maintenance, the ox died decrepit, turning into Yakhsha Shoolpani, in next birth who rained pestilence, famine, disease and death on the village and turned it into a heap of bones. Mahaveer was subjected to all torments, stings, and firey attacks but delivered Yaskha, from pangs of anger and retribution, ultimately.

His other four months stays were as under. Champā-Pithi (3), Vaishali- Baniyagram (12), Rājgriha & Nalanda (14),Mithila (6) , Badidhitte (2) , Albiya (1), Paniya Bhumi (1), Sravasti (1) and Pāvā (1) . On being beaten by a cowherd for not getting his bullock, Indra appeared to protect him to whom Mahaveer said the path of self-realisation seeks no dependence. It has been ever treaded alone and would always be so. He under took fastings (without any food whatsoever and may be many even without water) for 4166 days in a span of 12½ years almost, leaving only 349 days, in following major spells.

The biggest one of six months less by five days, of four months (in six times) 1½ months two times, of one month 12 times, fortnightly 72 times. (Even present day there are cases of similar fasting on some lesser scale). The severe most and the longest fast he undertook of 175 days was to deliver the rulers of their lust of war, keeping persons in bondage, including young girls as slaves, plundering, irrespective of close relations. One immediate instance was such heinous actions of the king Kākmuk Shatānik of Kaushambi subjecting the ruler Dadhivan and subjects of Champa to all these atrocities, including abducting the beautiful queen and the princess Chandan Bala.

Mahaveer would go for alms from door to door but as per his vow would not accept. Only when such ordeal lasted for long 175 days and nights and could be found one slave girl chained in the dark dingy underground room at its door-way, eager to make offerings of the coarse boiled grains from a winnower. Considering all the conditions of vow (Abhigrah) fulfilled, taking it as divine dispensation Mahaveer accepted the alms.

In the long arduous process of penance he also forged the powers of soul over body. In the quest of his liberation, he equally dedicated himself for freedom of women and slaves and without that it was not worth it. So also when he was on the verge of attaining omniscience the extremes of physical sufferings alongwith the rigorous course of fasting and meditation, he underwent. One cowherd seemingly entrusted his pair of bullock, while he was in deep contemplation. On return of the cowherd, not finding his bullock, he felt exasperated, sought angrily his

explanation. The mute Mahaveer infuriated him all the more, "are these ears of yours, earthen cups, filled with oil"? He was excited with uncontrollable rage and as such thrust two nail like wooden pokers in his ears. At the house of one Siddharth Baniya, Khark-Physician noticed melancholy Mahaveer and with great efforts pulled them out, leaving gushing blood, oozing out. Then at the end of 12½ years of such austerities at the bank of Rijubalika under a Shall tree on vaishakh Sud 10, he attained ominscience, radiating all the directions with brilliance.

Goshālak who had been with Mahāveer, for as long period of six years; during the period of observing penances; was often beaten severally for his curiosities in amorous delights and licentious habits besides Mahaveer and he being at times treated spies of some king and so in sheer desperation he left Mahaveer and after some period would again join him. Goshālak also possesed in some miraculous powers and was head of sect called 'Azivikās' professed fatalism and even proclaimed himself 'Omniscient'. Gautam asked Mahaveer about it to whom he said Goshalak does possess powers of 'Tejoleshyā' and can destroy some of his enemies but not omniscients. He is not omniscient. Goshalak used Tejoleshya in anger on Mahaveer but after making three rounds of him and causing certain hurt to him entered the body of Goshalak. Yet Goshalak threatened Mahaveer that he would die due to it in six months. Mahaveer said, "It is not truth, I would still be alive for sixteen years though you would die in a week undoubtedly". Goshalak began gulping more and more liquor to assuage, the intense heat he was suffering from and began dancing

and bowing repeatedly before Hallhal ,the potter woman, with whom he resided.

JAINS AFTER MAHAVEER:

The ardent followers or Principal disciples during Mahaveer's life time were 11 Gandhars, of whom only two Gautam and Sudharmā survived Mahaveer; and Gautam too attained salvation immediately after Mahaveer. History knows very little about other Gandhars except Sudharmā who lived for 20 years after Veer Nirvān. Most of the canonical texts owe to him as sacred sermons of Mahaveer to Gautam Gandhar and or Sudharmā preaching Jambooswami his disciple on their queries. The first six Acharyas (Preceptors) in succession after Mahaveer were (1) Sudharma, (2) Jambu, (3) Prabhava, (4) Shayambhava, (5) Yashobhadra, (6) Bhadrabāhu and Sambhut Vijay. It is said that Shayyambha had precognition of the impending death of his son disciple 'Manak'; as such he reduced the entire canonical literature into one text called Dashvaikālik, a faithful representation of it.

Bhadrabahu who was the last omniscient, 'Srutkeval', of entire 12'Āgam's and 14'Purvas', He however did not impart knowledge of 12th Agam to his disciple 'Sthulibhadra' to be parted with to others. He belonged to the period of Chandragupt Maurya.

Ashoka's grandson Sampratti propagated Janism vigourously. Of B.C. 300. credible Jain edicts have been found in Tamil-Nadu in Brahmi script- in Madurai and Tinnevali. Within 100 years of Ashoka, Jain religion

reached Pathankot. More than ninety rock-edicts have been found of Kushan- period.

The periodical conferences of Jain preceptors took place as follows. One at Pataliputra- 160 years after 'Nirvan' of Mahaveer, under Sthulibhadracharya, resulting in collection of 11 Angas. Then over centuries these were again scattered. Then under 'Arys Skandil', after about 840 years of Mahaveer, such conference of 'Munies' took place at 'Vallabhi' and finally after 980 years of Mahaveer under the aegis of Devardhi- Khsamā Sraman. Forty-five canonical texts were collected, reduced to writing and edited, which are extant, acceptable to different folds of Swetāmbar branch of Jains in slightly varying numbers (a) Angs are 11, (b) Upangs (12), (c) Prakirns 10, (d) Chhedustra 4, (e) Moolsutra 5 and (f) Two special texts Nandi and Anuyog.

ANGAS are -

(i) Acharange, (ii) Suyagadāng, (iii) Thanāng, (iv) Samvayāng, (v) Bhagwati Vivhpannatt, (vi) Nayamma Dhammo Kahao, (vii) Uvasagdashao, (viii) Antagaddashao, (ix) Anutarov Vayyadaso, (x) Panahvāgar and (xi) Vivagsooyal.

Four Moolsutras are (i) Uttardhyayan, (ii) Āvashyak, (iii) Dasvaikalik and (iv) Pind Niryukt.

OTHER RENOWNED PRECEPTORS OF SWETĀMBAR SECT AND THEIR WORKS-

Archarya 'Siddhsen' wrote his famous work 'Nyay-Avatar', about whom even Kalikāl Sarvagya i.e. present times' omniscient Hemchandracharya, said – "His efforts

before Siddhsen's mystic compositions are trifles". Acharya Samantbhadra wrote 'Syadwad' authoritatively. Nemichandrachrya's famous work is "Gommatsar; Haribhadrasuri was disciple of famous Guru Jindutta Suri. Who also had his disciple Jinkushalsuri. Haribhadra wrote about 444 works, of which 88 are available. "Yogdrashti- Samuchhaya" is his great text. In eleventh century was Sri Hemchandra Āchāryā (during 1089 to 1173 A.D.) who had to his credit several great works said to be in hundreds of which 'Trishasthi Salagha Purush Charatra', 'Siddha Hemshabda- nushashān', 'Kāvya Kumarpal Charitra', are outstanding. During the reign of Akbar was Sri Heer Vijayjee; who was given great ovation in 1582 at Fatehpur Sikri. He was listed amongst the then greatest 21 intellectuals of India in 'Aine- Akbari' in those days.

The period of renaissance of Jainsim especially between 1032 to 1439 A.D. was the golden period of Jain architecture and sculpture, also manifested in construction of unparallel temples of Mount. Abu- 'Vimal Vashin' by Vimal Shah in 1032 A.D. and 'Nemanth temple' by Bastupal- Tejpal in 1232 A.D. a dream come true in marble in shaping and chiselling superb, chandelier, ceiling panels, pillars, images and elephants etc. Then in 1439 AD was constructed a gigantic architectural temple exquisite at Rankapur by Dharnāseth or Dharanāka. All these unique master piece creations were the everlasting gifts of 'Porwal Jains'.

Incidentally it may be said that Porwal, Oswals and Srimals were the followers of 'Uday Prabh Suri'; and Ratna Prabh Suri emerging from Bhinmal in 7th and 8th

century A.D. Those who went to 'OSIYA' were called Oswals, although the 'Gurus' converted them to Jains and not to Porwal a name associated with Pura-gate at Bhimal, or Oswals as such.

Amogst Swetāmbar sect also 'Khartargachha' began in the year 1090AD, who defeated in canonical polemics monks residing in temples. Hence the name. Then in 1289 AD the severe penance undertakers were dissociated to form 'Tapāgachha'. 'Anchalgachha', followers keep a piece of cloth in their hands instead of Muhpatt i.e. in place of cloth fastened at the mouth. Then there are 'Trustutik' followers who don't dedicate 4th stanza to demigods or demigoddesses, as only Tirathankars or 'Arhats' overcoming 'attachment and aversions', deserve our dedication, unlike 'Four-Stuti-Followers'.

Venerable Sri Rājendrāsuri initiated the tristuti-sect and by writing seven volumes of 'Abhidhān Rājendra kosh', contributed immensely, uniquely to Jain literature by distilling entire Jain texts into dictionary form alphabetically. It is a masterly treatise base, for all students of Jainism. Spiritually dedicated Acharyas like Bhupendra Suri, Dhanchardra Suri and Upadhyay Manmohan Vijay adorned the order besides great historian, literary and spiritual Acharya like Yatendra Suriji. Both of them adore statures of 'Arhats' and worship temple. Unlike that however are 'Sthānaks' and 'Terā Panthi'. It is said 'Lonkajee' was a lay person, however well versed in scriptures, who taught many monks who opposed image-worship although, the view is not strictly based on scriptures. Shubhring quotes 'Naydhamal-

Kahao' 210 B and Raipsenej 87 b, 94(IV), "Their followers however believe 'Lonkejae' having been initiated". Āchārya Dharmdasjee sent 22 learned 'Sadhus' to propagate, the faith; as such called 22nd sect or 'Bāis-Sampradāy'. 'Terāhpanth' began in 1760. One meaning especially pleasing to the followers that monks observe 13 vows (of which 5 are Mahāvrat, 5 Samities and 3 Gupties). Āchārya Bixu was its originator. 'Jayācharya' has been a prolific writer. It is a powerful movement with a well knit- organisation under one Āchārya. 'Āchārya Tulsi' made great organisational efforts for its expansion. Mahāpragya lent it literary and more liberal content. A new order lesser than monk named 'saman' was introduced who could go abroad for teaching, propagating principles of Janism. It is the need of hour. Present Āchārya of Terapanth is Mahasramanjee.

Diagmbar branch is second major division of Jains. It occurs distinctly as late as 683 years after 'Nirvan' of Mahaveer as per an edict at Sravanbelgola of 1600 AD. The last of preceptors versed in 'Āgamic- knowledge' passed away by 683 years. Bhadrabahu II passed in the year 515 after 'Veer Nirvan'. He belonged to South India and amongst his disciples were the famed 'Kundkund' 'Gupt, Gupta', 'Mahanand; I and Jin Chandra. After Bhadrabahu I and before Bhadrabahu II (who passed in B.C. 12) and before Bhadra had been – Dhārsan Āchārya who knew even part of 'Purvas' coming down even earlier to Mahāveer. Bhadrabahu II thus could anticipate occurence of 12 years long famine stalking at Ujjain. He imparted this learning to his disciple 'BhutBali' and 'Pushpdant, who authored 1 'Shatkhandāgam'. Āchārya

Kundkund wrote 84 texts in prākrat. He was revered like a 'Gandhar'. Amongst his works are 'Samaysār', 'Pravachansar' and 'Panchastikay'. His disciple was 'Umāswati in 135 AD to 219 A.D. , who wrote his works both in Sanskrit and Prakrat. He was revered both by Swetāmbars and Diagambars. His work 'Tattavārth Sutra' is highly recognised by both sects, which includes logics also. Although he wrote about 500 books but according to Diagmbars a few only are known as 'Pujaprākaran' , 'Prasmit' and 'Jambudweep samas'. His disciple was Samantbhadra who wrote commentary on 'Tattavārthsūtra' known as 'Devagam' a great work of 'Syadvad'. Last amongst such galaxy of learned ones was 'Akalank' who wrote 'Nyay Vinichaya' ,'Labdhisāstra' and 'Swaroop Sambodhan'.

The philosophy preached by Mahāveer and Jainsim coming down since ages, has served as bed-rock of this religion undergoing little change, firmly embedded in the frame work laid down by scriptures. Thus basically there is little difference between Digambar and Swetambar sects, except on some of the details as follows, worth mentioning.

1. Digambars do not think Mallināth, the 19th Tirthankar to be a female as considered by Swetāmbars. In fact Digambars rigidly believe that no female, untouchable and householder can ever achieve salvation. It might be due to the influence of Hindu puritans. It is most unlike Swetāmbars and even probably against the tenor of Jain philosophy which entitles all alike for reaching that state.

2. No one can attain 'Nirvāṇ' without giving up clothes. This too is academic as both sects think that hardly anyone can attain it after 'Jambu Swāmi. Hence even the difference of opinion of Digambars with Swetāmbars that Omniscients 'Kevali' before giving up body, do not partake meal or need to do ablutions, is not of practical value.

3. Digambars unlike Swetāmbers think, the embryo of Vardhamān not having been transplanted from the womb of Devnandā to Trishalā, nor Mahāveer having married or begot a daughter 'Priyadarshani, and so on; other differences are still less significant.

In the world of sculpture, Digambars have left monumental images of 'Bāhubaljee – one such is at 'Sravanbelgolā' 17 meters high built in 931 A.D. by Chamāṇdrai. There is another such image 37 feet high built at Venur in 1603 A.D. There is Treasure-Hall of Hoishayala kings who also got built temples dedicated to 24 Tirthankars. In northern India a cluster of famous Jain temples is at Khajurao - One such temple is 'Parswanāth' comparable to famous 'Kand Mahadeo'. Another such cluster is at 'Deogarh' consisting thirty one Jain temples which have more than thousand statues, one of which is praised as the finest one in India.

Such is the great heritage of Jainism forcing us to ponder over our sources of unity. Despite many schisms let us question ourselves how near or far are we from Mahaveer. May we call ourselves his real followers or are we merely like 'Goshālak' or an unwanted piece of cloth attached to Mahaveer to be shed , earlier the better, as Goshalak lived so close and so long with Mahāveer, yet

always belied him through his misdeeds. It is only by following whole heartedly, Jain principles, faithfully, putting them into practice we would not only benefit ourselves of his great faith, right knowledge and noble acts, but would be able to disburse its benediction to the entire world, the message of 'live and let live'.

जैन दर्शन

नवकार महामंत्र

नवकार महामंत्र बीजमंत्र है। अक्षर थोड़े हैं, लेकिन ब्रह्माण्ड इसका क्षेत्र है। इसे समस्त आगम एवं चौदह पूर्व के ज्ञान का सार कहा गया है।

जिनसासणसारो, चोदस पुव्वाण जो समुद्धारो।
जस्स मणे नमुक्कारों, संसारो तस्स किं कुणई।।

1. यह माहश्रुत स्कन्ध है। भगवती–सूत्र, प्रज्ञापना–सूत्र, महानिषीथ– सूत्रादि (आगम) में यह उल्लेखित है। नवकार महामंत्र अहंकार एवं ममकार को मिटाने वाला रामबाण है। विनय एवं वीतराग के शुभभाव–अध्यावसायों से ओत–प्रोत है। गुणों की पावन पूजा है। इसमें व्यक्ति, वर्ग, लिंग, सम्प्रदाय, धर्म, जाति यहाँ तक कि राष्ट्र एवं काल की सीमाओं से भी परे केवल गुणानुराग है। संकीर्णता न होने से यह सर्वव्यापाक एवं सर्वग्राही है। यह चिरकालिक चिरंतन सत्य है, विश्ववंद्य है।

इसके पाँचों पदों में जहाँ पंच परमेष्ठि को नमस्कार किया गया है, वहाँ उनमें सम्यग्–ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप, त्रिरत्न एवं सम्यग्–तप एवं वीर्याचार इन पाँचों आचार पालन का भी बोध होता है, अनुशीलन होता है। वैसे प्रत्येक पद में इन सबका समावेश होते हुए भी एक दृष्टि से प्रत्येक पद एक–एक उपरोक्त गुण का विशिष्ट द्योतक भी है। वैसे वे अत्यन्त गुणवान है।

तं बहु गुणप्पसायं मुक्खसुहेण परमेण अविसायं।
नासेउ मे विसायं कुणउ परिसावि अप्पसायं।।

–(अजित शांति) 26 गाथा

अनेक गुणों से युक्त, परम मोक्ष सुख के कारण ,विषाद रहित दोनों, इस प्रकार सभी जिनेश्वर मेरे विषाद एवं कर्म आश्रव को दूर करने का प्रसाद देवें।

2. महामंत्र मंगल भावों से भरा हुआ है इसलिए सब मंगलों में श्रेष्ठ, एवं सर्वोपरि मंगल है। अरिहंन्त की आराधना का आधार यह है कि उनके सब अमंगल भावसमूल नष्ट हो चुके हैं। निर्मल निजस्वभाव में स्थित हो गये हैं, अत्यन्त प्रभावप्रद हों, जिन्हें सब पदार्थों के स्वभाव अच्छी तरह ज्ञात हैं। उन भगवतों को प्रणाम करता हूँ। अजित शांति स्तवन में इन भावों को इस तरह से वर्णित किया है –

ववगयमंगुल भावे ते हं विउलतवनिम्मलसहावे।
निरूवम महप्पभावे, थोसामि सुदिट्ठसब्भावे।।

– (अजित शांति) दोहा–2

इसलिए महामंत्र के लाभ के लिये निश्चित रूप से कहा गया है –

सव्व पावप्पणासणो।

यह सभी पापों का समूल नाश करने वाला मंत्र है। माँ से बढ़कर जगत के प्राणियों के लिये कौन हितकारी होता है लेकिन जन्म जन्मान्तरो से भटकी हुई अपनी आत्मा रूपी माँ को सुलभ कराने वाला यही महामंत्र है।

तं संति संतिकरं संतिण्णं सव्वभयां।
संतिं थुणामि जिणं, संतिं विहेउ मे।।

– (अजित शांति) दोहा–12

वे साक्षात शांति रूप हैं, शांतिकर्ता हैं। सब भयों को हरने वाले हैं ऐसे शांतिनाथ प्रभु मुझे शांति दें।

3. इस मंत्र की युगों युगों से मोक्ष पथ गामियों ने परम श्रद्धापूर्वक आराधना की है। इसे सतत् उच्चारित किया है। स्मरण किया है एवं जीया है। यह प्राणवंत, प्रभावी एवं क्षमतावान है। सरचार्ज्ड है। इसकी तरंगे ब्रह्माण्ड में विद्यमान है। पुण्यशाली भव्य आत्माएं इसका श्रद्धापूर्वक स्मरण कर पुण्यानुबंधी पुण्य बांधती हैं। प्रभु की सेवा में अनेक नरेन्द्र, देव, देवियाँ विद्यमान रहते हैं। भाव पूर्वक स्मरण का निःसंदेह बहुत महात्मय है। ऐसा कई आत्माओं का निजी अनुभव है। भाव नमस्कार कर्म काटने का अमोध अस्त्र है। कर्मरूपी बीहड़ वन के लिए दावानल सदृश है। तिमिराच्छादित घोर अटवी में प्रखर सूर्य के समान पथ प्रदर्शक है। ऐसे जंगल में जहाँ अहंकार एवं ममकार के व्याघ्र हूँकार कर रहे हैं, उसमें यह मंत्र आत्मारूपी केसरीसिंह सदृश है।

4. नवकार मंत्र में पाँचों पदों के साथ नमो का उच्चारण नमनीयता यानी गुण ग्राहकता के साथ साथ पवित्र ऊँ "ओम्" "ओम्" का उच्चारण कराता है। 'अरिहंता, असरीरा, आयरीया, उवज्झाय, मुणिणो पचक्खर निप्पण्णों, ओंकारो।" पंच परेमेष्टि (समण सुतं) जो अरिहंत का अ। सिद्ध जो अशरीर है, कर्म क्षय से उस पद का भी अ , आचार्य का 'आ', उपाध्याय का 'अ', साधु यानी मुनिका 'म' मिलकर 'अ+अ+आ+उ+म= 'ओम्' उच्चारण बनता है। भावपूर्वक ओम्--ओम् पवित्र घोष है जिसके लिये कहा है--

ओंकारबिदुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायंति योगिनः।
कामदं, मोक्षदं चैव ओंकाराय, नमो नमः।।

5. नमो अरिहंताण से विनय तप सधता है। उससे गुणों का प्रसाद मिलता है। अटूट लगने वाली भवसागर की अन्तहीन श्रृंखला जो वैर प्रतिशोध, भय, अदम्य इच्छाएँ लालसाओं की मृगमरीचिका के समान है। आर्तरौद्र परिणामों से जिनके सौष्ठव, भाव–विवेक, प्लुष्ट यानी झुलुस चुके हैं,. उनके जीवन मे प्रायश्चित, संलीनता, काउसग्ग, मौन, ध्यान से, शांति– सुधारस की वर्षा करता है। राह सुलभ हो जाती है।

6. इसका प्रथम एवं द्वितीय पद 'नमों अरिहंताणं' एवं 'नमो सिद्धाणं' है। अरिहंत शिखर हैं, सिद्ध भी शिखर हैं। अंतिम मंजिल है। जबकि अन्य तीन पदों 'नमो आयरियाणं', नमो उवज्झायाणं', 'नमो लोए सव्वसाहूणं ये मार्ग हैं लगता है कि शिखर रह गये हैं, राहें लुप्त हो गई हैं। लेकिन यदि राहें सही हैं तो शिखर भी प्राप्त होंगे। प्रभु के शासन में चतुर्विध संघ (श्रावक–श्राविका, साधु– साध्वी) के विधान को इतना महत्व दिया गया है। प्रत्येक आत्मा अलग अलग स्तर पर होगी अपने विकास की स्थिति में। उसे अपना गन्तव्य स्वयं ढूँढना है। सारे अनुभवों से प्रत्यक्ष गुजरना है। मील के पत्थर एवं राहें मार्गदर्शक हो सकती हैं। दोनों का पारस्परिक महत्व है। स्वंय वीर प्रभु ने केवल्य के बाद भी 30 वर्षों तक पैदल विहार कर जन–जन को उपदेश दिया है। धर्म को युग के लिये प्रासंगिक बनाया है, यद्यपि उसके सिद्धान्त सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक थे। उनके उपदेश जो सूत्र रूप में सार रूप में थे, उन्हें गणधरों ने आगम में रचा, सूत्रबद्ध किया। रत्नत्रय का विस्तीर्ण ज्ञान–पथ प्रशस्त किया, लोक–भाषा में। अतः श्रावक जो भावसाधु भी बन सकते है, वे तथा भेष एवं भावयुक्त साधु सच्ची राहें बन, भव्य जन–जन के लिए पुनः उन उत्तुंग शिखरों को, उन किरीटों

को स्वयं पाकर, संघ के लिये भी उक्त वरदान दिला सकते हैं।

7. अब प्रत्येक पद की प्रमुख विशेषताओं का अध्ययन करें। नमस्कार अरिहंतों को, 'नमोअरिहंतांण'-- अरिहंत प्रभु वे हैं जिन्होंने जीवन काल में केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया। राग द्वेष को जीत लिया। आयुष्यपूर्ण होने के साथ जो सिद्ध हो जाते हैं। अरिहंत(सामान्य) जिनके शेष कर्मों की अवधि एवं आयुष्य कर्म में अंतर रह जाने पर एवं विशेष क्रिया जो समुद्घात कहलाती है उसके द्वारा पांच ह्रस्व अक्षर बोले उतनी अवधि में शेष सभी कर्म (धातीकर्म-- ज्ञानावरणी, दर्शानावरणीय, मोहनीय एवं अंतराय पहले ही नष्ट हो चुके हैं। केवल्यलब्धि के समय ही) नाम, गोत्र वेदनीय एवं आयुष्य भी पूर्ण कर लेते हैं। इस प्रकार आठों कर्म क्षय कर लेते हैं। सर्वज्ञ हैं।

'अट्ठविहं पिय कम्मं, अरिभूयं होई सव्व जीवाणं।
तं कम्ममरिहंता, अरिहंता तेण वुच्चंति।।

—आव.नि 914

संसार के सब प्राणियों के वैरी अष्टकर्मों को अरिहंत ने चूर-चूर कर दिया इसलिए अरिहंत कहलाते हैं। प्रत्येक को इस कार्य के लिये राह दिखाने वाले हैं।

'संसार अडवीए मिच्छत्तण्णाण' मोहिअपहाए।
'जेहिं कयदेसिअत्तं ते अरिहंते पणिवयामि ।।

—आ.नि 909

आठ कर्म जिनमें ज्ञानवरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय एंव अंतराय चार घाती कर्म तथा वेदनीय नाम, गोत्र, आयु, अघाती कर्म हैं जो जगत के सब जीवों के साथ शत्रु रूप से जुड़े हुए हैं। इन कर्मों का वे संहार करने वाले होने से इन्हें अरिहंत कहते हैं। (इनमें मोहनीय कर्म सब धाती कर्म का भी सेनानी है।

मिथ्यात्व रूपी मोहनीय कर्म इस संसार रूपी अंधकारमय अटवी में हमें भटकाता है।) जिन वीतराग प्रभु ने अपने उपदेश से राह प्रशस्त की है, उन अरिहंतो को दण्डवत प्रणाम करता हूँ। जो भव बीजों को नष्ट करने वाले हैं, उन्हें नमस्कार किया है।

भवबीजांकुरजननाःरागाद्याः क्षयमुपागता यस्य।
ब्रह्मा व विष्णुर्वा, हरिर्जिनों वा नमस्तस्मै।

–(आचार्य हेमचन्द्रसूरी कृत)

8. 'नमो अरिहंताणं' से श्रावक के छः आवश्यक कर्तव्य पूरे होते हैं–जैसे सामयिक होती है, चतुर्विंशांति स्तवन होता है, गुरुवन्दन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग एवं प्रत्याख्यान, वर्तमान के लिये संवर, भविष्य के लिए प्रत्याख्यान, यानी व्रत, पापकर्म से निवृति हेतु । 'नमो अरिहंताणं' देवगुरु का वंदन है। इसके साथ सामयिक करने से समता की वृद्धि होती है। कलह क्लेश मिटते हैं। सम भावों द्वारा प्रतिक्रमण यानी पापकर्म से पीछे हटने की प्रेरणा मिलती है। इसका ध्यान करने से कायोत्सर्ग एवं आत्मशुद्धि होती है। काया से मन हट कर जीव आत्मा की ओर उर्ध्वगामी बनता है। जीव के लक्षण है–

'समता, रमता, उरधता (उर्ध्वीकरण), ग्याकता, सुखभास।
वेदकता, चेतन्यता ये सब जीव विलास।।

धर्म या आत्मा के दस लक्षण निम्न भी कहे हैं–खति , मुत्ती, अज्जव, मद्दव, लाघव संजे, तवे चेइयं, बंभचेरे। अर्थात् क्षमा निर्लोभिता, सरलता, मृदुता, सत्य, संयम , तप, ज्ञान एवं ब्रह्मचर्य। पल–पल आर्त एवं रोद्र ध्यान दूर होकर जीव के धर्म ध्यान (पापमुक्ति की कला का विकास) एवं शुक्लध्यान से आत्मा की अक्षुण्णता उसकी विरलता, सर्वज्ञता प्राप्त हो, शक्ति उद्भाषित होती है। अजीव के लक्षण हैं –

'तनसा, मनसा, वचनता (पुदगल के लक्षण है।)जड़ता, जड़ सम्मेल।
लघुता, गुरुता, गमनता ये अजीव के खेल।।

—(समयासार बनारसीदास)

इस मंत्र से भव प्रपंच कम होता है। भेद ज्ञान प्रकट होता है। तन, मन के प्रति चंचलता, दुष्टवचन, कलह, जड़ पदार्थों की आसक्ति , कम होकर ,चेतन शिवरूप से स्नेह बढ़ता है।

अनुभव चिन्तामणि रतन, जाके हिय परगास
सो पुनीत शिवपद लहै, दहै चतुर्गतिवास।
ताते विषै भोग में मगन सौ मिथ्यात्वीजीव
भोग सौ उदास, सो समकिती अभंग है।

—(समयसार बनारसीदास)

9. ऐसे सम्यकत्ववान को धर्म में संशय न होगा, शुभ कर्म फल की भी इच्छा न होगी। अशुभ कर्म उदय देखकर चित्त में ग्लानि नहीं होगी। सत्य पर दृष्टि होगी। सत्य को जानने एवं उसे पालन करने का पूरा प्रयास होगा। मिथ्यात्व का लेश मात्र भी आग्रह न होगा।आनन्दधन की तरह अपने स्वरूप में चित्तस्थिर एवं सतत् प्रफुल्लित होगा। शास्त्रों में भी कहा है —

'निःशंकिय, निकंखिय, निवितिगिच्छा, अमूढदिट्ठिय।
उववूह थिरकरणें, वच्छल, पभावणे अट्ठ।।

—(अतचिार गाथा सूत्र 3 गाथा)

मिथ्यात्व की, अहं बुद्धि की, भूल मिटेगी कि मेरे किये दूसरों को नुकसान होगा या भला होगा ऐसे अभिमान भरे वचन नहीं कहेगा। अपने भवों एवं अपनी देह को देखो, विपश्यना करो। जिस स्वदेह एवं परदेह पर हम मुग्ध हैं, उसकी स्थिति देखो, "ऊपर की चमक दमक पट् भूषण की, धोखे लगी भली, जैसे कली है कणेर

की। ऐसे देह, याही के स्नेह, याकि संगतिसों, हो रही हमारी गति कोल्हू के से बैल की।" (समयसार बनारसीदास)

ऐसे शुभ अध्य व्यवसायों से असंख्य उपकारी देव, चौसठ इन्द्र जो प्रभो की सेवा में तत्पर रहते हैं वे हमारे विघ्न, उपसर्ग, बाधाएं हरन में सहायक हो जाते हैं। हमारे कर्मों की निर्जरा होती है। आत्मा की अनन्त शक्ति शनैः शनैः ध्यान करने से प्रकट होती है।

सतरंज खेले राधिका, कुब्जा खेले सारि।
याकि निशदिन जीत है, वाकि निशदिन हारि।

सत्यवचन का सदा उर्ध्वारोहण है। आचार्य जयसेन नमस्कार मंत्र के बारे में फरमाते है-- अद्वेत नमस्कार होने पर मैं और प्रभु का भेद मिट जाता है , ज्यों--ज्यों निज--स्वरूप प्रकट हो जाता है। ऐसी अभेद साधना अरिहंत दशा में ही होती है।

10. ऐसे अनेक अनुभव युगों से भव्य जीवों को हुए हैं, विघ्न दूर हुए हैं। शांति मिली है। नमों अरिहंताणां से सभी क्षेत्र मे विचरे वर्तमान अरिहंतों को भी तथा भूतकाल में हुए अरिहंतों के साथ भाव नमन एवं द्रव्य नमन हो जाता है। पूर्व में अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे के अन्त में भगवान ऋषभदेव आदि के जीव तथा चौथे आरे में भगवान महावीर का जीव ऐसे चौबीस तीर्थंकर हुए जो वर्तमान में चौबीसी कहलाते हैं। वर्तमान में विचर रहे, महाविदह क्षेत्र में बीस तीर्थंकर हैं , जिनमें श्री श्रीमंदर स्वामी, युगमन्दर स्वामी आदि हैं तथा भविष्य में होने वाले तीर्थंकर के जीव, जिनमें श्रेणिक राजा का जीव, देवकी महारानी, वासुदेव श्री कृष्ण, सुलसा सती आदि के जीव भी शामिल हैं।

11. तीर्थंकरों के पाँच कल्याणक मनाये जाते है-- च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवल्य एवं निर्वाण। प्रभु महावीर के जन्म कल्याणक का छोटा सा प्रसंग दिया जाता है। तीर्थंकर प्रभु के

गर्भधारण पर माँ को पुनीत चौदह स्वप्न आते हैं। तीनों लोकों उर्ध्व, मध्य एवं अधोलोक में उद्योत होता है, उनके जन्म कल्याणक चौसठ इन्द्रों एवं कोटि देव देवांगनाओं द्वारा परम उल्लासपूर्वक मनाया जाता है। चारों प्रकार के देवताओं को घंटी की आवाज से सूचना हो जाती है। सौधर्मेन्द्र अपने वैभव के साथ ऐरावत हाथी पर बैठकर आता है। इन्द्र हजारों नेत्रों से दर्शन करते हैं। कोटि देवांगनाएँ नृत्य करती हैं। मार्गशिला पर पाण्डुक वन में एरावत हाथी पर बालक को बिठाया जाता है। सुमेरू पर्वत पर ले जाया जाता है। स्नानाभिषेक में कुल ढाई सौ (250) अभिषेक क्षरीसमुद्र के पानी से होते हैं। उनके लिए कलश बहुत बड़े होते हैं, सामान्य मनुष्य उनकी कल्पना भी नहीं कर सकता। सौधर्मेन्द्र इन्द्र द्वारा सशंकित होने पर कि इतने द्रव–प्रवाह को शिशु भगवान कैसे सह सकेंगे, प्रभु द्वारा जरा सा अंगुष्ठ दबाने पर सुमेरू पर्वत कम्पायमान हो जाता है। इन्द्र आश्वस्त हो जाते हैं।

तीर्थंकर के बल की कल्पना इस प्रकार करें कि एक चक्रवर्ती सारे भरत–खण्ड का राजा होता है। अनेक चक्रवर्ती एक देवतुल्य। अनेक देव एक इन्द्र तुल्य और अनेक इन्द्र तीर्थंकर तुल्य होते हैं। यह उनकी आत्मशक्ति का प्रमाण है। तीर्थंकर जिन्हें जन्म से मति, श्रुति, अवधिज्ञान होता है, 'सयं संबुद्धाणं', स्वदीक्षित होते हैं। सभी चौथा ज्ञान दीक्षा के समय और हो जाता है। केवल पुण्य तत्व का सेवन करते हैं। कर्म निर्जरा करते हैं। प्राणी मात्र के लिए परम उपकारी विश्व हितकारी जीव होते हैं।

12. तीर्थंकर जो गुणातीत हैं, उनके विशिष्ट बारह गुण कहे गये हैं, जो 'अतिशय' उत्कृष्ट कहलाते हैं यानी कोई आश्चर्य नहीं ऐसी भव्य आत्माओं के लिए विशिष्ट योग द्वारा उत्कृष्टताएँ सुलभ होती हैं, शरीर निरोग हो, केश नख, न

बढ़े, उनका रक्त माँ के दूध की तरह धवल हो। श्वासोश्वास सुगंधित हो, आकाश में इन्द्र ध्वजा उनके साथ हो अशोक वृक्ष साथ हो, पुष्पवृष्टि हो, आभामण्डल हो, उत्तम मणियों युक्त सिंहासन हो, त्रय छत्र और चामर हो, दिव्य ध्वनि हो, ऋतुएँ अनुकूल हों, सुगंधित वर्षा हो, अनुकूल जलवायु हो, उन्हें ज्ञान विषय हो, तीनों लोक के सभी पदार्थों के स्वभाव तक जानते हों, उनकी वाणी मधुर, सत्यमय, स्पष्ट, सुग्राह्य, लोक भाषा में हो, वैर भाव भूल कर सभी वर्ग के प्राणी उनका श्रवण करें, प्रतिवादी स्वंय निरूत्तर हो जायें। पूजातिशय से देव देवेन्द्र शरणागत हों, अतिवृष्टि, अनावृष्टि एवं दुष्काल न हों। इनके कुछ अतिशय जन्म से, कुछ धातीकर्म क्षय से एवं कुछ देव प्रदत्त हैं व कुछ विशिष्ट व्यक्तियों को अथवा मुनियों को भी किन्हीं समय पर एसे अनुभव होते हैं कि कई कठिन परिस्थितियाँ स्वतः आश्चर्यजनक ढंग से अनुकूल हो जाती हैं। गांधी का ऐलान सारे भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन के समय निर्विरोध आज्ञानुसरण होता था। उनके शब्दों मे चमत्कार था। अतः तीर्थंकर प्रभु को अतिशय प्राप्त हो यह परम सत्यमय है।

13. इन पांचों पदों में से अरिहंतों ने सबसे पहले सम्पूर्ण सत्य का साक्षात्कार कर मिथ्यात्व मोहनीय रूपी घोर तम का उच्छेदन किया तथा जगत को सत्य के सूर्य केवली बनके बोध दिया। इसलिए सर्वप्रथम अरिहंतों को नमन किया गया है। निश्चय ही इसकी साधना सर्व मंगलों में सर्वोपरि मंगल है। उपसर्गों का हरण करने वाला है। समभाव में स्थिर करने वाला है। उन पर कर्मों के झंझावत प्रभाव नहीं डाल सकते। पुराने कर्म क्षय होते हैं, नये कर्म अल्प अल्पतर बंधते हैं, भवसागर की यात्रा कम होती जाती है। मंत्र सिद्धि के लिए प्रत्येक अक्षर का सही उच्चारण अनिवार्य है।

14. नमोसिद्धाणं

जो पूर्ण हो गये। सिद्ध हो गये। सब कर्म फल झड़ गये।

निच्छिन्ना सव्वदुक्खा, जाइ–जरा–मरण बंधणविमुक्का
अव्वाबाहँ सोक्ख, अणुहंवंती सया कालं।। (आव.नि. 982)

आठों कर्म मुक्त सदा सदा हो गये। अशरीरी जीव आत्मा स्वरूप में सिद्ध शिला पर आरोहित हो गया। सब दुख सर्व प्रकार के विलीन हो गये। अनन्त ज्ञान शक्ति प्रकटित हो गई। किसी प्रकार का बंधन न रहा। आकाश की तरह मुक्त, कोई आयु देह आदि का बंधन भी नहीं। इन गुणों की अटल अवगाहना, सिद्ध, बुद्ध, शुद्ध, ब्रह्म सदा अनुभव करते हैं। वे अतः निरंजन, निराकार, शिव, मुक्तात्मापरमात्मा, अजर अमर हैं। सिद्ध होने में किसी जाति, कुल, राष्ट्र, लिंग का बंधन नहीं। वे अलख, अनादि, समाधि, सुख में लीन, चिदविलास, निजज्ञान स्वरूप निखरते हैं।

नमुत्थुणं में सिद्ध प्रभु की शक्रेन्द्र ने स्तुति की है। आठ कर्म क्षय से आठ विलक्षण गुण प्रकट हुए। अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख, क्षायिक समकित, अटल अवगाहना, अमूर्तिक, अगुरु, अलघु अनन्त–वीर्य, केवलज्ञान, दर्शन हस्तकमलवंत तीनों काल की अवस्था ज्ञात हुई है। केवलीसिद्ध भगवान प्रत्यक्ष देख सकते हैं। वस्तु के गुणधर्मों के मूल उन्हे स्पष्ट हैं। केवलदर्शी हैं। विहंगम दृष्टि से नीचे का एक साथ दृश्य प्रकट होता है। उसी प्रकार समस्त वस्तुओं को साररूप में, सत्य रूप में, उन्हें दर्शन उपलब्ध हैं। सिद्धों की प्रमुख विशेषता है–सम्यक् दर्शन। जिन्होंने सब पदार्थों के गुणधर्मों को तत्व रूप में, बीज रूप मे पहिचान लिया हैं। वहाँ विस्तार समाप्त होकर साररूप बन गया। निश्चय नय अनुसार स्वयं मात्र आत्म स्वरूप, निजरूप में, अवस्थित हो गये। फिर भी शक्रेन्द्र ने नमुत्थुणं सूत्र में सिद्ध भगवान के अनेक गणुों की स्तुति की है–

सव्वन्नूणंसव्वदरिसीणं
सिव, मयल, मरू अमणंत मक्खयमव्वाबाह्म
मपुणरावित्ति, सिद्धिगई नाम धेयं ठाणं संपत्ताणं
नमो जिणाणां जिअभयाणं

सर्वज्ञ एवं समदर्शी हैं, कल्याणकारी, अचल, निरोगी, अनन्त, अक्षय, पीड़ारहित, पुनरागमन रहित, सिद्ध गति प्राप्त, अक्षय शिला पर स्थित, समस्त भावों को जीतने वाले, ऐसे जिनेश्वर को वंदन करता हूँ।

15. **नमो आयरियाणं।**

पंचाचारसमग्गा पंचिदिय दंतिदपपणिद्धलणा
धीरा गुणगंभीरा आयरिया एरिसा होंति

–(नि.सा. 73)

'पंचिदिया' सूत्र में आचार्यों के 36 गुणों का वर्णन है। उसका सारांश उपरोक्त दोहे में है। संक्षेप में जो पाँच आचार– ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चरित्राचार, तपाचार एवं वीर्याचार का पालन करते हैं, पंचेन्द्रिय रूपी मदोन्मत्त हाथी के अभिमान पर अंकुश रखते हैं, इन्द्रिय संयम पालते हैं। पंच महाव्रतों– अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपिरग्रह एवं ब्रह्मचर्य का हर संभव पालन करते हैं। पाँचों समितियाँ–ईर्या (चलने–फिरने) समिति, भाषा–समिति, एषणा–समिति, आदान–निक्षेप समिति, व्युत्सर्ग आदि जीवन की सामान्य क्रियाएँ – चलना–फिरना, बोलना, इच्छाएँ करना, चीजें उठाना, रखना, दूषित वस्तुएँ फैंकना, प्रवाहित करना आदि में पूरा विवेक पालते हुए पापकर्म से बचने के प्रति जागरूक रहने से तात्पर्य है। इसी प्रकार तीन–गुप्तियों का और संवर धारण किये हुए हैं , यानी मन, वचन, काया, तीनों रूप से पाप कर्मों के आश्रव द्वार को रोके हुए हैं। इस प्रकार अहिंसा, संयम और तप से कर्मफलों से मुक्त रहते हैं। क्षमादि दस धर्म पालते हैं। आत्मा के क्षेत्र में सतत् प्रगति हेतु शरीर को साधे हुए हैं। ऐसे धीर, गुणगम्भीर आचार्य होते हैं। इनमें उपरोक्त छत्तीस गुण होते हैं।

16. ऐसे स्वानुशासित आचार्य, अन्य शिष्यों एवं समस्त श्रावक श्राविका संघ तथा सभी जातियों आदि के लिए प्रकाश पुंज होते हैं। अनुकरणीय होते हैं। सहज श्रद्धा, आदर के पात्र होने से उनका सारे समाज पर अनुशासन स्थापित होता है। नेतृत्व के गुण प्रखर होते हैं। 'वीर प्रभु का शासन जयवंत वर्ते ', उसके वे सजग प्रहरी एवं प्रेरक होते हैं। सूत्रधार होते हैं। शिष्यों, श्रीसंघ सब मे धर्म के प्रति आस्था एवं उत्साह बढ़े, ऐसे लोकोपयोगी, संयम, शिक्षा, दीक्षा--प्रचार--प्रसार कराते हैं। इसलिए वे संघपति, पट्टधारक, गच्छाधिपति, आचार्य कहलाते हैं। अहंकार, ममकार को मिटाकर, मिथ्यात्व हटाने की सुशिक्षा देते हैं। संघ के सर्वांगीण आध्यात्मिक विकास कराने में सचेष्ट रहते हैं, वे स्वयं रोद्र ध्यान त्यागे हुए होते हैं।

17. इस हेतु आचार्य देश काल के अनुसार धर्मचक्र प्रवर्तन करते हैं। अतः तदनुसार उनका व्यापाक दृष्टिकोण अत्यावश्यक हो, ताकि धर्म को प्रासंगिक बना सकें। हिंसा से त्रस्त मानवता, आणविक शस्त्रों की होड़ की कमी, विश्व युद्धों की विभीषिका, शस्त्रास्त्रों की लिप्सा तथा शोषण को रोका जा सके। स्याद्वाद के सिद्धान्त की अभिव्यक्ति से विचार सहिष्णुता में वृद्धि हो। एक पक्षीय दृष्टि की जगह, जैन दर्शन के स्वर्णिम सिद्धान्त 'अनेकान्त दृष्टि' से समस्त जैन पहले स्वयं अभिभूत हों। फिर अन्य लोग भी उनसे अनुकरण कर सकें। अपरिग्रह में भी पहल की जा सके। असंयमित जीवन की इस बेतहाशा मृगतृष्णा के युग मे वीतरागता की आवश्यकता को चरितार्थ किया जा सके। अतः वे धनपतियों, मायावियों एवं उनेक द्वारा बनाये प्रासादों के समान स्थानकों, आदि से प्रभावित न हों। केवल शास्त्रीय परिकल्पनाओं के संकुचित दायरे से उठकर जीव एवं जगत के लिए प्रासंगिक बनें। मानव की ज्वलंत समस्याओं का निदान, वीरप्रभु की

ज्ञान गंगा रूपी आगम की रोशनी में ढूँढ सकें। विचार गोष्ठी हों, खुलापन हो। धर्म जड़ नहीं, धर्म प्राणवंत है। आज भी उतना ही, जितना पूर्व में था। आचार्य भगवन् नायक हैं। वे ही मार्गदर्शी हैं। अतः आचार्य भगवंत् को नमस्कार किया गया है।

18. जैन धर्म के प्रभावक आचार्यों का वर्णन साध्वी संघमित्राजी ने किया है। भगवान महावीर की परम्परा में आचार्य सुधर्मा स्वामी एवं दिगम्बरों के अनुसार गौतम गणधर से शुरू होती है। उन्होंने आगम वैभव को सुरक्षित रखा। तत्पश्चात् जम्बूस्वामी ने उसे संजोये रखा। ये सभी सर्वज्ञ बने। उनके पश्चात् छः श्रुत केवली हुए, यानी उनहें चौदह पूर्व का ज्ञान था । वे प्रभव, शयंभव, यशोभद्र, संभूतविजय, भद्रबाहु एवं स्थूलिभद्र हुए। पश्चातवर्ती आचार्यों में देवाधिक्षमाश्रमण के समय आगमों को लिपिबद्ध किया गया। आचार्य सुहस्ति सम्प्रति राजा के समय में हुए। आचार्य कुंदकुंद, उमास्वाति (तत्वार्थसूत्रादि के रचयिता) , सिद्धसेन दिवाकर (स्याद्वाद के रचयिता), संमतभद्र, हरिभद्र, हेमचंद्राचार्य, हीरविजय, नेमिचन्द, जिनदत्त, जिनकुशल श्री जी आदि भी पश्चातवर्ती स्वनामधन्य आचार्य हुए। वर्तमान युग में भी यशस्वी आचार्य हुए हैं, हो रहे हैं जैसे राजेन्द्र सूरी, शांति सूरी, वल्लभ सूरी, देशभूषण, जयाचार्य, हस्तीमल जी, तुलसी, महाप्रज्ञ, एलाचार्य, प्रकाश मुनि आदि प्रमुख हैं। यह सूची उदाहरणार्थ है, समूची नहीं है। अन्य भी उल्लेखनीय महान आचार्य हैं। महत्वपूर्ण बात नाम नहीं, आचार्य के गुण हैं जो इन गुणों से अनुप्राणित हों तथा युग की गति भी मोड़े इन गुणों की ओर। आचार्यों की यह महत्ती परम्परा अरिहंत, सिद्ध एवं मोक्षपथगामी साधुओं के बीच महान सेतु का कार्य कर रही है। आचार्य अपने गुणों से श्लाघनीय हैं। जैन दर्शन मे आचार्यों की निर्धारित विशेषताएँ उनमें प्रतिबिम्बित होती हैं।

19. **नमोउवज्झायाणं ।**

जो उपाध्याय हैं जो आत्मभाव में अवस्थित रहते हैं। सतत् आगमों का अध्ययन करते–करवाते हैं, इसलिए कई यशस्वी उपाध्याय हुए हैं जिन्होंने इन आदर्शों को चरितार्थ किया है। आगमों का निम्न परिचय दिया जा रहा है–

द्वादशांग (बारह अंग अर्थात् आगम) में जैन दर्शन का चिंतन, गूढ ज्ञान दर्शन भरा हुआ है।

आचारांग – श्रमण निग्रंथों के आचार, ज्ञान, दर्शन, चरित्र, तप, वीर्याचार पर दो श्रुतस्कन्ध में 18 हजार पद हैं। बड़े गंभीर, स्पष्ट, सरल एवं अन्तःकरण को स्पर्श करने वाले भाव हैं।

सूत्रकृतांग– स्वमत एवं परमत के अनुसार कुल 363 परमतों का वर्णन करते हुए जैन मत की विशिष्टता उल्लेखित की है। 36,000 पद मे दो श्रुत स्कन्द हैं।

स्थानांग– खानों, नदियों, पर्वत, गुफाएं आदि का तत्व दर्शन है। एक लाख चालीस हजार पद हैं।

समवयांग– जीव, अजीव के एक से सौ तक विकास दर्शाये हैं।

भगवतीसूत्र– गौतम स्वामी द्वारा भगवान महावीर से 36,000 प्रश्न किये हैं, उनके उत्तर लाखों पदों में दिये हैं।

ज्ञातधर्मकथा– उपधानतप, संलेखना, सत्य, शील, उत्तम भावों पर प्रकाश डाला है।

उपासकदशांग– विशिष्ट दस श्रावकों के नगर, उद्यान, समवशरण, उपधानतप, शीलव्रत, विरमण व्रत, प्रत्याख्यान, पौषधोपवास, उपसर्गों, संलेखना, अनशन, पादलिप्त आकाश गमन, देवलोकगमन, बोधि समयक्त्व का वर्णन है।

अन्तक्रतदशांग – जन्म मरण की परम्परा का अन्त करने वाले साधुओं का वर्णन है। तैंतीस महान साधुओं का वर्णन है।

कर्मविपाक– शुभाशुभ कर्मों के फल का रोचक कथानक रूप मे वर्णन है, जो मर्मस्पर्शी है।

अनुत्तरोपतिकदशांग– सामान्य जैन द्वारा भी उक्त आगम पठनीय है।

प्रश्नव्याकरण– इसमें आश्रव एवं संवर का विस्तार से वर्णन है जो कर्म की जड़ है। भवप्रपंच निवारण में सहयाक है।

दृष्टिवाद– जो लुप्त है।

उपांग में नंदी सूत्र मे 24 तीर्थंकरों का तथा भगवान महावीर के 11 गणधरों का वर्णन है। बृहत कल्पसूत्र में आत्मरमण तथा व्रतों में दोष पर प्रायश्चित का विधान है। व्यवहार सूत्र भद्रबाहु द्वारा प्रणीत है। स्वाध्याय पर जोर है। आवश्यक सूत्र जैन साधना का प्राण है। जीव शुद्धि कर आत्मोन्नति हेतु औषध है। श्रावक के आवश्यक कर्त्तव्यों में सामयिक, चतुर्विंशस्तवन, वंदन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग एवं प्रत्याख्यान का वर्णन है। उपाध्याय स्वयं इन अंग–उपांग आगमों का अध्ययन करते हैं, उसको जीवन का आदर्श बनाते हैं एवं अन्य को इस हेतु प्रेरित करते हैं।

बारस अंगोजिणक्खाओं, सज्झाओं देसिओ बुहेहिं।
ते उवइसंति जम्हा उवझाया तेणवुच्चंति

–(आव.नि. 995)

20. **नमो लोएव्वसाहूणं ।**

भाव रूप से जो समस्त विश्व में साधु हैं उन्हें वंदन हैं।

जगत उपयोगी, सर्वहितार्थ, कार्यों में समर्पित सभी को इसमें वंदन है। जाति–पाति, लिंग, क्षेत्र की सीमा से परे। जिन्होंने समता को वरण कर लिया है, मोक्ष मार्ग के पथगामी हो गये हैं, उन सबको नमस्कार किया गया है। परिग्रह के बंधन तोड़ जो अपरिग्रही हो गये हैं, निर्ग्रन्थ हैं। जिनके स्वार्थ छूट गए हैं। भावों को संयत कर लिया है। साधु का तात्पर्य केवल द्रव्य साधु नहीं ,बल्कि भाव साधु है, स्वादु नहीं, श्रमण हैं, इन्द्रिय–निग्रह जिन्हें वरण हो गया है। सादा जीवन एवं उच्च विचार जिनके लक्ष्य हैं। जो वास्तव में निष्कपट सरल हो गये हैं। जो दस धर्म, 12 तप पालते हैं, 12 भावनाओं से भावित हैं, स्याद्वाद, अनेकांतवादी एवं आग्रह–विहीन बन गए हैं। आडम्बर, अभिमान, पाखण्ड से जो कलुषित होना नहीं चाहते। सत्य के लिए सरल बन गये। क्षुद्र स्वार्थ से रहित हो गए। जहाँ भी जिस रूप में जो जीव मात्र पर करूणा एवं अहिंसा के भावों से ओत प्रोत होते हैं। जिन संतों ने मानव जीवन को श्रेष्ठता पर पहुंचाया, उनके उदार प्रशंसक बन गए ताकि उनमें भी उन्मुक्त रूप से वे ऐसे भाव आवे। महाव्रतों, समितियाँ, गुप्तियों का जो वरण करते हैं, त्याग इनका जीवन बन गया है खुली पोथी की तरह। संसार के विस्तार की निस्सारता की जगह ऊर्जा को लक्ष्य की ओर केन्द्रित कर लिया हो, सिद्धि त्रिरत्न ही जिनका लक्ष्य है। जो ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चरित्राचार, वीर्याचार, तपाचार का निम्न रूप से पालन करते हों।

(1) **कालविणये, बहुमाण, उवहाणे, तहय निण्हवणे।**
वंजण अत्थतदु भए अट्ठविहा, नाणमायारो।।

(अतिचार गाथा सूत्रम)

ज्ञानाचार हेतु आवश्यक है सही समय अध्ययन, ज्ञानियो के प्रति परम विनय, ज्ञान के उपकरणों का आदर करें। उपधान तप, सीमित उपयुक्त आहार, ज्ञानदाता का नाम सादर प्रकट करें, न छुपावें, सूत्र का सही उच्चारण एवं अर्थ स्पष्ट करें।

(2) दर्शनाचार हेतु

निस्संकिअ निकंखिअ, निवितिगिच्छा अमूढ़दिट्ठि अ
अवगूह, थिरीकरणे, वच्छल पभावणे अट्ठ।।

–(अतिचार गाथा सूत्रम्)

सत्य की सही पहचान होने के लिए स्वयं निशंक हों, अन्यमतों के क्षणिक चमत्कार से प्रभावित, भयभीत, भ्रमित न हों। न ऐसा स्वयं करें। अपने गुण एवं पराए दोष को लोपित करें। धर्म में स्थिर हो, अडिग हो, वात्सल्य भाव रखे तथा आत्मगुणों में उल्लासित हों।

(3) चरित्राचार

पणिहाणजोग जुत्तो, पंचहि समिइहिं तीहिगुत्तिहिं।
एस चरितायारो अट्ठविहो होई नायव्वों।।

–(अतिचार गाथा सूत्रम्)

यानी मन, वचन एवं काया इन तीन योगों से युक्त पाँचों समितियों, का पालन करें। यत्नूपर्वक होश से चले। हित मित वचन बोलने, जीवनोपयोगी वस्तुओं की सीमा रखें। व्युत्सर्ग समिति जो परठने की वस्तुएँ उन्हें भी होशपूर्वक अहिंसक विधि से विसर्जित करें। दस धर्मों का पालन करें। उत्तम क्षमा, मार्दव (अहंकार रहित) ,आर्जव (एक दम सरल, निष्कपट व्यवहार), सत्य (जो स्व एवं परहितकारी मधुर हो), शौच (आत्मशुद्धि) ,संयम, तप, त्याग, अकिंचन्य (निर्ग्रन्थ), परिग्रह रहित, ब्रह्मचर्य (ब्रह्म में स्थित हों, इन्द्रियों को समर्पित नहीं) ,बाईस परीषह सहन करते हों। आत्मा की प्रखरता की प्राप्ति हेतु कष्टों को सहर्ष वरण करते हों।

(4) तपाचार हेतु

**बारसहिम्मि वि तवे, सब्भिंतर बाहिरे कुसलदिट्ठे,
अगिलाई (ग्लानिरहित), अणाजीवी (आजीविका के लिए
नहीं), नायव्वों सो तवायारो।**

जिनेश्वर ने छः बाह्य तप एवं छः अभ्यन्तर तप कहे हैं जो– अनशन, उनोदरी, रस–त्याग, वृतिसंक्षेप, कायाक्लेश एवं प्रतिसंलीनता तप हैं तथा अभ्यन्तर तप में प्रायश्चित, विनय, वेयावच्च (सेवा), स्वाध्याय,ध्यान एवं व्युत्सर्ग हैं । ऐसा तप ग्लानि क्षोभ रहित प्रसन्नता से करे, आजीविका हेतु नही। ऐसा माने।

(5) वीर्याचार–

**अणिगुहिय, बलवीरिओ, परक्कमई जो जहुत्तमाहुत्तो,
जुजई अ जहाथामं, नायव्वो विरियायारो।**

–(अतिचार गाथा सूत्र)

जो अपने बल वीर्य यानी सामर्थ्य को छिपाये बिना, सावधान, उद्यमशील होकर, सूत्रों, शास्त्रों की आज्ञानुसार प्रवतन में पराक्रम दिखाता है, प्रवृत्ति करता है, वह वीर्याचार है।

21. इसी प्रकार साधु बाईस परीषह सहन कर , शारीरिक कायाकष्ट सह कर , इतना सुदृढ़ हो जाए कि उसका शरीर आत्म–उन्नति के लिए ये कष्ट बाधास्वरूप न समझे। आकुल–व्याकुल न हो। उनके प्रति बेखबर हो जाए। बारह भावना से प्रेरित हो।

वे आत्मरमण हेतु ही शुद्ध उचित आहार लेते हैं। याचक या दास भावना से आहार नहीं लेते हों। आगम में निर्धारित मर्यादा के अनुकूल हों। जो साधु के निमित्त आहार न हो तथा गृहस्थ को कोई भौतिक लाभ आदि पहुँचा कर या लाभ दिखा कर या उसके लोभवश गृहस्थ द्वारा दिया गया आहर ग्रहण न करे। जैसे गाय थोड़ा थोड़ा चर लेती है, उसी प्रकार साधु भिन्न–भिन्न घरों से गोचरी लेते हैं।

जगत एवं जीव के प्रति सत्य भावना से प्रेरित हो, कि जगत अधुवम है, अनित्य अशरण है, अशुचि है। एकत्व है यानी प्रत्येक जीव अपने अपने कर्म भोगता है। अन्यत्व है, यानी जीव का लक्ष्य पुद्गलों से अन्य, आत्म रूप है, जो शरीर से भिन्न है। जीव का लक्ष्य चक्राकार चौरासी लाख योनियों में भवभ्रमण नहीं, शिखर की ओर सिद्धशिला के अग्रभाग की ओर अग्रसर होना है। आश्रवों के द्वारों में न भटक कर पानी में कम्बल की तरह भारी होकर डूबना नहीं , वरन् लाघव से कर्म निर्जरा करता हुआ हल्का रहे। ऐसा बोध दुर्लभ है उसी से मोक्ष का वरण होगा। इस हेतु साधु दस धर्म पालते हैं। साधु उत्तम क्षमावान, मार्दव, यानी मद रहित होगा। आर्जव युक्त यानी निष्कपट, निर्मल स्वभाव वाला, सरल होगा। सत्य आचरण वाला होगा। शोच यानी त्याग करेगा। संयमों 'खलु' (सही) धर्म मानेगा। तप और त्याग पूर्वक अकिंचन यानी निर्ग्रन्थ बन विहार करेगा तथा ब्रह्मचर्य यानी ब्रह्म में तल्लीन होगा । आदर्श तो आकाश के समान हैं, लेकिन लाभ भी अनन्त हैं। उसके लिए उतनी ही प्रभावना भी जरूरी है।

22. **ऐसो पंच नमुक्कारों, सव्व पावप्पणासणों, मंगलाणंच सव्वेसिं, पढमं हवई मंगलम्।**

जैन दर्शन एवं शाकाहार, मद्यनिषेध जैसे पर्याय हो गये हैं, उसी तरह जैन कहलाने वाले जैनियों को नवकार–महामंत्र उनकी सर्वप्रमुख पहचान हो गई है। ऐसे पांच परमेष्टियों को किया गया नमस्कार महामंत्र 108 गुणों को साधक के मन में प्रतिष्ठा करता है। जो अरिहंत के बारह, सिद्ध के आठ, आचार्य के छत्तीस, उपाध्याय के पच्चीस एवं साधु के 27 गुण विशिष्ट हैं।

23. इस महामंत्र की साधना युगों से जनसाधारण तथा योगियों ने परम भावना पूर्वक की है। अतः एक एक अक्षर परम शक्ति सम्पन्न है। चार्जर्ड है। अंतरिक्ष में इसकी गुणकारी शक्ति विद्यमान एवं प्रखर है। धर्मध्यान ,शुक्लध्यान, काउसग्ग द्वारा हम इस शक्ति पुंज से जुड़ जाते हैं।

24. निश्चय रूप से ऐसे पंच परमेष्ठि का ध्यान सब पापों का नाश करने वाला है। यह एक ओर जहाँ अरिहंत भगवत में शरणागत होना है, वहीं निश्चय दृष्टि से आत्म स्वरूप की ही अभिन्नतम उपासना है। इसमें शररणागत एवं पुरूषार्थ का अपूर्व संगम है ,फिर भी 'अप्पासो परमअप्पा' सिखाता है। लक्ष्य स्पष्ट करता है। भटकाव मिटाता है।'अस्थि, चर्म, मम देह यह तामें ऐसी प्रीति, होती जो श्रीराम से तो मिटती भवभीति', के सिद्धान्त को चरितार्थ करता है।

25. इस महामंत्र के ध्यान की सरल विधि निम्न है।

पायच्छित करणेणं विसोहीकरणेणं विसल्लीकरणेणं।
पावणं कम्माणं निग्घायणट्ठाए, ठामिकाऊसग्गं।
तावकायं ठाणेण मोणेणं झाणेणं अप्पाण वोसिरामि।

आत्मा अपने दोषों के प्रायश्चित की भावना से प्रेरित हो, आत्म शुद्धि ध्येय अपना, शल्य रहित बन, पूर्व संचित कर्मों का उत्सर्ग कर, केवल नमोअरिहताणं के पदों से अपने आपको जोड़ दे। निविडकर्म ग्रंथियाँ कटेंगी, पांच पदों के शुभ्रचमकीले श्वेत, लाल (अरूण), पीला, नीला एवं काले रंग क्रमशः पर ध्यान केन्द्रित होगा।

26. यह मंत्र केवल सिद्ध होने का मंत्र नहीं हैं जो कि परम अवस्था है। लेकिन लक्ष्य के प्रति आस्था, लगन एवं आनन्दमय होने से मानव जीवन भी श्रेष्ठ बनता जाता है। जल में कमल की तरह रहना सिखाता है। जहाँ जहाँ हम अपने विकृत स्वभाव, अवचेतन मन या पूर्वकर्मों के प्रभाव से विशेष रूप से गलती के पुनःपुनः शिकार होते हैं, यह मंत्र उनके प्रति जागरूकता पैदा कर, उन फलों से बचाता है।

'काएण काईआस्स, पडिक्कमें वाई अस्स,
वायाए मणसा माणिसअस्स, सव्वस व्याइयारस्स।।

—(वंदित्तु सूत्र)

काया से लगे हुए अतिचारो का काया के शुभ योग से ,वचन से लगे अतिचारों का वचन के शुभ योग से, एवं मन से लगे अतिचारों का मन के शुभ योग से ,प्रतिक्रमण करता हूँ। पाप कर्मों से पीछे हटता हूँ।

सब प्रकार के व्रतों के अतिचार से पीछे हटता हूँ।

समदिट्ठजीवों, जई विहु पांव समायरे किंचि।
अप्पोसि होई बंधों, जेण न निद्धं कुणई।।

सम्यग् दृष्टि जीव अपने जीवन यापन के लिए यद्यपि पाप बंधन करता है। तथापि उदासीन परिणाम होने से उसको कर्म का बंधन अल्प होता है क्योंकि वह निर्दय भाव से अति पाप व्यापार नहीं करता।

एवं अट्ठविंह कम्मं, रागदोससमज्जिअं।
आलो अंतो अनिदंतो खिप्पंहणइ सुसावओ।।

जिस प्रकार कुशल वैद्य एवं गारूडिक मंत्र वनस्पतियों एवं मंत्र प्रभाव से विष को नष्ट कर देते है, 'उसी प्रकार राग–द्वेष वश बांधे हुए आठ कर्मों' की आत्मालोचना कर,गुरु के समक्ष उसकी निंदा कर, स्वयं प्रायश्चित कर सुश्रावक उन्हें जड़मूल से नष्ट कर सकता है।

निश्चय नय से जब तक लक्ष्य प्राप्त नहीं हो जाता तब तक वीर्याचार से हर पर्याय– व्यवहार को शुद्ध बनाता हुआ उत्तमोत्तम भावों में रमता, दुर्गम राहों को सरलता से तय करता हुआ, भवोभव में अधिक सामर्थ्यवान, पुण्यकर्म संचित करता हुआ, पुण्यानुबंधी पुण्य बाँधता हुआ, श्रेष्ठ से श्रेष्ठ गुण श्रेणी तय करता हुआ, मुक्ति के उत्तुंग शिखर का आरोहण करता है। राह संयम है। नंदीशेण अजितशांति में प्रार्थना करते हैं। 'ममय दिसउ संज में नंदि।" मुझे संयम में समृद्धि प्रदान करें।

सारांश में यह महामंत्र जहाँ सर्वोत्तम शरण प्रदान करता है, शरणागत हो जाने का संदेश है, वहाँ आत्मसाधना, अहिंसा, संयम

तप से कर्म क्षय का महामार्ग होने के कारण दोनों का अपूर्व संगम है। जीवन का सही दिशासूचक है।

तमसो मा ज्योतिर्गमय
असतो मासद्गमय
मृत्योर्माऽमृतंगमय

जब हर क्षण जीवन में नवकार के पंच पदों का मंगल भाव गूंजेगा, मंगल भाव व किया में तन – मन तल्लीन होगा, फिर प्रीतिति होगी, नवकार महामंत्र के अमोघ--प्रभाव की 'यह जगत में सर्वश्रेष्ठ मंगल है।' परिणति होगी कि वर्तमान जीवन हमारी भूलों के (भव भव की एवं इस जीवन की) प्रायश्चित्त का सुअवसर है और सावद्य कर्म करने का तो विवेकवान के लिए प्रश्न ही नहीं होना चाहिए। यहाँ तक कि अवचेतन मन के जनम जनम के कर्मबन्धन के वर्तुल काटने का सुनहला सुअवसर है। ममकार एवं अहंकारमय कर्मबन्धन की ग्रंथियों की इतिश्री इन शुभ भावों से हो सकती है। राहें स्पष्ट हैं, शुभ ध्यान, प्रत्याख्यान।(गलती पुनः न करने का नित्य व्रत)।

'धम्मो मंगल मुक्किट्ठं अहिंसा संयमों तवो।''दश्वैकालिक'

मंजिल व राहें नवकार–पद हैं। इसलिए सर्वत्र अशरण में वहीं धर्म श्रेष्ठ मंगल है जो अहिंसा , संयम एवं तप युक्त है। ये ही उत्तम शरण है।

अरिहंते सरणम् पवज्जामि, सिद्धेसरणं, पवज्जामि।
साहुसरणं पवज्जामि, केवलि पन्नतं, धम्म सरणं पवज्जामि।।

सम्यक् दर्शन

जैसे 'अहिंसा परमोधर्म' जैन दर्शन का महाघोष है ,उसी तरह "सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्राणि, मोक्ष मार्गः" जैन दर्शन का सार है। (तत्वार्थ सूत्र, उमास्वामिः, प्रथम पद–प्रथम अध्याय) । संक्षेप में ये तीनों रत्न सम्मिलित रूप से मोक्ष के साधन हैं। अब प्रत्येक का अर्थ सारांश में समझते हैं। सम्यग् दर्शन का अर्थ है– सच्ची श्रद्धा, सत्य तत्वों में गहरी आस्था, सही मार्ग या दिशाबोध, सही दृष्टि, अनेकांत दर्शन एवं जीवन शैली में स्याद्वाद इत्यादि। सम्यग्ज्ञान का अर्थ है– सत्य तत्व जैसे जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, बंधन, संवर, निर्जरा एवं मोक्ष इनका व्यापक विशद् ज्ञान। सम्यग् चारित्र का अर्थ है– सम्यग्दर्शन एवं ज्ञान अनुसार आचरण करना। फिर भी इन तीनों में मूलाधार सम्यग्–दर्शन यानी सत्य में श्रद्धा है। इसीलिये उत्तराध्ययन गाथा 28/30 में कहा है। –

नांदसणिस्सनाणं नाणेण विना नहुँति चरण गुणा।

अर्थात् सम्यग्दर्शन बिना, सम्यग्ज्ञान नहीं और उसके बिना सम्यग् चारित्र नहीं।

इस संदर्भ में शास्त्रों में यहाँ तक कहा गया है कि –

"दंसणमट्ठा दंसणमट्ठास्स नत्थि निव्वाणं,
सिज्झंति चरियभट्ठा, दंसणभट्ठाण सिज्झंति।"

दर्शन से जो भ्रष्ट है, उसका निर्वाण असंभव है। चारित्र से भ्रष्ट है वह तो फिर सिद्धि पा सकता है लेकिन दर्शन से भ्रष्ट कभी सिद्धि नहीं पा सकता। सम्यग्दर्शन आत्मोन्नति की प्रथम सीढ़ी है। इसका कारण यह है कि सम्यग्दर्शन यानी चौथे

गुणस्थान में प्रवेश के पूर्व, जीव मिथ्यात्व में ही जीता है। जीव का तब तक अभव्य स्वरूप है। उसे भगवान के बताये महाव्रत जैसे अहिंसा, सत्य अचौर्य, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य (संयम) में तनिक रूचि नहीं होती वरन् इससे विपरीत आचरण में पूरा पूरा रस आता है। वह अनंतानुबंधी कर्म बंधन करता है यानी भंयकर क्रोध, वैर, प्रतिशोध, हिंसा, दम्भ, पाखण्ड, अभिमान, असत्य व्यवहार , कदम–कदम पर आनंद अनुभव करता है। कपट पूर्ण आचरण, कथन, निर्दय व्यवहार एवं लोभ में सर्वथा अंधा होकर, अनेक कुकृत्य करता है। जैसे विषैले सांप का काटा हुआ व्यक्ति कितना ही तम्बाकू का काढा पी जावे, ऊँट का चीड़ (पेशाब) पीले तो भी उसे कड़वा चरका नहीं लगता, उसी तरह मिथ्यात्वी को असत्य, प्रिय लगता है, गलत काम अच्छा लगता है, पापानुबंधी पापों (कृष्ण लेश्या) के काम करता है। दूसरी अवस्था में सांसादन यानी ऊँचे गुणस्थान से गिर कर दूसरे गुणस्थान में आना, जैसे खीर खाकर वमन करने पर खीर का मुँह में कुछ स्वाद रहना। तीसरे गुणस्थान में उसे यह ध्यान रहता है कि सही रास्ता क्या हैं एवं गलत क्या हैं? लेकिन गलत को वह छोड़ नहीं पाता।

अतः सम्यग्दर्शन जब जीव को होता है, उसकी इस नैराश्यजनक अंधकारम्य अवस्था में, आशा का दीप जलता है। रास्ता स्पष्ट होने लगता है। पहली बार उसे बोध होता है कि यही सत्य मार्ग है। सत्य कथन जो वीतराग जिनेश्वर का कथन है उसमें श्रद्धा जागती है, सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र का स्वतः वरण करता है एवं आगे–आगे व्रत, अप्रमाद, कषाय–विजय से उत्तरोत्तर उर्ध्वारोहण कर मोक्षमार्ग की ओर बढ़ता है।

अब सम्यग्दर्शन के मूल कारण या आठ अंगों का वर्णन करते हैं, "निःशंकिय, निकंखिय, निवितिगिच्छा, अमूढदिट्ठिय, उववूह, थिरिकरणे, वच्छल, प्रभावना, अट्ठ"। इन्हें किंचित विस्तार से समझते हैं। सम्यग्दर्शन का आविर्भाव इन गुणों पर अवलम्बित

है। आचार्य रजनीश ने जिनसूत्र भाग दो में इनका विस्तार से मर्मस्पर्शी वर्णन किया है, जो जैन दर्शन पर मूलतः आधारित है।

सम्यग्दृष्टि जीव :

1. **निशंक होगा**– निर्भय, अभय, शंका, सन्देह से परे। सत्य, साहस से ओत–प्रोत। अहिंसा कायरों की नहीं वीरों की है। संसार से डर गए वे क्या ख़ाक, सत्य की यात्रा पर निकलेंगे? आपको धन सम्पत्ति जब निरर्थक लगे, सत्य की खोज में, जीवन भी गुमा सको, उसे निशंक कहेगे। सम्पत्ति के नाम पर कुछ ठीकरे, धन सम्पत्ति आदि इकट्ठे कर रखे हैं ,जो मौत या अन्य परिस्थितियाँ तुमसे छीन लेगी। ऐसी दृष्टि मिले की निशंक हो जाओ, धन से भी श्रेष्ठ कोई लोकोपयोग, आत्मसाधना, सत्य की शोध में अब जीवन लगा सको।

2. **निष्काँक्षा**– यानी लालच जब तक चीजों में है तब तक सच पाना, समझना दुष्कर है। आकांक्षा भटकाव है। कोई और अच्छा व्यवसाय, वृत्ति, दामाद, अच्छी पत्नी की चाह रहेगी। सोचो तुम कहीं भी होते, क्या आकांक्षा रूकती? स्वप्न बनेंगें। सत्य नहीं। मृगतष्णा कभी न बुझेगी। हमें झूठे चाटुकार दास, बनाएगी, मौलिक सत्य के उपासक नहीं।

3. **निर्विचिकित्सा**–यानि जुगुप्सा का अभाव। अपने दोषों को छुपाना तथा दूसरे के गुणों को न बताना–जुगुप्सा है, जो सत्य से परे है। यह सम्यग्दृष्टि तो दूर, सम्यग्दर्शन की भी राह नहीं है,अभिमान का मद है। "तुम अगर क्रोध भी करते हो, तो कहते हो उसके हित के लिए किया। पत्नी ने पति का क्रोध बच्चे पर, बच्चे ने कुत्ते पर (अपने से कमजोर पर) निकाला।" दूसरे के गुणों को देखने, पहिचानने एवं अपने दोष स्वीकार करने से क्रांति घटित होगी। साधु साध्वी के

मलिन वस्त्र देख, उन पर गिला करना, अवांछित है। दृष्टि उनके गुणों पर हो ताकि गुणग्राही एवं विनम्र बनें।

4. **अमूढ़ दृष्टि**– लोक मूढ़ता, देव मूढ़ता, गुरु मूढ़ता आदि हैं। दुनिया की देखा–देखी, भेड़ चाल में हो लिये–जैसे किसी ने कहा कटक में बाबाजी सिद्ध है, सब इच्छा पूरी करते हैं या कोई देवी देवता फल देते है, फलां टोटका, जप, मंत्र, विधि, बलि से अभीष्ट पूरा होता है। देवता तो वासना आकांक्षा युक्त हैं वे हमें क्या मुक्ति दे सकते है? ब्रह्माजी ने पृथ्वी को बनाया। वे पृथ्वी पर अपनी पुत्री सरस्वती पर मोहित हो गए। सृष्टि की रचना में जैसे गाय बनाई, तो वे साण्ड बन गये। इन्द्र ऋषि–पत्नि पर कामी हो गये। देव मूढ़ता का अर्थ है जैसे किसी ने पत्थर पर सिंदूर पोत दिया, लगे सभी सिंदूर चढ़ाने और भयभीत हो गए। गुरु मूढ़ता में किसी कुपात्र को गुरु मान लिया, जो बिना सम्यग्–दर्शन, ज्ञान, चारित्र के हैं।

5. **उववूह–उपगूहन**– कुछ वैसा ही जैसे निर्विचिकित्सा, लेकिन अन्तर यह है कि इसमें जोर, अपने गुणों को प्रगट न करने पर, अपने ढोल न पीटने पर है क्योंकि स्वप्रशंसा इंसान की कमजोरी है जो अति रंजन से मुक्त नहीं है, वह सत्य यानि सम्यग् दृष्टि से परे है। यह मर्यादा भी अनिवार्य है। जब दूसरे के लिए हम निर्णय देते है, उसकी परिस्थितियों को ओझल कर देते है। लोग अधिकांशतया कमजोर है, शैतान नहीं। महावीर ने कहा है "दूसरे के दोष को तो बताना मत, क्या पता किन–किन जन्मोजन्म में उसने अर्जित कर लिया–अनजाने।" जीसस ने कहा "निर्णायक मत बनना। अपने गुण बहुत दिखते है तब अहंकार का गुब्बारा फूलता ही जाता है। अतः अपने दोषों को देखकर उन्हें फोड़ना। अपने गुणों के गीत न गाना, दूसरो के वरदान को न छुपाना।"

6. **स्थिरीकरण**– "सत्य साधना में चूक होगी, अपराध भाव नहीं लाना, यह स्वाभाविक है फिर तत्काल अपने को मार्ग पर आरूढ कर लेना स्थिरीकरण है। गाली आधी निकली, रूक जाना वही। कहना माफ करना, क्षमा करना। रास्ता मिलते ही लौट आना।" कर्मोदय से दुख आने या स्थिति विपरीत होने पर और भयभीत क्षुब्ध होकर, अनीति के गर्त में गिरकर अनंतानुबंधी कषाय बंधन, सत्य और सम्यग्दर्शन की राह नहीं है बल्कि उन संकेतों से सावधन होकर पुण्य पथ में स्थिर होने पर पुरूषार्थ करना स्थिरीकरण हैं।

7. **वात्सल्य**– प्रार्थना की भीख का उल्टा है, इसमें दोनों लेते देते है। जैसे "माँ दुलार देती है बच्चा भी उसे समर्पण देता है।" यह स्वाभाविक क्रिया, सत्य मार्ग की है। अत्यन्त विनम्रता से सत्य समझने की चेष्टा करते हैं एवं सत्य चहूं ओर बरसता है, एसे झरने फूटते हैं कि जितना बाँटते हो, पानी उलीचते हो, तो नया पानी आता है। ऐसी भावना से स्वामी वात्सल्य होता है अर्थात सर्वजन हिताय में स्वहित जगत आत्मवत लगता है।

8. **प्रभावना**– इसका कोई पर्याय नहीं। इस भांति जीओ कि धर्म की प्रभावना हो। धर्म झरे। जहाँ से गुजरों, वहीं लोगों के हृदय में स्नेह की लहर दौड़ जावे। सत्य की ओर वे उन्मुख हो जावे। सत्य तुम्हें मिलने लगे तो औरों में भी बाँट देना, कंजूसी मत कर देना, नहीं तो वह बाद में ओझल न हो जावे। तुम्हारा सत्संग उन्हें रूपान्तरित कर दे। सिद्ध होने के भ्रम में मत रहना। अंतिम क्षण तक भूल होती रहेगी। दुष्कृति को तत्काल मन, वचन काया से हटा लेना। घोड़े की रास खींच ली। अपनी उपस्थिति से स्वतः लोग प्रभावित हो, प्रेरित हो। यही प्रभावना है। गुणानुराग की परस्पर भावना हो।

सम्यग्दर्शन के आधारभूत अंगों को समझ लेने के बाद, उसकी निष्पत्तियाँ यानी परिणामों को देखते हैं। पहला है–प्रशम भाव जिसका अर्थ कषायों का वेग कम होना–राग द्वेष का ज्वार मिटना। सम्यग्दर्शन होने पर दूसरा प्रभाव संवेग यानी संसार के मोह, माया, मद से मन का शनेःशनेः हटना अर्थात् भव–भ्रमण का वर्तूल कम होगा। जैसा तुलसीदास जी ने भगवान रामचन्द्र की आरती में कहा है– 'श्रीरामचन्द्र कृपालु भजमन हरत भवभय दारूणं।' चौरासी लाख योनियों के अंतहीन भटकाव, जन्म, जरा, मरण, व्याधि एवं नरक तिर्यंच गति का विशेष भय अनुभव होगा। अतः इनके निवारण का अचूक साधन सम्यक् दर्शन है, जिसके अगले पड़ाव व्रत, अप्रमाद, एवं कषाय विजय हैं, जिसके फल संयम एवं कर्म–निर्जरा हैं। यह मोक्ष मार्ग है।

इसी तरह अन्य फलित 'निर्वेद' हैं–सांसारिक बंधन की जड़ स्त्री–वेद, पुरुष–वेद, नपुंसक–वेद आदि हैं। भवोभव में विपरीत योनि का परस्पर आकर्षण एवं जन्म मरण की श्रृंखला अबाध चलती है। इनसे परे मुक्ति भावना है– संसार से नाता तोड़ने का भाव, आत्मा में परमानन्द का अनुभव। इसी प्रकार अन्य दो फलित 'अनुकम्पा' एवं 'आस्तिक्य' हैं। अनुकम्पा भाव के अर्थ हैं जगत को आत्मवत् मानने हेतु वात्सल्य, करूणा भाव 'सर्वे सुखीना भवन्तु'। दूसरे के दुख में मन का द्रवित होना। 'जीयो और जीने दो' तथा 'परस्परोपग्रहो जीवानाम' (तत्वार्थ सूत्र) कि जीवों का परस्पर पर बड़ा उपकार है। अंतिम परिणति है 'आस्तिक्य'– ऐसी अटूट श्रद्धा का विकास कि जिन, वीतराग, केवली एवं सर्वज्ञ प्ररूपित आगम–वचन सत्य हैं तथा 'सत्यमेव जयते' है।

सम्यग्–दर्शन सही दिशा बोध है। सत्य ज्ञान एवं सही आचरण स्वतः उसके अनुगामी है। इसकी प्राप्ति के उपाय एवं फलित, मानव जीवन–विज्ञान के आधार हैं, जो ऊपर दर्शाये गये हैं।

आशा है प्रस्तुति को आप कई बार पढेंगे, समझेगें, यही इसकी उपलब्धि होगी।

गुण स्थान

आत्मगुणों के क्रमिक प्रकटीकरण की उत्तरोत्तर श्रेष्ठ अवस्थाओं को जैन–दर्शन में गुणस्थान कहा गया है। जितने–जितने कर्मफल दूर होते हैं, आत्मा की उतनी–उतनी श्रेष्ठ आध्यात्मिक भूमिका होती है। वे संख्यातीत हैं, लेकिन मोटेरूप में से उन्हें चौदह अवस्थाओं में जैन दर्शन में वर्गीकृत किया गया है। इस प्राचीन आगमिक विषयवस्तु का 'षड्खण्डागम् ' में विशिष्ट स्थान है। तत्वार्थ सूत्र (उमास्वाति रचयित) एवं उनके द्वारा उस पर 'स्वोपज्ञभास्य' पर सिद्धसेनगणि द्वारा रचयित टीका में एवं पूज्यपाद देवानंदि द्वारा तत्वार्थ 'सवार्थसिद्धि' टीका में इनका विस्तृत वर्णन है।

1. मिथ्या दृष्टि गुणस्थान।
2. सासादन सम्यग् दृष्टि गुणस्थान।
3. सम्यग् मिथ्या दृष्टि गुणस्थान।
4. अविरत सम्यग् दृष्टि गुणस्थान।
5. देश विरत सम्यग् दृष्टि गुणस्थान।
6. प्रमत्त संयत गुणस्थान।
7. अप्रमत्त संयत गुणस्थान।
8. निवृत्ति बादर गुणस्थान।
9. अनिवृत्ति बादर गुणस्थान।
10. सूक्ष्म संपराय गुणस्थान।

11. उपशांत कषाय छद्मस्थ वीतराग गुणस्थान।

12. क्षीण–कषाय छद्मस्थ वीतराग गुणस्थान।

13. सयोगी केवली गुणस्थान।

14. आयोगी केवली गुणस्थान।

मोक्ष–गामी जीवात्माओं ने वास्तविक रूप से इन अवस्थाओं का अनुभव किया है जो मोक्षपथ के संकेत–पत्थर हैं। जैन दर्शन में कर्मनिवारण की दशाओं का यह अत्यन्त मार्मिक, गहन शास्त्रीय एवं आध्यात्म विज्ञान का प्रयोगात्मक वर्णन है । इसलिए यह मात्र बौद्धिक कवायद नहीं , आत्म विकास की कठिनतम् सर्वस्व समर्पण की यात्रा है।

जो "सहस्सं सहस्साणं दुज्जयजिणे। एगों जिणेज्ज अप्पाणं, एससेपरमोजओ।" संग्राम में लाखों योद्धाओं को पराजित करेन की अपेक्षा, आत्म विजय परम विजय है।

1. जैसे पहले गुणस्थान का नाम है, ठीक वैसे ही इस प्रथम अवस्था में जीव की दृष्टि लगभग सर्वथा मिथ्या दृष्टि यानी विपरीत होती है। उसका विश्वास कुकृत्य, कुविचारों में रहने से कुदेव, कुगुरु, कुधर्म को सुदेव, सुगुरु, सुधर्म मानता है एवं इसे सही कार्य मानता है। फिर भी गुणस्थान इसलिए कहा गया है कि कुछ बोध उसे अवश्य है– जैसे उसे पशु एवं मनुष्य की, या दिन रात की पहचान है, जो अभव्य में या किसी अंश में निगोद के जीवों तक में होती है। यह जीव की निकृष्ट–प्रथम ज्ञानावरणीय एवं दर्शनावरणीय एवं चरम मिथ्यात्व की अवस्था है, जिसमें बुद्धि, दर्शन, ज्ञान का विकास ,शून्य समान है। वह घोर कुकर्म करता हैं, अपने क्षुद्र स्वार्थ के लिए जीव वध या गलत मान्यता से पशु–बलि या कुर्बानी के नाम क्रूरतम हिंसा जैसे भाले फैंक–फैंक कर, गोद–गोद कर ऊंट जैसे बड़े जीव या अन्य जीव के प्राण लेकर उनका माँस भक्षण करते हैं। यहाँ तक कि अर्थ–लाभ के लिये कत्ल के कारखाने चलाते हैं, निर्दोष लोगों की नर–बलि,

घोर अन्याय आदि कृत्य करते हैं, जैसे शिशुनाग दोनों मुँह से शरीर पर मिट्टी लपेटता है उसी तरह ऐसे जीव घोर--आठों कर्म--बंधन करते रहते हैं, जिन्हें भुगतना अनिवार्य है।

अतः जीव अनादि अनंत काल तक भवसागर में भटकता रहता है। कृष्ण कापोत, नील लेश्याओं के समस्त लक्षण मुख्यतः प्रचण्ड वैर, क्रोध, अभिमान से वे ग्रस्त होते हैं, लाख समझाने से नहीं समझते हैं। 'शतरंज खेले राधिका, कुब्जा खेले सारी वाकिनिशदिन जीत है वाकि= (कुब्जा) निशदिन हारी।' सच्चा धर्म अहिंसा, संयम एवं तप है, वीतराग भाव है लेकिन इस अवस्था में विपरीत भावों एवं कर्मों में जीव की रूचि होती है, सत्य धर्म आदि में रूचि व ग्राहकता का अभाव होने से जीव को लाभ नहीं मिलता है)

2. दूसरे गुणस्थान का नाम सासादन है। यह सम्यक--रत्न--शिखर से च्युत या सम्यकत्व से गिरकर अभी मिथ्यात्व को नहीं प्राप्त होने की अवस्था है, वैसी ही जैसी की खीर खाकर वमन करते हुये को खीर का स्वाद अनुभव करने पर होता है। ऐसे जीव नें पूर्व में औपशमिक या क्षायोपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त किया था लेकिन अनंतानुबँधी कषायों के कारण, कर्मों के उदय से यह पतन अवश्यम्भावी होता है, जिसकी स्थिति जघन्य एक समय एवं उत्कृष्ट छः अवलिकाएँ यानी कुछ पल मात्र है।

3. सम्यग् मिथ्या दृष्टि– यह मिश्र गुणस्थान कहलाता है। यह भी सम्यक्त्व की उच्च अवस्थाओं या अविरत सम्यक्त्व से पतन की अवस्था है, या प्रथम से चतुर्थ गुणस्थान जाने के समय की जघन्य अन्त मुहूर्त की अल्प अवस्था है। इसमें आयुष्य बंधन नहीं होता है। बुद्धि एवं विवेक विकास अभी दुर्बल है। निश्चय नहीं कर सकता है कि सम्यक् दर्शन ही सही मार्ग है यद्यपि उसे जानने लगता है। उसका दही एवं गुड़ के मिश्रण की तरह सम्यक्त्व का मिठास एवं मिथ्यात्व के अम्ल का भी अनुभव करता है। इस अवस्था में उसका मरण नहीं होता। इससे गिरकर दूसरे गुणस्थान में मरण होने पर नरक, तिर्यंच आदि गति होती है।

दर्शन का कुछ विकास सम्यक्त्व की ओर हुआ है। नारलिक–द्वीप वासियों को केवल नारियल का स्वाद ज्ञात है, भात का नहीं। उस गुणस्थान के जीवों का सम्यकत्व का आनन्द अनुभव नहीं है , मात्र कुछ सुना समझा है।

4. अविरत् सम्यक् दृष्टि– जब जीव भवसमुन्द्र में गोते खाते–खाते, नदी के पत्थर की तरफ घिस–घिस कर गोल हो जाता है, कर्म की अकाम निर्जरा से उसकी प्रचण्ड प्रकृति में कुछ परिवर्तन–नरम रूख आता है या किसी प्रतिमा–दर्शन, गुरु के उपदेश आदि से वह अनंतानुबंधी मजबूत वैर, क्रोध, मान, माया, लोभ की मजबूत गांठ कम करता है। तब उसे सही राह सम्यक्–दर्शन विवेक, अनेकांत दृष्टिगत होने लगते हैं। जिनेश्वर में आस्था एवं जीव मात्र के प्रति अनुकम्पा भाव में वृद्धि होती है। सत्य आदि धर्म के प्रति सच्ची श्रद्धा निःशंक, आकांक्षा रहित, अभय एवं अभिमान रहित, विनम्र होकर रहने लगता है। इनसे एक विशिष्ट–स्थिति प्राप्त होती है, जिसे यथा–प्रवृत्तिकरण कहते है। यह जीव के विकास की उत्क्रांति है। राग–द्वेष की अभेद्य–ग्रंथि के वह समीप पहुंच जाता है। हालांकि उसे भेद नहीं सकता। दूसरी ओर मोह माया के बंधनों भव भ्रमण के अनंत कष्टों से मुक्ति कामना इन दोनों भावों में द्वन्द्व होकर भव्य जीव आगे के गुणस्थान में बढ़ता है।

मोहनीय कर्म की सत्तर कोटा–कोटी स्थिति को घटा कर एक अन्तः कोटा–कोटी कर लेता है। अन्य कर्मो की स्थिति भी इसी तरह घटा लेता है, केवल आयुष्य कर्म के अलावा जो तेतीस–सागर है ।जीव नें ऐसी स्थिति पूर्व में भी अनेक बार प्राप्त की हैं यदि भव्य जीव और आगे बढ़कर अपूर्व करण एवं अधिकाधिक उन्नत अवस्थाएं प्राप्त करें तो अनिवृत्तिकरण, अन्तरकरण एवं वीतराग बन सकता है। आगमविद् श्री प्रकाश मुनि के शब्दों में सम्यग्दर्शन के स्वर्णपात्र में चारित्र रूपी अमृत के सहारे आगे चलकर मुक्ति रूपी अमर फल पाता है। श्री शालिभद्र

मुनि की तरह संवर या आत्मानुशासन से कर्म–बन्धन, अल्प करता है। इस चौथी अवस्था में जिनेश्वर प्ररूपित तत्वों में पूरी आस्था होते हुये भी एवं हिंसा से विरति होते हुये भी इतनी दृढ़ता नहीं कि महाव्रत जैसे अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपिरग्रह एवं संयम ग्रहण कर लें क्योंकि अप्रत्याख्यानावरणीय कर्म एवं इष्ट–वियोग, अनिष्ट–योग से क्षुब्ध हो जाता है।

5. देश विरत– अब न केवल राह स्पष्ट है वरन् मन की दृढ़ता इस कद्र बढ़ी है कि कुछ व्रत सहर्ष स्वीकार कर लेता है, उन्हें अपना सुरक्षा कवच मानता है। करण, करावण, या अनुमोदन के तीन रूपों में से व्रत के कुछ रूप ग्रहण कर लेता है। अब अप्रत्याख्यानावरण मिटने से अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, चतुष्क के साथ अप्रत्याख्यानीय चतुष्क भी मिट जाता है। अभी इस अवस्था की उत्कृष्ट स्थिति कुछ कम करोड़ वर्ष पूर्व है। श्रावक की यह श्रेष्ठ भूमिका है। अभी सभी कर्म बंधन सम्भव है। महाव्रतों को स्थूल स्वरूप में सब या कुछ को अपनाता है ।

6. प्रमत्तसंयत– व्रतों की भावना में दृढ़ता होने से प्रव्याख्यानावरणीय मोहनीय–कर्म और उपशांत हो जाते है। सर्व व्रत ग्रहण करता है। साधु जीवन के महाव्रत अपनाता है, फिर भी यह 'प्रमत्त संयत अवस्था कहलाती है क्योंकि अभी आलस्य, प्रमाद, लम्बी निद्रा, आत्म विस्मृति, विषयचिंतन, कषायों एवं विकथा से मुक्त नहीं है। अभी मनोज्ञ अमनोज्ञ शब्द, रूप, रस, गन्ध, अवचेतन मन की विस्फोटक शक्ति की प्रतिक्रिया असावधानीवश सम्भव है। आर्त, रौद्रध्यान के वशीभूत हो जाता है। अभी मन, वचन काया की चंचलता मिटी नहीं है। धर्म ध्यान सधा नहीं। पांच समिति , तीन गुप्तियों, द्वारा सतत् जागरूकता आवश्यक है। सभी कर्म बंधन संभव है। इसकी स्थिति भी कुछ कम करोड़ वर्ष पूर्व है।

7. अप्रमत्त संयत– साधु जीवन में उत्तरोत्तर प्रगति है। प्रमादों पर विजय पा ली है। हालांकि अनेक भवों से अर्जित मोहनीयकर्म–जिसमें संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति,

अरति, भय, शोक, जुगुप्सा एवं त्रिवेद आदि उपकषाय सम्मिलित हैं उन्हें अभी सर्वथा क्षय या यहाँ तक कि उपशमित या क्षयोपशमित नहीं कर सका है। उक्त अवस्था से उबरने के लिये 'धर्म ध्यान' से आत्मलीन होना अनिवार्य है। आत्मा के यानी धर्म के दसरूप में वृद्धि होती है । उत्तम, क्षमा, मार्दव, आर्जव (सरल निष्कपट आचरण) सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, अंकिचन्य, ब्रह्म आदि आत्मगुण बढ़ते हैं।

8. निवृत्ति बादर गुण स्थान– को **'अपूर्वक करण'** भी कहते हैं। **यथाप्रवत्ति करण** से इस अवस्था में पहुंचना एक विशिष्ट क्रांति है। राग द्वेष के साथ–साथ कर्मों को विस्मयकारी अल्पीकरण, उनकी दीर्घस्थिति का बहुत कम कर देना, उनकी शक्ति को इसी तरह घटा देना, अशुभ कर्मों का उदयमान, शुभकर्मों की प्रकृति में संक्रमित या बदल देना आदि **अपूर्व करण** है। रागद्वेष की मजबूत तथा अभेद्य सी ग्रंथि का भेदन करना भी इस अवस्था में संभव है। उस गुण स्थान की अन्तर्मुहूर्त स्थिति के अनंत समयों–जैसे लोकाकाश के अनंत प्रदेशों की तरह के प्रत्येक समय मे त्रैकालिक जीवों के परिणाम/अध्यवसाय भिन्न–भिन्न होते हैं। यह यौगिकी अवस्था है। चौथे गुण स्थान से नवें तक उत्तरोत्तर गुणस्थान में असंख्य–असंख्य गुणा कर्म उपशांत/क्षय होते जाते हैं। गच्छाधिपति तुलसी के शब्दों में निवृत्ति का अर्थ विसदृशता है। उत्तम अनुप्रेक्षा यानी शुभ भावों की प्रतिपल अपूर्व वृद्धि होकर कर्मों की स्थिति बहुत अल्प हो जाती है ।

9. अनिवृत्ति बादर गुण स्थान में भी उपरोक्त पांचों पदार्थ जिनके अर्थ बताये है जिन्हें स्थिति–घात, रसघात, गुण–श्रेणी, गुण–संक्रमण एवं अल्प स्थिति बंधन कहते हैं, का और अधिक विकास होता है, क्योंकि मोहनीय कर्म के सभी उपरोक्त रूप नपुसंकवेद, स्त्रीवेद, पुरूषवेद तथा संज्वलन कषाय–क्रोध, मान, माया का भी या तो सर्वथा उपशम हो जाता है , या क्षपक श्रेणी आरूढ़ कर क्षय कर देता है। जो योगिराज की अवस्था है तब

अनंत कर्म कम कर दिये जाते हैं। इसमें त्रिकाल जीवों के परिणाम/अध्यवसाय, अन्तर्मुहर्त के अनंत समयों के प्रत्येक समय में समान होते हैं। अनिवृत्ति का अर्थ 'अन्तर नहीं' होना है हालांकि पूर्व समय से हर पश्चातवर्त्ती समय के परिणाम, असंख्य गुणा अधिक विशुद्ध होते हैं। पूर्व के गुणस्थान से भी इसमें भाव और अधिक विशुद्ध होते हैं। इसी से उपशम श्रेणी एवं क्षपक श्रेणी अलग--अलग हो जाती है। यद्यपि उसकी तैयारी पूर्व गुण–श्रेणी से होती है। दसधर्म, बारह भावनाएँ, समितियाँ, गुप्तियाँ, तप में भावना व धर्म ध्यान में दृढ़ता अनुपम हो जाती है। ये भावनाएं उसे उपशांत कषाय वीतराग अवस्था तक पहुंचा देती है। चारित्र–मोहनीय कर्म के सिवाय लोभ की, सभी प्रकृतियाँ उपशांत अथवा क्षय हो जाती है। स्त्रीवेद, पुरूषवेद, नपुसंकवेद, उपकषाय जैसे हास्य, रति, अरति, भय, शोक उपशंत/क्षय हो जाते हैं।

10. सूक्ष्म सपराय में मात्र संज्जवलन लोभ है। अन्य सभी कषाय सर्वथा उपशांत हो जाते हैं। अन्तरकरण की उत्क्रांति की सतत् प्रगति पूर्व वर्णित पाँच पदार्थों के गठित होने से सम्भव होती है। मोह का बंधन अब सम्भव नहीं है। स्थिति अन्तर्मुहुर्त है।

11. उपशांत कषाय– निर्मल जल की तरह कषाय सर्वथा उपशांत किये हैं, सज्जवलन लोभ को भी। लेकिन अब तक उनहें क्षय नहीं किया है। अतः वे अनंतानुबंधी कर्मोदय के प्रभाव उसे आवश्यक रूप से च्युत कर सातवें, छठे, तीसरे आदि में गिरा देते हैं ताकि मूलतः अधिक बार उपशम श्रेणी न कर क्षपक श्रेणी द्वारा वीतराग छद्म अवस्था को पा लेता है क्योंकि क्षपक अवस्था पाये बिना केवल्य एवं मोक्ष सम्भव नहीं है। इसी भव में भी या एक दो भव में आत्मवीर्य से क्षपक श्रेणी द्वारा चरम गुणस्थान 'मोक्ष' वरण कर लेता है।

12. क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ एवं 13वीं संयोगि केवली– अवस्था में कोई सम्पराायिक कर्म बन्धन यानी राग द्वेष युक्त बन्धन नहीं होता है। केवल इर्यापथिक सातावेदनीय–बंधन होता

है। क्षपक–श्रेणी वाला जीव ही इस गुणस्थान को छूता है। सभी धाति कर्मों का सेनापति मोहनीय कर्म, ध्वस्त हो चुका है, अतः शेष धाति कर्म–ज्ञानावर्णीय, दर्शनावरणीय एवं अंतराय भी अगली अवस्था 'अयोगि केवली' में नष्ट हो जाते हैं। इनके नष्ट होने से छद्मस्थ नहीं रहते हैं एवं केवल ज्ञान के महासूर्य से मण्डित हो जाते है। चार अघाति कर्म सातावेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र के कारण, मन, वचनकाय योग शेष है। जीवमात्र के कल्याण के लिये केवल्य–लब्धि से उपदेश देते हैं। उन्हें अरिहंत पद प्राप्त है। अनंत दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्यसमुल्लास, केवल ज्ञान दर्शन, क्षायिक सम्यक्त्व एवं शुक्ल ध्यान की , उन्हें उपलब्धि होती है।

13 वे एवं 14वे सयोगीकेवली एवं अयोगी सिद्ध गुणस्थान की अन्तिम अवस्था में मन, वचन, काया का निरोध कर पांच ह्रस्व अक्षर के उच्चारण समय में ऐसे जीव चार अघाति कर्मों का भी क्षय कर देते हैं लेकिन जिनके वेदनीय, नाम, गोत्र, कर्मों की स्थिति, आयुष्य कर्म से अधिक है वे केवली समुद्घात–प्रक्रिया से उन कर्मों का आयुष्य कर्म के तुल्य कर लोकाकाश के समस्त प्रदेशों के बराबर व्याप्त कर एवं पुनः संकुचन कर, देह मुक्त होकर शेलेषी अवस्था में लोकाकाश के अग्रभाग में स्थित–सिद्धशिला के अग्रभाग पर पहुँच जाते है। जहाँ वे अनंत निराबाध सुख, ज्ञान, दर्शन एवं क्षायिक सम्यकत्व, अमूर्त, अगुरु, अलघु स्वरूप में आत्मवीर्य सहित विराजमान रहते हैं। यह चौदहवें गुणस्थान की सिद्धगति है।

"निषण्णा सव्व दुक्का, जाई, जरा, मरण, बंधन विमुक्का
अव्वाबाहं सोक्खं अणुवहंति सयाकालं।"

(जिन्होंने अपने सब दुःखों का–जन्म, जरा, मरण, का सर्वथा अन्त कर दिया है और चिरकाल अव्याबाध सुख का अनुभव कर रहे हैं।)

GUṆSTHĀNA

In Jain philosophy, 'Guṇsthana' indicates fourteen stages of spiritual- development leading to final goal i.e. liberation of soul from entire karmic burden. The subject is well dealt with by authorities like 'Umāswati' in 'Tattavārth' and commentary on it, besides by eminent scholar , Pujya Pad Devanandi. A summary account of each stage, as actually experienced by pilgrims of the Path, the seekers to salvation is as follows:-

1. Mithyädrasti gunsthān:- It is the nadir stage of soul when it is not conscious even of its existence much less of its goal. It revels in the realm of only senses i.e. palate, sight, hearing, smell and touch and is therefore subject to the gravest or virulent forms of tenacious passions of anger, pride, greed, lust. As a beast, it reacts to all situations, without applying discretion or self- control, lacking introspection. Hence indulgence in the gravest violence etc., little knowing the consequence of courting hell or life of sub- humans. Mahveer said 'thou is noneless than one, thou is killing'. This endless chain of consequential births, goes on uninterruptedly. It is steeped in pervert outlook.
2. IInd stage is called Säswädan, it is higher to 1st stage but is acutally reached in course of descent

from still higher stages, and is only an itnerim stop, here for further fall or rise and therefore lasts only hardly some instants. It gives an after taste of those merits earlier achieved, as one feels on vomiting sweet kheer (Porridge).

3. 3rd stage is Samyag Mithyādrasti, when the soul at 1st stage has suffered incalculably, getting as the stones in the river-bed, rounded in ages, the soul gets glimpses of right and wrong. It is at crossroad to choose which path to move, in it is a mixed feeling, a state of indecision, to adopt upward or downward course.

4. The soul reaching the IVth stage i.e. on the suppression of virulent, forms of anger, pride etc and introspection, 'Avirat-samyag-drasti' realizes a radical change in it's attiutde and views. It is real foundation of the edifice of liberation because it cares for truth, has an enlightened world of things and a will to practise the principles i.e. Deshvirat gunsthan.

5. In the Vth stage the individual willingly undertakes vows like nonviolence, truth, non stealing, non acquisition (or limiting extent of it) and abstinence even (from family).

6. At VI stage, 'pramattaa samyat' he realizes that the lure of family bondage comes in his rising further and therefore the value of vows in staunch form, dawns on him, say following actively these vows himself or stopping dereliction for him or through others, or even disapproving the trangressions by

third persons. This stage is that of monkhood, yet not free from subconscious acting or indulgences.

7. Then in the VIIth stage 'Apramatta samyat' not only does he observe vows in it is entirety, but guards himself against relapsing in sloth, slumber, act of slander, and his subconscious getting better of him for feminine proclivity etc. The journey to over-come fully the instinctual passions is still ahead.

8. The spiritual activity at the eighth and the ninth stages moves with great pace, every time unit successively arranging karmic particles in such a way that they get exhausted/reduced in geometric progression.

9. Such experience is uniform at the ninth stage also at every successive time unit in still aggravated form befitting a yogi. The stage is unprecedented for loosening karmic shakles and only in the VIII and IX stage of 'apūrvakaraṇ Nivrati badar' अपूर्वकरण निवृति बादर and anivrattibādar अनिवृति बादर passions are almost overcome. It is through deep pious and the purest meditations. The feelings are so intense to achieve liberation that if one ascends, Ksapaksreni the ladder of the noblest thought and determination to root out karmas, it achieves emancipation in that life itself or else inevitably descends to lower stage and ultimately to take 'kshāyik Samyaktva' course to reach 'moksha' in that life or next ones.

10. & 11. The other course of suppression leads to Xth stage of 'suksam samparayay' i.e. not yet shedding flickering greed, although ridding of all other

passions and thefore may reach even eleventh stage of उपशान्त कषाय मोह 'Upshānt Kasāy Moh'.

12. It is only the 'Ksapaks reni' mentioned above, which enables one to reach क्षीण कषाय मोह 'Ksheen Kashay moh' of having annihilated the passions of view and conduct- delusions i.e. Mohaniya karm the commander in chief of all the karms.

13. This results in elimination of other destructive karms like 'Gyānvarniya, Darshanavarniya' and lastly Antarary culminating in dawning of Kewal- Gyān i.e. omniscience. The XIII stage is that of 'Arihants' at this stage, they preach principles of universal truth of self-conquering i.e. 'Jina'.

14. Lastly is the stage of shedding of remaining karmas of sensation, life, name and clan. At times when these remaining non obstructive-karmas survive longer than one's life-span, the soul undertakes a process of kewali- Samudghat i.e. equalization of all these to the life- span, by stretching these karmas in a moment to length and breadth of entire cosmos and in next moments withdrawing and getting rid of them. The soul then leaves the body forever, surges simultaneously instantaneously to siddha-Shila achieving liberation, ever retaining its inherent characterstics of omniscience, Omnipotence and Omni-bliss etc.

अनेकान्त एवं स्याद्वाद

जैन तीर्थंकरों ने अनेकान्त एवं स्याद्वाद का उपदेश दिया है जो 'अहिंसा परोमोधर्म' एवं 'सत्य ही खलु धर्म', सिद्धान्त पर, आधारित है।

सकलार्हत वंदना में अतः कहा गया है :–

अनेकान्तमताम्बोधि समुल्लासनचन्द्रमाः।
दद्यादमन्दमानन्दं, भगवान भिनन्दनः।।

जो अनेकान्त रूपी ज्ञान समुद्र को उल्लासित करने में चन्द्रमा के समान है, वे भगवान अभिनन्दन स्वामी, हमें अनेकान्त ज्ञान का अतीव आनन्द प्रदान करें। इसी क्रम में स्याद्वाद को समझाते हुए कहा गया है कि–

सत्त्वानां परमानन्द.... कन्दोद् भेदन वाम्बुदः।
स्याद्वाद मृतनिःसयन्दी, शीतलः पातु; वो जिनः।।

भव्य प्राणियों में परम आनन्द रूपी अंकुर पैदा करने में जैसे नए मेघ से वर्षा होने पर नए अंकुर आते हैं , उसी तरह स्याद्वाद रूपी वर्षा से शीतलनाथ प्रभु हमें शीतलता देवें, हमारी रक्षा करें।

जैन दर्शन में उसे ही ज्ञान माना है–

जेण तच्वविबुज्झेज्ज जेण चित्त निरूज्झदि।
जेणअत्ता विसुज्झेज्ज तण्णाणं जिनसासणं।।

जिससे तत्त्वों का सही ज्ञान हो, चित्त का नियंत्रण हो और आत्मा विशुद्ध हो।

इसी प्रकार सम्यग् दर्शन जिसका अन्य नाम सत्य दर्शन है और जो संकीर्ण न होकर अनेक धर्मी एवं विश्व व्यापक दृष्टिकोण वाला है, वही अनेकान्त है, जिसकी रोशनी में पाप, पुण्य, आस्रव, संवर, निर्जरा, मोक्ष, देह और आत्मा का भेद समझा जा सकता है, जहां आडम्बर, पाखण्ड, कपट, माया, फल की लालसा नहीं हो, ऐसा सत्य कथन अनेकान्त धर्म है। अतः हेमचन्द्राचार्य ने इसे अनेक धर्मात्मक सत् कहा है और इसके कथन की शैली को स्याद्वाद कहा है।

लगभग 2600 वर्ष पूर्व भगवान महावीर ने समस्त सृष्टि को जीव एवं अजीव (पुद्गल) दो श्रेणियों में विभक्त कर मूल 'षट्द्रव्य' का इन्हें अंग मानते हुए दोनों को अनंत धर्मी माना। जीव के गुणों का वर्णन आगे किया जायेगा। अभी कुछ पदार्थो के कुछ गुणों का उल्लेख किया जाता है। जैसे पानी अति सामान्य वस्तु है लेकिन इसके अनेक असाधारण गुण है। श्री सी.वी. रमन, नोबल पुरस्कार विजेता, जिन्होंने समुद्र के पानी पर "रमन प्रभाव" नाम से खोज की , उन्होंने कहा , "Water is elixir of life , the most common substance, with most uncommon properties", "पानी जीवन के लिए अमृत है, अति सामान्य पदार्थ होते हुए भी इसके कई असाधारण गुण है।"

इसी प्रकार शराब के लिए पूर्व न्यायाधीश (सर्वोच्च न्यायालय), श्री हिदायतुल्ला ने कहा है कि , "Alcohol kills the living and preserves the dead," शराब जीवन को नाश करती है लेकिन मृत जीव जैसे सर्प, आदि को दारू सहित शीशे में रखने से दीर्घ अवधि तक सुरक्षित रखा जा सकता है। चूना–मकान, कागज बनाने में, दवाईयों में..... इत्यादि कई कार्यों में प्रयुक्त होता है। एक रक्त की बूंद के विश्लेषण में 25 या अधिक प्रकार के गुणधर्म प्रकट होते हैं – जैसे शुगर, प्लाज्मा, प्लेटिनेट, ई.एस.आर, अल्बुमिन , आर.बी.सी, डब्ल्यू बी.सी , व बाइल, केटोन कई तरह के कोलेस्ट्रोल, बैक्टीरियां, युरिया,

एसगोट इत्यादि। आधुनिक भौतिक विज्ञान ने यहाँ तक प्रमाणित किया है कि अणु से अति सूक्ष्म परमाणु जैसे – इलेक्ट्रोन, प्रोटोन, न्यूट्रोन तथा कुल 60 प्रकार के विभिन्न धर्मी पार्टिकल हैं ; जो महावीर के अनेकान्त को प्रमाणित करते हैं। इकसठवे परमाणु पार्टिकल पर संसार भर के वैज्ञानिक अरबों रूपये खर्च कर खोज रहे हैं कि भार–विहीन परम परम परमाणु यह इकसठवा Gods पार्टिकल या 'हिग्स– बोसोन' कैसे भार प्रदान करता है। मनुष्य में मति ज्ञान, श्रुति ज्ञान पाने की चेतना है , वही आत्मा राग द्वेष रहित अवस्था में 'केवल–ज्ञान' तक पा सकता है। एक दिन वैज्ञानिक इसे भी ऐसे प्रयोगों से जान सकेंगे ।

स्याद्वाद अनेकान्त की ही व्याख्या करता है। इसके लिए सापेक्ष–मार्ग का एक दृष्टि, एक रूप से, इस सत्य पक्ष से इत्यादि कथनों से विविध अर्थ स्पष्ट करता है। 'स्याद्वाद–मंजरी' में इसे स्पष्ट किया है। अतः यह प्रमाण रूप है, निश्चित है। इसे संदिग्ध, संशय पूर्ण कहना अनुचित है। सत्य, अहिंसा, अनेकांत अचौर्य, अपरिग्रह, संयम एवं ब्रह्मचर्य के सही अर्थ समझाने, अनंत, धैर्य, ध्यान, संयम, तप, सहनशीलता से इन्हे उद्भासित कर स्वयं एवं लोक जीवन में इसकी उपादेयता को प्रतिष्ठापित करना, महावीर का लक्ष्य था। यह भगवती अहिंसा और सत्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। ऐसे अनेकांत–स्याद्वाद के अमोघ अस्त्र की चिरकाल आवश्यकता रहेगी। कर्म मुक्ति का यही शाश्वत मार्ग है, अतः मोक्ष सिद्धि का भी।

इससे विपरीत मार्ग – मिथ्यात्व, हिंसादि का है। थोड़ा और विस्तार से सन्मार्ग सम्यग् ज्ञान, दर्शन, आचार को भी साथ साथ समझें जिनके लक्षण भिन्न हैं। तुलना से यथार्थ ज्ञान, उपादेय प्राप्त होगा। द्रव्य, क्षैत्र, काल एवं भाव का महावीर की इस शोध पर भी प्रभाव पड़ा है।

एक संक्षिप्त विवरण महावीर कालीन परिस्थितियां का निम्न प्रकार है। मगध नरेश श्रेणिक (बिम्बसार) के पुत्र कुणिक एवं

वैशाली गणराज्य के प्रमुख चेटक के बीच घोर युद्ध हुआ जिसमें कई लाख लोगों का नरसंहार हुआ। हालांकि दोनों ही महावीर के अनुयायी एवं आपस में नाती थे। चेटक की पुत्री, कुणिक (भगवती सूत्र शतक 7909) की माँ थी। इसी प्रकार कोशम्बी के राजा शतानीक ने चम्पा के राजा दधिवाहन पर विश्वासघात कर हमला किया, दोनों साडू थे। चेटक राजा की पुत्रियां मृगावती एवं धारणी क्रमशः से विवाहित थे लेकिन भयंकर राज्य लिप्सावश चम्पा को शतानीक की सेना नें न केवल जीता बल्कि निरपराध राणी धारणी, उसकी पुत्री राजकुमारी वसुमती एवं प्रजाजन का भी धन माल, युवतियाँ, सुन्दरियों को लूट कर दास दासी बनाया। बेवा रानी धारणी ने सतीत्व की रक्षा में प्राण दे दिये। वसुमति को जब वैश्या के यहाँ एक लाख स्वर्ण मुद्राओं में सरे बाजार बेचा जा रहा था तब निःसंतान धनावाह सेठ ने उसे उतनी मुद्रा में मोल लिया।

वह अनुपम सौंदर्य एवं गुणों से सुवासित होने से चन्दनबाला कहलाई। मूला सेठानी की ईर्ष्यावश सेठ की अनुपस्थिति में जर्जर हाल, तीन दिन की भूखी प्यासी, बेडियों में जकड़ी, तलघर में पड़ी रही। श्रेष्ठी के आने पर और कुछ तब घर में खाना न होने पर सूप में बासी बाकुले उसे दिये। पांच माह पच्चीस दिन के उपवास करते हुए महावीर वहाँ पहुंचे। सारे अभिग्रह पूरे होने से भगवान ने उससे कुछ बाकुले लेकर पारणा किया। राजा शतानीक को तब रहस्य समझ में आया। चन्दनबाला साध्वी संघ की प्रमुखा बनी, अन्यों से पहले केवल्य प्राप्त किया। यह नारी उत्थान का श्रेयस्कर उदाहरण है।

शूद्रों के साथ दुराचार, अत्याचार होते थे। ऊंच नीच से जाति प्रथा, ग्रस्त थी। असंख्य पशुओं पर असीम अत्याचार, यज्ञादि, कर्म काण्ड के नाम पर होते थे । इन सब कुकृत्यों के पीछे वास्तविक सत्य, अहिंसा की भावना न होकर व्यस्त स्वार्थ, भौतिक लिप्सा, जिह्वा स्वाद, मद्य, मांसादि, माया, छल, कपट,

अज्ञान, अँध विश्वास, जड़, रूढिवाद, दीन–हीन जनता का शोषण, प्रमुख थे। महावीर परमवीर थे जिन्होंने, आत्म संयम, परिषहों, तप से, अपने को तपाकर, अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, अचौर्य, ब्रह्मचर्य के महाव्रत का मार्ग स्वयं अपनाया, औरों को दिखाया, कथनी करनी का अन्तर मिटाया।

जीव और पदार्थ अहिंसा एवं सत्य के आलोक में अनंतधर्मी स्पष्ट होते हैं। वे ही ज्ञान दर्शन के आवरण से मोह माया लिप्तता अंतराय भावना से कई प्रकार के मिथ्यात्व में बदल जाते हैं। जैसे–

(1) **अभिग्राहक मिथ्यात्व** – अपनी मानी हुई मान्यता में ही कट्टरता। जैसे पशुबलि में कुर्बानी मानकर आज भी कई जातियाँ इसे धार्मिक आचरण मानती हैं। अपने कषायों आदि का त्याग किया जाना धार्मिक है। एक जाति दूसरी जाति सम्प्रदाय से घृणा करती है। ऊंच नीच का भेदभाव गलत है।

(2) **अनाभिग्रहीत मिथ्यात्व**–यह सत्य की साधना नहीं है। सब धर्मों को प्रमादवश बराबर समझना। यह विवेक शून्यता है। जो जैसा है , उसे वैसा समझते हुए स्वयं राग द्वेष से अभिभूत न होना सम्यग् दर्शी होना है । हरिभद्र सूरी ने कहा –

पक्षपातों न मे वीरेन द्वेष कपिला दिषु।
युक्तिमर वचनं यम्य तम्य कार्यः।।

पक्षपात रहित विवेक सहित यथार्थ का ज्ञान, श्रम साध्य धैर्य से वैज्ञानिक तटस्थता से जानना जरूरी है।

(3) **अभिनिवेसक मिथ्यात्त्व**–दुरारग्रह वश सत्य समझते हुए भी उसे स्वीकार न करना, हठधर्मिता है। कुतर्क से अपने गलत पक्ष को सच्चा बताना। पूर्वाग्रह के कारण सत्य स्वीकार न करना, इसमें आता है।

(4) **संशयात्मक मिथ्यात्त्व**–मूढमति , स्वार्थ वश ,निग्रन्थ वचन को भी, संशय की दृष्टि से देखें क्योंकि आकांक्षा युक्त,

शंकाशील होकर दूसरों से घृणा करके, भेड़ चाल की तरह लोक मूढता से सत्य उजागर नहीं होता।

(5) **अनायोग मिथ्यात्व**–यह अज्ञान जन्य है। तत्वबोध पाया नहीं है, अतः अभिमानी बन, अपने को अन्य सब से बड़ा मानना; दूसरे के छोटे से दोष को बड़ा बताना, अपने बड़े दोषों को छुपाना, सत्य की पहिचान न होने पर अन्धानुकरण इसमें आता है। ये सब दोष सम्यग् दर्शन की अप्राप्ति के भी कारण बनते है। अतः प्रभु ने फरमाया था–

अप्पाकता विकत्तये सुहाणय दुहाणय।
अप्पा मित्त मिमित्तं सुपट्ठिये दुपट्ठिये।।

आत्मा ही हमारा शुभ कर्ता या अशुभ कर्ता है। सुख या दुःख पहुंचाने वाला है। जैसा इस जीवात्मा से हम भाव और क्रिया करते हैं।

जो सहस्स सहस्साणं दुज्जय जिणे।
एगो जिणेज्ज अप्पाणं तेससे परमोजय।।

जो लाखों योद्धाओं को युद्ध में जीतता है उससे भी अधिक वीर जो आत्म विजय करता है।

नवि मुण्डियेण समणो औमकारेण न बमणों।
समाये समणोहाई बम्भचेरण बम्भणों।।

मुण्डन मात्र या वेष मात्र से श्रमण नहीं होता न केवल ओम् ओम् उच्चारण से ब्राह्मण होता है। समभाव से श्रमण एवं ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण होता है।

इस पृष्ठ भूमि में अनेकान्त एवं स्याद्वाद सरलता से समझ सकेंगे। सत्य क्या है, अस्तित्व किस प्रकार है?

"उत्पाद, व्यय, ध्रोव्य युक्तं सत् "।

–(तत्वार्थ) 5:29

उपरोक्त तीनों गुणों से जो युक्त है वह सत्य है। जीव तत्वों में आत्मा सदा विद्यमान है। वर्तमान स्थिति का क्षय व्यय है। प्रतिपल जागरूक प्रयास कर , स्वद्रव्य आत्मा की प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है – ध्रुव है , एवं केवल तन, मन वचन मात्र को जीव या शरीर मानना – सतत् व्यय है। इसी प्रकार पदार्थ की दृष्टि से बीज का अंकुरण होना उत्पाद है। उसका पौधा एवं वृक्ष रूप में बढ़ना बीज का व्यय है एवं पुनः बीजों से उत्पति ध्रोव्य है। इस प्रकार की विविध अपेक्षाऐं हैं, दृष्टिकोण हैं। पदार्थ तथा जीव की अनेक विशेषताऐं हैं। जैसे जीव के लिए कहा गया है।

समता, रमता, उरधता, ग्याकता, सुखमास।
वेदकता, चेतन्यता ये सब जीव विलास।।

इसके विपरीत अजीव के लक्षण हैं –

तनसा, मनसा, वचनता जड़ता, जड़ सम्मेल।
लघुता गुरुता, गमनता ये अजीव के खेल।।

–(समयसार– बनारसीदास)

समता, रमता उरधता, अनेकांत धर्मी जीव (आत्मा) में सत्य एवं अंहिसा सम्मिलित है। अतः महात्मा कबीर ने कहा है–

कबीरा सोही सत् है जो जाणे पर पीर।
जो पर पीर न जाणिये ते काफिर बेपीर।।

जो अन्य की पीड़ा नहीं जानता उसमें आत्मभाव या ईश्वर नहीं है।

सारांश में यह कहा जा सकता है कि जीव एवं पुद्गल अनेकधर्मी हैं और उन्हें एक साथ नहीं कहा जा सकता। वरन एक एक अपेक्षा, विशेषता, सत्यांश के रूप में ही प्रकट किया जा सकता है। जो स्याद्वाद का मर्म है। अतः कहा गया है

अर्पितान अर्पिता सिद्धे ।

–(तत्वार्थ सूत्र 5:31)

कभी वस्तु का मुख्य–पक्ष व्यक्त किया जाता है तब उसका अन्य पक्ष गौण रहता है। व्यक्त एवं अव्यक्त दोनों मिलकर ही सत्य को उजागर करते हैं। प्रभु महावीर ने तो सत्य कथन पर भी कुछ सीमा बांधी है। जैसे सत्य स्व एवं परहितकारी होना आवश्यक है। तभी वह विश्वसनीय एवं पूजनीय होगा। सत् के विश्लेषण में स्वदृष्टि, पर–दृष्टि एवं अन्य अपेक्षाएँ रहती हैं, वह सप्तभंगी, स्यद्वाद है। जैसे सूर्य की किरण या प्रकाश कण रूप में रेखायुक्त है। लेकिन द्विधर्मी होने पर तरंग रूपनी है। इसी प्रकाश की किरणें द्विधर्मी यानी कण रूप में या झूलती तंरग रूप में प्रवाहित होने से प्रकाश कण एक संदूक के बीच विभाजन अ और ब खण्ड होने व बीच में छेद होने पर, रक्षा अनुसंधान पूर्व वैज्ञानिक **डॉ. एस. कोठारी** अनुसार सप्त भंगी स्थिति बन जाती है।

आस्ति है – प्रकाश कणं 'अ' भाग में ।

नास्ति – नहीं (प्रकाश कण 'अ' भाग में नहीं)।

आस्ति नास्ति –है, नहीं है, (प्रकाश कण है भी व नहीं भी)।

अवक्तव्यं– कह नहीं सकते। निश्चित नहीं कह सकते। आस्ति अवक्तव्यं है, नहीं कह सकते ।

अस्ति अव्यक्तव्यं– है, नहीं कह सकते।

नास्ति अवक्तव्यं – है, नहीं है, नहीं कह सकते।

आस्ति नास्ति अवक्तव्यं दोनों ही नहीं कह सकते।

रोगी की गंभीर स्थिति के उपचार स्वरूप स्वस्थ होने, न होने के बारे में, चिकित्सक उपरोक्त कथन कर सकता है।

जीवात्मा केवल ज्ञान प्राप्ति के पूर्व ऐसी कई अनिश्चित अवस्थाओं से गुजरती है। जैसे एक अंधे व्यक्ति के लिए हाथी के अलग–अलग अवयव देखकर उनका वर्णन करना।

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि विज्ञान ने भी कुछ पार्टीकल्स (परमाणुओं) के बारे में माना है कि उनका व्यवहार निश्चित नहीं कहा जा सकता। **डब्ल्यू हेजन बर्ग** का यह कथन है लेकिन कुछ सीमाओं में उनका व्यवहार आंका जा सकता है । उससे पदार्थ जगत में क्रांति आई है जैसे टी.वी., मोबाईल फोन, चिकित्सा जगत में भी ऐसे आविष्कार हुए हैं।

नील बोहर के अनुसार कई विरोधी दिखने वाले तत्व एक दूसरे के सहायक होते हैं। जैसे फफूंद से पेन्सिलीन का अविष्कार कर घातक रोगों पर विजय पाई। छोटी चेचक के द्रव्य से वेक्सीन (टीका) प्राप्त कर संसार को चेचक से उबारा इत्यादि, इत्यादि। स्त्री– पुरूष, दिन–रात, श्रम–विश्राम, इत्यादि , विरोधी दिखने वाले एक दूसरे के पूरक हैं।

अन्य कई अपेक्षाओं से भी जीव और जगत के सम्बन्ध में अनेकांत एवं स्याद्वाद से सत्य समझा जा सकता है। जैसे द्रव्य क्षेत्र, काल एवं भाव। जीव की सिद्धि में सम्यग् दृष्टि, मिथात्व का हनन, ज्ञान, दर्शनावरणीय कर्मों का क्षय से दर्शन मोहनीय एवं चारित्र मोहनीय कर्म की अल्पता एवं दान लाभ भोगोपभोग वीर्याणि तत्वार्थ सूत्र 2–4 अनुसार आत्मा की उत्क्रांति सुलभ होती है।

इसी तरह पदार्थ जगत में द्रव्य अर्थात् वस्तु के मूल धर्म को प्राप्त करने की अपेक्षा रहती है। यदि वह केवल काया , मनसा , वाचा सुख तक ही सीमित है तो वह भौतिक द्रव्य की चाह करेगा और उसके परिणाम स्वरूप उसे वैसे ही क्षेत्र, समय, काल एवं भाव की ओर अग्रसर होना पड़ेगा। हिंसा के सम्बन्ध में भी अन्य दृष्टिकोण अपनाया जा सकता है। जैसे डॉक्टर द्वारा अप्रमाद से रोगी की शल्य चिकित्सा , दवाई देना आदि किया जाए , जिससे कि वह स्वस्थ हो सके तो वह हिंसाजन्य न होगा।

सत्य के अनेक पहलू जो सर्वज्ञ द्वारा जानकर बताए गए हैं उन्हें एक साथ नहीं कहा जा सकता अतः वे क्रमबद्ध ही कहे जा

सकेंगें। जो मूल रूप है , वह प्रमाण होगा और जो अंशरूप है , वह नय है। कथंचित या अपेक्षा एक विशेषता रूप में नय है। समग्र रूप में वह प्रमाण है। तत्वार्थ सूत्र के 1:6 में कहा गया है।" प्रमाण नैयर अधिगम :।" प्रमाण एवं नय यानी उसके बदलते पर्यायों को समझने पर ही ज्ञान यथार्थ एवं पूर्ण होता है। द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव अनुसार मूल द्रव्य में कई पर्याय बनते हैं।

अतः एकान्त आस्ति या एकान्त नास्ति , उचित नहीं है। एक ही व्यक्ति पिता भी है पुत्र भी है, चाचा, भतीजा भी है। सोने की धातु से कई वस्तुए बनाई जा सकती हैं।

स्याद्वाद के प्रमुख व्याख्याकार श्वेताम्बर मुनियों में सिद्धसेन हुए हैं, जिन्होंने सन्मति–तर्क में इसकी प्रभावोत्पादक व्याख्या की है। दिगम्बर आचार्य समन्तभद्र ने यही कार्य "आप्त मीमांसा" में किया है। विरोधी दिखने वाले धर्मों में वास्तविक अविरोध का प्रतिपादन हेमचन्द्राचार्य ने कर यथार्थ समन्वय बताया है।

डॉ. हरमन जैकोबी ने लिखा है, 'स्याद्वाद से समस्त सत्य विचारों का द्वार खुल जाता है। यह विभिन्न धर्मों, दर्शनों, मतों, सम्प्रदायों में विवादों में समन्व्य की आधारशिला है।' **अलबर्ट आइन्स्टाईन**, जिन्हें अपने गुरुत्वाकर्षण के सापेक्षवाद के सिद्धान्त पर नोबेल–विश्व पुरस्कार 1921 में मिला, उन्होंने अपनी पत्नी को यह सापेक्षिक–सिद्धान्त इस तरह संक्षेप में समझाया कि "जब एक व्यक्ति एक सुन्दर स्त्री के सामने बैठकर एक घंटा बिताता है तो वह समय उसे एक मिनट नजर आता है, इसके विपरीत यदि वह गर्म भट्टी के निकट बैठा है तो उसके लिए एक मिनट भी एक घंटे के कष्ट से भी अधिक असहनीय होता है।"

दृष्टिकोणों की विविधता, सत्य के अनेक पहलू होना, इनका सार है, लेकिन मोटे रूप में व्यवहार में एक ही वस्तु निश्चय–नय से अलग एवं व्यवहार–नय से अलग प्रतीत होती है। भौंरा काले

रंग का दिखता है लेकिन उसमें कई रंग घुले हुए हैं। निहारिकाएँ अरबों अरबों मील विस्तृत हैं। कईयों पर हुई घटनाएँ वर्षों पश्चात् हमें दृष्टिगोचर होती हैं। हालांकि प्रकाश की गति 1 लाख 86 हजार मील प्रति सैकेण्ड है। इस प्रकार हमारी सत्य को समझने की सीमाएँ हैं।

मति ज्ञान एवं श्रुतिज्ञान में भी इसकी चार अवस्थाएँ है। जैसे (1) अवग्रह (2) ईहा (3) अवाय (4) धारणा–यह ज्ञान मोह मायाग्रस्त, स्वार्थी, एकांगी भी हो सकता है और अपनी–अपनी बुद्धि के अनुसार 'अवग्रह' अवस्था में केवल अस्पष्ट रूपरेखा ही समझी जा सकती है। तत्पश्चात् भी संदेहात्मक स्थिति रहती है कि रस्सी जैसा होने से वह सांप तो नहीं है – 'ईहा' अवस्था है, उसको छूने पर फुंफकारने से सांप होना तय हो जाता है और उसके चलने से शंकाएँ समाप्त होकर 'धारणाएँ' सुनिश्चित हो जाती हैं।

यहाँ तक कहा गया है कि व्रत धारण करने वाले व्यक्ति का व्रत निष्फल रहता है यदि यह निःशल्य नहीं है। "निःशल्यो व्रती।" तत्वार्थ 7, 13 शल्य–अर्थात कांटा। यदि मोह माया के साथ फल की इच्छा रखे हुए व्रत ग्रहण किया जाता है तो वह व्रती नहीं कहा जा सकता। प्रभु जो इन सबसे रहित थे, केवली थे उन्होंने कई अपेक्षाओं से, गणधरों को, उनके प्रश्नों के उत्तर दिये। विस्तार भय से केवल कुछ उदाहरण ही देते हैं । जीव के बारे में जामालि को उत्तर देते हुए भगवान ने कहा– "जीव शाश्वत है, वह था और होगा इसलिए वह ध्रुव, नित्य, शाश्वत, अटल, अक्षय.... . है।"

एक अपेक्षा से जीव अशाश्वत भी है वह नेरइक होकर तिर्यंच हो जाता है, फिर मनुष्य और मनुष्य होकर देव भी । भाव एवं क्रिया अनुसार कर्म बंधन के कारण बदलता रहता है– इस दृष्टि से जीव अशाश्वत है। गौतम को भी भगवान ने कहा " द्रव्यार्थिक

दृष्टि से जीव शाश्वत है और पर्यायार्थिक दृष्टि से जीव अशाश्वत है।"

वस्तु कई तरह से समान गुण वाली है एवं कुछ रूप में दूसरे से विसदृश्य है। चेतन गुण की दृष्टि से जीव पुदगल से भिन्न है और अस्तित्व और प्रमेयत्व गुण की अपेक्षा पुद्गल से अभिन्न है। आत्मा जब पोद्गलिक सुख दुख की अनुभूति करती है ,तो वह पुद्गल से अभिन्न है । कर्मबन्धन के कारण पुनर्भवी है। लेकिन समस्त कर्म क्षय पर आत्मा अजर , अमर है । पुनर्भवी नहीं है।

आत्मा चेतन है। काया अचेतन है। स्थूल शरीर की अपेक्षा वह रूपी है और सूक्ष्म शरीर की अपेक्षा वह अरूपी है। शरीर, आत्मा से कथंचित्त अपृथक भी जब तक पुद्गल शरीरादि से जुड़ी हुई है।

आगम पद्धति के आधार पर दार्शनिक युग में स्याद्वाद का रूप चतुष्टय बना। वास्तु स्यात् नित्य है, स्यात् अनित्य है, स्यात सामान्य है, स्यात् विशेष है, स्यात् सत् है, स्यात् असत् है, स्यात् वक्तव्य है, स्यात् अवक्तव्य है। यहाँ स्यात् शब्द का अर्थ संदेह के रूप में नहीं हुआ है। वरन् निश्चय रूप में हुआ है। इसलिए सिद्धसेन ने कहा है.....

जेणविणा लोगस्स व्यवहारो सवत्थान णिण्वइए ।
तस्य भुवणेकगुरुणों, णेमाऽणेगंत्पायस्स।।

यह अनेकांत जगतगुरु के समान है इसे नमस्कार है।

थोड़ा गंभीर विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि वस्तु भी अनेका गुणात्मक होती है। वही वस्तु एक के लिए अमृत , एक के लिए विष है। ऐसे ही विचार दर्शन भी अनेक तरह के हैं। उनको कहने के पीछे भी प्रकट एवं अप्रकट कई उद्देश्य होते हैं। आज लगभग सभी राजनैतिक दल अपने को प्रजातंत्र वादी कहते हैं – चाहे साम्यवादी अधिकनायकवादी, समाज वादी साम्प्रदायवादी हों।

लेकिन कहीं प्रजांतत्र के नाम पर एक पार्टी का ही शासन है। कहीं कई दल चुनाव में भाग लेते हैं। कहीं उनकी अर्थ नीति, पूंजीवादी है, कहीं समाजवादी, कहीं इनमें जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद है, कहीं पिछड़ी जातियों का सर्वोपरि हित होता है या कहीं आम आदमी की समग्र क्रांति की बात का कमोबेशी समन्व्य होता है। आश्चर्य है आजादी के 66 वर्षों बाद भी भारत के 30–35 करोड़ लोग गरीबी रेखा के नीचे हैं, सर्वहारा हैं।

इन सबके उपरान्त भी कईयों का जन प्रतिनिधित्व करने का उद्देश्य केवल सत्ता हथियाना , भ्रष्टाचार करना, भाई भतीजावाद फैलाना, धर्म एवं सम्प्रदाय के नाम पर और विभाजन कराना, आंतक फैलाना, राज्य विस्तार करना, शस्त्रो अस्त्रों की होड बढाकर देशों को लड़वाना, धन कमाना आदि है। जिनसे सब देशों का अंततः नुकसान होता है। कोई कट्टरपंथी सत्ता मद में या अन्य कारणों से पागल व्यक्ति , इस परमाणु अस्त्रों के युग में समूची मानव जाति को प्रलय में धकेल सकता है। आज देशों के पास इतने विषैले अणु, जीवाणु रसायनिक हथियार हैं कि समस्त पृथ्वी को कई बार स्वाह किया जा सकता है। अमेरिका ने इराक पर हमला तेल के लालच में, विषैले , हथियार बनाने के आरोप लगा कर किया।

अतः अहिंसा एवं सत्य पर अनेकान्त, शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व, स्याद्वाद अर्थात अहिंसा एवं सत्य इत्यादि कई दृष्टिकोणों से समग्र चिन्तन, समादर एवं विवेक से वैश्विक, देशीय, क्षेत्रीय समस्याओं का हल ढूढ़ने में ही मानवता का त्राण है। महावीर ने कहा है, "शस्त्र एक दूसरे से बढ़कर संहारक हैं। लेकिन अहिंसा सबसे बढ़कर अमोध शस्त्र है।"

आज प्रलयंकारी शस्त्रों की होड़, उनका ऐकाधिकार रखने की प्रवृति तथा इससे धनोपार्जन की लालसा बढ़ी है। स्वार्थवश एकांगी दृष्टिकोण अपनाने से मिथ्यात्व, माया, छलकपट से राज्य विस्तार, अतुल धन सम्पति कमाने की नैतिकता रहित, निपट

भौतिक वादी व्यवस्था से, व्यक्ति, राष्ट्र एवं विश्व का निश्चय ही पतन एवं विनाश होगा।

अतः "सत्यमेव जयते" और "जियो और जीने दो" – जो अनेकान्त एवं स्याद्वाद के सिद्धान्त है, उन्हें अपनाया जावे।

–अस्तु

खरतर तपागच्छीय देवासिय , राईय, पक्खि चउमासिय, एवं संवत्सरी श्रावक प्रतिक्रमण के प्रमुख तीन सूत्रों पर प्रकाश

1) वंदित्तु सूत्र, 2) सकलार्हत एवं 3) अजित शांति

1. **वंदित्तु सूत्र** को श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र भी कहा जाता है। इसमें कुल पचास गाथाऐं हैं। श्रावकों के बारह व्रतों एवं अतिचारों से यह सूत्र सम्बन्धित है। पांच महाव्रत अंहिसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह जिसे श्रावक श्राविका पूर्ण रूप से पालन नहीं कर पाते हैं , अतः उन्हें पांच अणुव्रत रूप में ही पालने पर भी अतिचारों के दोषी हो जाते है, इसी तरह तीनों गुणव्रत हैं (1) दिशा परिमाण व्रत (2) दिग्परिमाण व्रत एक दिशा में कुछ भाग तक जाना आदि (3) अनर्थ दण्ड व्रत। अन्य चार शिक्षा व्रत हैं (1) सामायिक–व्रत (2) उपभोग–परिभोग परिमाण–व्रत (3) पोषधोपवासव्रत एवं (4) अतिथि संविभागव्रत।

दिन में, रात्रि में, एक पखवाड़े में, चतुर्मास में अथवा वर्ष भर में इन व्रतों के पालन में जो दोष लगे हैं, उनका हृदय से पश्चाताप करना ही 'प्रतिक्रमण' है। इन व्रतों एवं अतिचारों के सम्बन्ध में आगार (गृहस्थ) धर्म में, तत्वार्थ सूत्र के सप्तम अध्याय में एवं इस वंदित्तु सूत्र की गाथाओं में विस्तार से वर्णन है। जो अतिचार सामान्यतः कम जानकारी में आते हैं, संक्षेप में मात्र

उनका वर्णन यहाँ पुनरावृत्ति दोष से बचने हेतु किया जा रहा है। साथ ही सूत्र में सम्यग् दर्शन के दोषों का यानी सम्यग् दर्शन, सम्यक् रूप से न पालने को भी उल्लेखित किया गया है, जिन्हें उपरोक्त सभी प्रतिक्रमणों में सूत्र के द्वारा कहकर आलोचना ली जाती है यानी स्वयं की निन्दा, आलोचना, पापकर्मों से पीछे हटने के लिए की जाती है। लक्ष्य सम्यग्–दर्शन, ज्ञान एवं चरित्र होता हैं।

"संका कंख, विगिच्छा, पसंस तह संथवो कुलिंगीसु।
सम्मतस्यइयारे, पडिक्क में देसिअंसव्वं।।" (6)

जिन वचन में शंका, धर्म के फल की आकांक्षा, साधु साध्वी के मलिन वस्त्रों पर घृणा, मिथ्यात्वियों की प्रशंसा, उनकी स्तवना, सम्यग् दर्शन के पाँच अतिचार हैं। इसी तरह भोजनादि हेतु पृथ्वीकाय जीवों के समारंभ से, प्राणियों को बांधने से, नाक, कानादि छेदन से, किसी का रहस्य खोलने से, कूड़े तोल, माप रखने, दस्तावेज लिखने व चोरी की वस्तु रखने, नकली वस्तु असली के दाम बेचने, परस्त्रीगमन या अप्रशस्त भाव से या अपरिग्रह व्रत में हेरफेर करने, अनर्थदण्ड के कार्य, व्यर्थ प्रलाप, स्वप्रसिद्धि, अनावश्यक वस्तु संग्रह, स्वाद की गुलामी, पाप कार्य में साक्षी, सामयिक में समभाव नहीं, समय मर्यादा नहीं पालना, नींद लेना, दिग्व्रत का उचित पालन नहीं करना, शस्त्रादि व्यापार, चक्की, घाणी, यांत्रिक कर्म जिनमें जीवों की हानि हो, छेदन, अग्नि कर्म आदि तथा भूमि प्रमार्जन में प्रमाद, प्रौषधव्रत का उल्लंघन, इस लोक में, परलोक में सुख वैभव की आकांक्षा आदि विविध दोषों के लिए सूत्र में प्रायश्चित किया गया है। कुछ ऐसे दोहे हैं जिनमें स्वआलोचना का महत्व दर्शाया है, जैसे–

"कय पावो विमणुस्सो आलोइअ निंदिअ गुरुसगासे।"(40)

जिस प्रकार भार उतारने से हल्का होता है, उसी प्रकार गुरुदेव के पास आलोयणा लेने से, आत्म साक्षी से, पाप की निंदा करने से, मनुष्य के पाप हल्के होते हैं।

"खिप्पं उवसामेई वाहित्तव सुस्क्खिओ विजो।"(37)

सुशिक्षित वैद्य से रोग ठीक हो जाता है, वैसे ही प्रतिक्रमण के पश्चाताप से दोष दूर हो जाते हैं। अतः प्रतिक्रमण द्वारा निषिद्ध कार्य करने एवं योग्य कार्य न करने के दोषों के लिए प्रायश्चित एवं आत्म निंदा करता हूँ । अतः हे प्रभु –

"खामेमिसव्वजीवे, सव्वेजीवा खमंतुमे।
मित्ती में सव्वभूएसु, वैरमन्झंमनकेणई"।

वंदित्तु में, 49 वे, लगभग आखरी दोहे में, कहा गया है।

अंतिम 50 वे दोहे में कहा है –

"एवमहं आलोइअ निंदिअ गरहिअ दुगच्छंसम्मं"–

अर्थात् "मैं अच्छी तरह कृत पापों की आलोचना, निंदा गुरु के समक्ष गर्हा" घृणा करता हूँ।'

2. अब प्रमुख सूत्र <u>सकलार्हत चैत्य वंदन</u> का संक्षिप्त वर्णन किया जाता है। मंदिर मार्गियों में चैत्य, प्रतिमाओं का विशिष्ट महत्व है। तीर्थंकरों की अनुपस्थिति में अनेक लांछन, प्रतीक–सिंह मृगादि– के साथ जिनेश्वर के भव्य कलात्मक मंदिर, नयनाभिराम योगमुद्रा में स्थित तीर्थंकरों की मूर्तियाँ सहज ही भक्त का मन मोह लेती हैं। प्रतिक्रमण देवसीय, राइय एवं अन्य विविध प्रकार से उनको वंदन स्तुति कर उनका गुणानुवाद किया जाता है, ताकि नाम, स्थापना, द्रव्य भाव से जो प्रत्येक क्षेत्र एवं काल में उनकी प्रशस्ति हुई है, उससे हम भी प्रभावित हो एवम् आत्म कल्याण कर सकें।

'संकलार्हत सूत्र' चैत्य वंदन में चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति रूप में चौबीस, तथा प्रभु महावीर को एवं चेत्यों, तीर्थों, प्रतिमाओं को भी कुछ दोहे गाथाऐं समर्पित हैं। संस्कृत में रचे ये दोहे अत्यन्त सुन्दर, प्रभावी, गूढ और आध्यात्म शास्त्र के बेजोड़ नूमने हैं, स्मरणीय हैं। स्थानाभाव से कुछ ही उल्लेखित करना उपर्युक्त होगा। वाचक अतः मूल पाठ सहृदयता से पढें, समझें।

प्रथम तीर्थंकर दादा ऋषभदेव के लिए अर्पित है– "आदिमं पृथ्वीनाथ, मादिमं निष्परिग्रहम् आदिम तीर्थनाथंच ऋषभ स्वामिनं स्तुवः।" अवसर्पिणी काल में ऋषभ देव प्रथम नृपति, प्रथम अपरिग्रही एवं प्रथम तीर्थंकर हुए हैं, जिन्हें वंदन करते हैं। इसी तरह विश्व जन समुदाय रूपी कमलों को विकसित करने में अजितनाथ प्रभु , भास्कर तुल्य हैं। 'अनेकांत मताम्बोधि समुल्लासम चन्द्रमा, दधादमन्दमानंदं भगवान अभिनंदनः।' अनेकांत रूपी समुद्र को उल्लासित करने में अभिनन्दन स्वामी चन्द्रमा के समान हैं।

"चन्द्रप्रभ प्रभोश्चन्द्र मरीचिनिचयोज्जवला।
मूर्ति र्मूतिसितध्यान निर्मितेव श्रियेऽस्तुवः।। (10)

चन्द्रप्रभु स्वामि की मूर्ति; चन्द्रमा की शीतल किरणों के सामान उज्ज्वल, मानो शुक्लध्यान से ही बनी हो, तुम्हारी आत्म लक्ष्मी की वृद्धि करे।

सत्वानां परमानन्द कंदोद् भेदन वाम्बुद : ।
स्याद्वादमृत निःस्यन्दी, शीतलःपातुवोजिनः।। (12)

स्याद्वादरूपी अमृत की वर्षा करने वाले परमानन्द रूपी अंकुर को स्थापन करने में नव मेघ तुल्य प्रभु शीतलनाथ को वंदन करता हूँ।

भवरोगाऽऽर्तजन्तूनः मगदंकार दर्शनं (13)

भवरूपी रोग को मिटाने में कुशल वैद्य समान श्रेयांस नाथ आपका श्रेय करें। अनंतनाथ प्रभु के हृदय में स्वयंम्भूरमण समुद्र की अनंत करूणा है। धर्मनाथ प्रभु कल्पवृक्ष के समान हैं। शांतिनाथ प्रभु अमृत के समान निर्मल देशना से दिशाओं के मुख उज्ज्वल करते हैं। श्री कुंथुनाथ प्रभु चौबीस अतिशय युक्त हैं, सुर असुर नरों के कल्याणकारी नाथ हैं।

सूरासुर नराधीश मयूरनव वारिदम्।
कर्मदूसमूलने हस्ति मळं मळीमभिष्टुम।। (21)

मल्लीनाथ प्रभु कर्मवृक्षों को उखाड़ फैकनें में हस्तिसम् है। सबके मन मयूर को हर्षित करने में नवमेघ समान हैं । जगत की अज्ञाननिद्रा हरने मे मुनिसुव्रत स्वामी नवप्रभात सम हैं। वीर प्रभु हेतु कई पद हैं –

वीरःसर्वसुरासुरेन्द्रमहितो वीरं बुधा संश्रित।
वीरे णाभिहतःस्वकर्मनिचयों वीराय नित्यंनमः ।। (29)

वीर प्रभु विद्वानों पंडितों से पूजित हैं। सारे कर्म घोर तप से नष्ट किये हैं। उनमें केवल ज्ञान रूपी लक्ष्मी, धैर्य, कांति, कीर्ति स्थित है। तीर्थों की उपासना में अष्टापद, गजपद, सम्मेत–शिखर, गिरनार , शत्रुंज्य, वैभारगिरी, आबू, चित्रकूट की उपासना की है।

3. **अजित शांति**– सकलार्हत की तरह अजित–शांति, स्तवन भी देवसीय, राइय, प्रतिक्रमण के सिवाय, पक्खि, चऊमासी, संवत्सरी, प्रतिक्रमण में बोला जाता है। इसमें चालीस दोहे हैं, जो पूर्वाचार्य श्री नंदिषेणकृत है। शत्रुंजय तीर्थ पर विराजित अजितनाथ एवं शांतिनाथ के चैत्यों के बीच में रहकर दोनों की एक साथ स्तुति कर रचना की है। कोई आचार्य श्री नंदिषेण को महावीर जिन शिष्य तथा कोई नेमिनाथ प्रभु के शिष्य मानते हैं। शत्रुंजय महाकल्प में नंदिषेण का उल्लेख है। प्राकृत भाषा में शांत रस, सौन्दर्य एवं श्रृंगार रस का अध्यात्म जगत में बेजोड़ नमूना है। रूचि अनुसार पाठक विस्तार से मूल अवश्य पढें। यहाँ चन्द श्लोक उपरोक्तभाव की पुष्टि स्वरूप दिये जाते हैं।

अजिअंजिअ सव्वभयं, संतिचपसंतसव्व गय पावं
जय गुरुसंतिगुण करें, दोविजिणबरे पणिवियामि।। (1)

अजितनाथ एवं शांतिनाथ दोनों जिनवर सब पापों को हरकर शांति देने वाले हैं। सातों भयों को दूर करते हैं। शांतिनाथ एवं अजितनाथ प्रभु–"सुहपवत्तणं तवपुरिसुत्तम नाम कित्तणा तहय धिई मइ पवत्तणं" सुख के दाता धैर्य एवं कीर्ति की वृद्धि करने वाले है।

सावत्थि पुव्व पत्थिवंच वरहत्थि मत्थयपसत्थ
विच्छिन्न संथयं, थिर सरिच्छवच्छ पयगय
लीलांय माण वरगंध हत्थि पत्थाण पत्थियं (9)

भगवान अजितनाथ का दीक्षा के पूर्व श्रावस्ती नगर के राजा के रूप में सुन्दर उपमाओं युक्त इस गाथा में विस्तार से वर्णन है, जिसका कुछ अंश ऊपर दिया है। श्रेष्ठवर गंध हाथी की तरह जिनकी चाल थी, जिनका मस्तिक एवं ललाट भी प्रशस्त एवं ऐसे उसी तरह विशाल था। शरीर का वर्ण तप्त सोने सदृश तथा वाणी देवदुन्दुभि तुल्य मधुर थी। इसी तरह चक्रवर्ती श्री शांतिनाथ प्रभु के दीक्षा पूर्व का वैभवतल स्पर्शी है।

"जो बावत्तरि पुरवर सहस्सवर नगर निगम जणवद वई
बत्तीसाराय वर सहस्शाणुयाय मग्गो।"(11)

जिनके अधीन बहत्तर हजार बड़े नगर निगम, बतीस हजार राजे महाराजे, छः खण्ड के स्वामी, जिनकी सेना में चौरासी लाख हाथी घोड़े उतने ही रथ थे। वैभव में चौदह रत्न,नव महानिधि आदि एवं चौसठ हजार युवतियाँ थीं।

कवित्व की अनुपम कला में –

"देवदाण, विंदचंद, सूरवंद!
हट्ठ तुट्ठ, जिट्ठ, परम लट्ठ रूव!
धंतरूप पट्ट सेय, सुद्ध, निद्ध ,धवल दंतपति।
संत्ति! संत्ति, कित्ति, मुत्ति ,जुत्ति, गुत्ति पंवर।।"(14)

देवेन्द्र, दानवेन्द्र, चन्द्र, सूर्य से पूजित, हर्षित, श्रेष्ठ, उत्कृष्ट हैं। तप्तचांदी के पाट समान श्वेत, निर्मल, स्निग्ध, उज्ज्वल इनकी दंत पंक्ति है।

दोनों देवों (प्रभु) को नव शरद चन्द्रमा से शीतल, सूर्य से अधिक प्रकाशवान, इन्द्र से अधिक स्वरूपवान, धरणीधर से अधिक धैर्यवान माना है।

प्रभु की वन्दना करने आई अप्सराओं का एवं उनके समक्ष नृत्य करती नृत्यांगनाओं का अपूर्व वर्णन है।

अंबरतर विहारणिआई, ललिय हंस बहु गामिणी आहिं,
सकल कमल दल लोइणि आहिं। (26)
पीण निरन्तर थण भर विणमिय गायल आहिं
मणिकंचण पसि ढील मेहुल सोहिंअ शोणि तडाहिं। (27)
वंस सद्द तंतिताल मेलिए
तिउक्खराभिराम सद्दमीसहा कएअं. देव नट्टि आहिं! (31)

ब्योम से उतरती ललित हंसों के जोड़ों की सुन्दर कमनीय चाल वाली, पुष्ट नितम्ब एवं स्तन वाली, कमल पत्र के समान नैन वाली, कटि में मेखला, आभूषण सुन्दर वस्त्रों युक्त अपसराऐं प्रभु के चरणों में वंदन कर रही है। ऐसे में वंशी वादन कर तरह तरह से देव नृत्यांगनाऐं प्रभु के समक्ष झुक–झुक कर नृत्य कर रही हैं। प्रभु मोह रूपी अन्धकार से दूर हैं। अन्त में नंदिषेण अपने लिए एवं सभी सभासदों के लिए 'संयम' के वरदान की प्रार्थना करते हैं। समस्त अजित शांति में जगह–जगह शांति की कामना की है।

"तं संति संतिकरं, संतिणं सव्व भया।
संति थुणामिजिणं संति विहेऊ (देवे) मेंमुझे।।

ये शेष दो सूत्र प्रभु के वंदन एंव स्तवन के हैं। गुणानुराग है एवं प्रथम 'वंदित्तु शुद्ध' प्रायश्चित्त है। तीनों ही श्रावक धर्म की पुष्टि हेतु हैं।

परम कृपालु देव
श्रीमद् राजचन्द्र के उद्‌गार

अपनी आत्मा कथा 'मेरे सत्य के प्रयोग' में महात्मा गाँधी ने श्रीमद् राजचन्द को अपना आध्यात्मिक गुरु माना है। मात्र उन्नीस वर्ष की अवस्था में श्रीमद् ने शतावधानी के प्रयोग कर दिखाये थे जिसमें सोलह भाषाओं के सौ पद्य उल्टे सीधे, जुदा जुदा क्रम से, स्मृति में रख पुनः सुना दिये थे। 'जातिस्मरण–ज्ञान' तथा आध्यात्मिक ज्ञान एवं अनुभव से सिद्धहस्त थे। कर्मनिर्जरा की ऐसी अवस्था में पहुँच चुके थे जो भावावस्था केवल्य के समीप थी। मात्र चौंतीस वर्ष में उनका देहावसान हुआ।

निष्पृहता–

वे व्यवसाय से हीरों के व्यापारी थे फिर भी उनका मन, आत्मा में ही रमण करता था। आत्मा ऐश्वर्य के आगे जगत का सोना, चांदी रत्न सब तुच्छ मानते थे। पौदगलिक बड़प्पन को उतनी ही दुर्गति का कारण मानते थे। इसलिए श्रीमद परम कृपालु देव ने कहा "ज्ञानी की शरण में बुद्धि रखकर खेद रहित भाव से निर्भयता से रहना ही तीर्थंकरों की शिक्षा है। किसी भी कारण से क्लेषित होना इस संसार में योग्य नहीं है। एक साधारण सुपारी जैसा माणक, जो प्रत्यक्ष दोष–रहित, पानीदार, धार–दार उत्तम रंग का हो तो जौहरी लोग ऐसा मानते हैं कि उसकी करोड़ों में कीमत आंकी जाये तो भी कम है। अतः आश्चर्य है अनादि दुर्लभ सत्संग जिसमें आत्मा स्थिर रहती है, उसमें लोगों का मन क्यों नहीं लगता? जबकि उपरोक्त प्रकार के माणक में तो

केवल आँख ही स्थिर होती हैं। श्रीमद् के अन्य कुछ महत्वपूर्ण निम्न उद्‌गार हैं।

कर्मप्रभाव–

अपने शुभाशुभ कर्म बन्धन से भव–भ्रमण करना पड़ता है। भोगे बिना धनधाति कर्मों से छुटकारा नहीं है। समस्त जगत चक्रवर्ती–पर्यन्त, अशरण है। अनिच्छा से जो भी भोगना पड़े, वह पूर्व कर्म के सम्बन्ध को यथार्थ सिद्ध करता है। अनाथी मुनि की यौवन में आँख चली गई। कितने लोग अकाल मृत्यु, असाधारण रोग, बाढ, भूकम्प के शिकार हो जाते हैं। सनत्कुमार चक्रवर्ती थे। स्नान करते हुए उसके अनुपम रूप को देखकर देवताओं ने भूरि–भूरि प्रशंसा की। उसने भी गर्वीले स्वर में कहा, "मैं सुसज्जित वेशभूषा में मुकुट पहिन राज–सिंहासन पर बैठूं तब देखना"। देवताओ ने तब भी देखा लेकिन तब वह विवर्ण था। वह रूप नहीं था। वे बोले, 'रोगग्रस्त है।' ब्रह्मदत चक्रवर्ती की आँखे उसके मित्र ने ही शत्रुतावश फोड़ दी। सुभम चक्रवर्ती छः खण्डों को जीतकर भी बारह खण्डों को जीतने चला, और यश पाने के लिए। उसने चर्म–रत्न (नवे आणविक बेडे की तरह) जहाज छोड़ा। उसमें एक हजार देव, सेवक थे। एक–एक ने सोचा, चलो देवांगना से मिल आऊँ पता नहीं कितने वर्षो में छुटकारा होगा। सभी देव–सेवकों के ऐसे विचार होने से चर्मरत्न न संभला, डूब गया। सुभम चक्रवर्ती एवं सारी सेना भी डूब गई। तृष्णा तो बढ़ती जाती है, महादेव हो जावे तब भी।

मनुष्य देह महात्मयः–

चक्रवर्ती और सुअर भोग भोगने में दोनो तुच्छ है। दोनों के शरीर हाड–मांस आदि के हैं और असाता से पराधीन हैं। चक्रवर्ती के जितने वैभव की बहुलता है उतनी उपाधि है। इसलिए चक्रवर्ती जीवन–पर्यन्त मोहाध रहा तो वह बिल्कुल बाजी हार जायेगा। जैन और दूसरे सभी मार्गों में प्रायः जो मनुष्य देह का महात्मय बताया

है यानी मोक्ष के साधनों का कारण भूत होने से चिंतामणि के समान कहा है वह सत्य है परन्तु यदि उसे मोक्ष का साधन किया हो तो, अन्यथा पशु देह जितनी भी उसकी कीमत नहीं ।

नहीं कंषाय उप शांतता नहीं अन्तर वैराग्य।
सरलपणुन मध्यस्थता, ते मति दुर्भाग्या।
दया,शांति, समता, क्षमा, सत्य, त्याग, वैराग्य,
जेमुमुक्षु घट वशे, ते सुमति सुभाग्या।।

कद्राग्रहः–

इन्द्रियों का निग्रह न होना, कुल, धर्म का आग्रह, मान, शलाधा की कामना, अमाध्यस्तता कद्राग्रह है। मनुष्य के लिए निम्न कार्य वर्जित हैं :–

जीव को क्रोध मानादि, बहुत प्रमाद वाली क्रिया से आलस्य, अभिमान, विषय –लोलुपता, औरों को दुख देन से, घोर लालच, निंदा के आश्रव से, किसी की धरोहर हड़पने से, विश्वासघात से, मिथ्या दोषारोपण से, मिलावट के धंधे से, रिश्वत, अदत्तादान एवं हिंसा के व्यापार से बचना चाहिए।

जीवन की अध्यात्मिक उन्नति–गुणस्थानः–

मिथ्यात्व से जहाँ भव–भ्रमण होता है। सम्यग् दर्शन से मोक्ष प्राप्ति होती है। मिथ्यात्व रूपी भैंसा जो अनंतानुबंधी कषाय, क्रोध, मान, माया, लोभ से अनंत–चरित्र के पूले खा गया है, उसे आत्मा रूपी बल से बांधने से वश में किया जा सकता है।

आज भी जीव सत्संग करें, उपदेशानुसार चले, पुरूषार्थ करें तो आत्म ज्ञान हो जावे। निज–स्वरूप जानने का नाम समकित है। जहाँ देह के ऊपर से ममत्व दूर हो गया है, ज्ञान प्राप्त हो गया है, सत्य की चाह है ,वह परिणाम में समकित है। कषाय मंद कर सदाचार का सेवन करना आत्मार्थी होना है। आत्मा अनंत ज्ञानमय है, जितना सद्ज्ञान का स्वाध्याय बढ़े उतना कम हैं। **"जिनवर थई ने जिन आराधे, ते सही जिनवर होवेरे।"**

तृष्णा जैसे बने, कम करनी चाहिये। सत्य बोलने में थोड़े समय प्रारम्भ में नुकसान, प्रथमतः कदाचित हो सकता है, परन्तु पीछे से अनंतगुणों की धारक–आत्मा जो लूटी जा रही है वह लुटती हुई बन्द हो जाती है। सत्य बोलना, धीरे–धीरे सहज हो जाता है। आत्म इच्छा वाला जीव, पैसे को नाक के मैल की तरह त्याग देता है।

कहने में ऐसा आता है कि इस काल में इस क्षेत्र में तेरहवाँ गुणस्थान (संयोगि केवल्य) प्राप्त नहीं होता। परन्तु कहने वाले पहले गुणस्थान, मिथ्यात्व से निकलकर चौथे (सम्यक् दर्शन) तक आवें और वहाँ पुरूषार्थ करके देश विरति, सर्व विरति एवं अप्रमत्त गुण स्थान तक पहुँच जावे तो भी एक बड़ी से बड़ी बात होगी।

समदर्शीः–

काँच और हीरे को एक समझना, सत्श्रुत, असत्श्रुत, सद्‌गुरु एवं असदगुरु दोनों को समान समझना इत्यादि समदर्शिता नहीं। वह तो विवेकशून्यता एवं आत्म मूढता है। समदर्शी सत् को सत् एवं असत् को असत् समझता है। जो जैसा है उसे वैसा ही जानता, मानता है, उसका प्ररूपण करता है, उसमें इष्टानिष्ट बुद्धि नहीं रखता। उसे समदर्शी समझना चाहिए।

उत्तराध्ययनसूत्र में भगवान ने कहा है– उन्माद, आलस्य, कषाय, ये प्रमाद के लक्षण हैं। मनुष्य की आयुकुश के नोक पर पड़ी जल बिन्दु के समान है। अतः एक क्षण भी प्रमाद नहीं करना चाहिए। यह अमूल्य है। यह क्षण चक्रवर्ती भी अधिक नहीं पा सकता।

प्रमाद :–

"पंडिसिद्धाणं करणें, किच्चाणमकरणे"– निषिद्ध वस्तु या कार्य करने, एवं करने योग्य कार्य न करने का नाम प्रमाद है। निर्ग्रंथ प्रवचनानुसार "पंचम काल में दोषयुक्त एवं पापिष्ठ गुरु पूजनीय होंगें। जैसा लूटा जावेगा वैसा प्रजा को लूटेंगे। राज्याधिकारी

अपने अधिकारों से हजार गुणा अभिमान रखेंगे। माता–पिता की अपेक्षा अपनी स्त्री, पुत्र पर प्रेम बहुत अधिक होगा।" परिग्रहधारी यतियों का सम्मान करने से मिथ्यात्व को पोषण मिलता है।

परमकृपालु देव श्रीमद् राजचन्द्र अनुसार निम्न अध्यात्म–शास्त्र विशेष रूप से पठनीय हैं।

1. 'भगवती– आराधना सूत्र', दिगम्बरों का ग्रंथ है। ऐसा एक भी ग्रंथ अच्छी तरह परिणमन करना बहुत है।
2. 'अध्यात्मक कल्पद्रुम' वैराग्य का उत्तम ग्रंथ है। कर्ता मुनिसुन्दरसुरी हैं (श्वेताम्बर 1503 इस्वीं)।
3. 'अध्यात्मसार' कर्ता यशोविजय जी जन्म संवत 1680।
4. 'तत्वार्थ–सूत्र' – रचयिता श्रीउमास्वाति/जैन धर्म का प्रारम्भिक काल ईसा की प्रथम शताब्दी।
5. 'योग–बिन्दु', 'योगदृष्टिसमुच्च्य' (कंठाग्र करने योग्य) एवं 'योग विशिष्ठ', 'षट्दर्शन समुच्चय'– कर्ता श्रीहरिभद्रजी (ईशा की नवीं शताब्दी)।
6. 'शांति सुधारस'– कर्ता विनयविजय जी (1723)।
7. 'सन्मति–तर्क–न्यायवतार श्री महावीर स्वामी'– कर्ता श्री सिद्धसेन दिवाकर।
8. 'श्लांघ्य पुरूष', हेमचद्राचार्य कलिकाल सर्वज्ञ– ।
9. 'आनन्दधन चौबीसी'– कर्ता श्री आनन्द धनजी लगभग अढाई सौ वर्ष पूर्व।

श्रीमद् रत्न राशि हैं, उनसे सत्य, ध्यान एवं परिग्रह का मोह तजने, का आत्म लब्धि यानि कर्म निर्जरा प्राप्त की जा सकती है।

परमश्रद्धेय गुरुदेव श्रीमद् राजेन्द्रसूरी की अन्तिम देशनामय सरलार्थ एवं श्रद्धांजलि

गुरुदेव ने चतुर्विद श्री संघ एवं अन्य जन को अपने जीवन की अंतिम धर्मदेशना देते हुए कहा–

"मुनियों! इस संसार में जो कुछ भी है वह सब उत्पत्ति और फिर व्ययलीला के साथ जुड़ा हुआ है। जीवन के साथ मृत्यु अविच्छिन्न भाव से जुड़ी हुई है। अज्ञानी मृत्यु से बचने का प्रयास करता है। इसी प्रयास में वह सारा जीवन मृत्युभय की पीड़ा भोगते हुए बिता देता है, फिर भी मौत से वह बच नहीं पाता, लेकिन ज्ञानियों के लिए मृत्यु मात्र एक परिवर्तन की बेला है। एक जीर्ण–शीर्ण शरीर को त्यागने का उपक्रम है। जैसे मनुष्य जीर्ण हो जाने वाले वस्त्रों को त्याग कर नये वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार मृत्यु भी जीवन का एक सुखद पर्व है। यंत्र, मंत्र, तंत्र, औषधि इस विधान में परिवर्तन नहीं कर पाये हैं। यह संसार का परम सत्य और नियति का अटल नियम है। लगता है हमारे जीवन की भी संध्या बेला नजदीक आ गई है, जो शीघ्र ही काली रात्रि में परिवर्तित हो जाने वाली है।"

"क्रियोद्धार के पूर्व और बाद में हमने सदैव धर्मशासन की सेवा में अपने आपको लगाए रखा। इस यात्रा में हमें अनुकूलताएँ कम और प्रतिकूलताओं का सामना अधिक करना पड़ा। अनुकूलता यदि थी, तो वह अपनी साधना, उपासना, तप स्वाध्याय

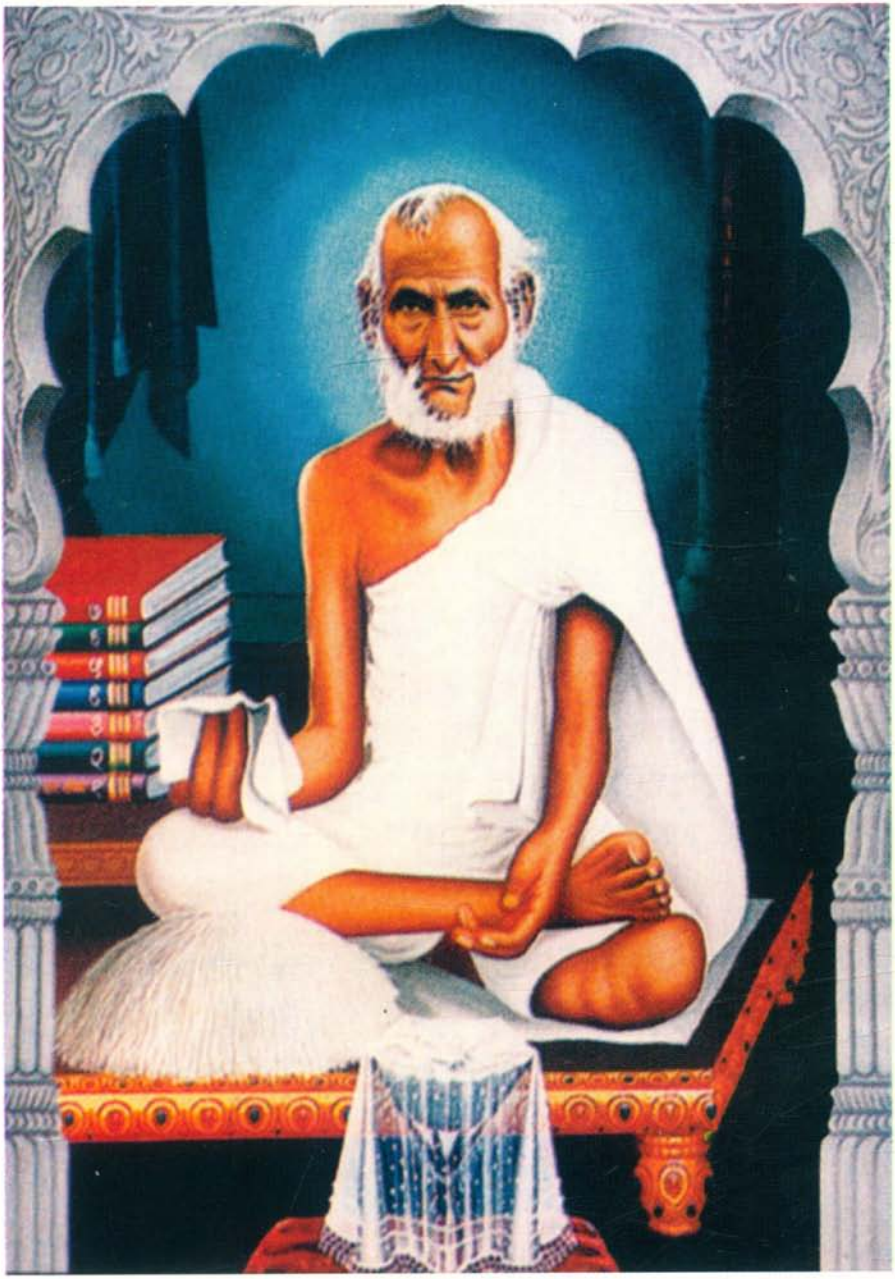

परमश्रदेय गुरूदेव श्रीमद् राजेन्द्रसूरी की अन्तिम देशनामय
सरलार्थ एवं श्रद्धांजलि

आदि के साथ दृढ़ता से साध्वाचार की अनुपालना करना था, जिससे हमें अपने जीवन में प्रकाश, प्रेरणा, साहस व आत्म–सम्बल का आधार मिलता रहा। इसी प्रकार जीवन में आने वाले वैर–विरोध, परीषहों को भी हमने धैर्य और सहिष्णुता की शक्ति से निरस्त किया। यह सनातन नीति भी है। आप लोग भी अपनी जीवन–यात्रा में आने वाले कष्ट, परीषहों को इसी प्रकार सहन करते हुए अपने मार्ग प्रशस्त रखना। जीवन की इस संध्या बेला में हम पूर्णतः स्वः में लीन हो जाना चाहते हैं। गच्छ तथा श्रीसंघ का भार आप लोगों को सौंपकर अब सभी भाँति निश्चित होते हैं।"

"स्वाध्याय, तप, उपासना, साध्वाचार की दृढ़ता से पालना जिन धर्म में निरत रहते हुए लोकमंगल की तथा साधना–आत्मकल्याण की दिशा में प्रयत्नशील बने रहना, साधु–साध्वियों के लिए अत्यावश्यक है । इन पुण्य कार्यों से कभी भी जी मत चुराना, कभी कोई प्रमाद नहीं करना।" किसी भी क्षेत्र में किया गया प्रमाद कल्याणार्थी का सबसे बड़ा शत्रु है। प्रमाद ही बंधन है। प्रमाद के प्रभावश ही मनुष्य अपने जीवन,धन,समय और महान उपलब्धियों से हाथ धो बैठता है। प्रमाद एक तरह का आत्मघात है।"

"किसी भी काल और स्थिति में संकुचित मत बनना। ज्ञान का क्षेत्र बड़ा विशाल है। व्यापक है। तत्व–विचार और धर्म समीक्षा में सदैव सन्तुलित मनोवृत्ति तथा आग्रह के कारण, सीखने, समझने और जानने के मार्ग बन्द हो जाते हैं। इसी प्रकार कम जानकारी रखकर अपने ज्ञान अहंकार से किसी को प्रताड़ित करना अथवा किसी की खिल्ली उड़ाना, उपेक्षा करना भी साध्वाचार के प्रतिकूल है।"

"यथार्थ की स्वीकृति और सत्य का नम्रतायुक्त प्रतिपादन करने में सदैव अग्रसर रहना। यथार्थ और सत्य दोनों ही सार्वभौम सनातन आधार हैं। जिनके सहारे समस्त आचार–विचार, सिद्धान्त, व्यवहार, मर्यादाओं का भवन खड़ा होता है। मेरा कहा हुआ या

मेरा माना हुआ ही सत्य है, ऐसा मानना और कहना अज्ञान है, अहंकार जन्य हठ है। ऐसा व्यक्ति कभी भी तत्व बोध प्राप्त नहीं कर सकता। इतना ही नहीं, अपने समस्त ज्ञान स्त्रोतों का ही मार्ग बंद कर देना है, एक तरह से। सत्य की परीक्षा और यथार्थ के निर्णय के लिए कई आधार भी हो सकते हैं। एक ही प्रकार की पद्धति का आग्रह,हठ है, नये भाव है। जो धर्म–मार्ग के अनुयायियों के लिए सर्वथा अस्वीकार्य माना गया है। तत्व निरूपण में कभी आग्रही मत बनना। एक ही वस्तु विभिन्न स्थितियों, देश, काल, पात्रता के आधार पर विभिन्न भाव वाले अनुभव में आती है। आप लोग जिनेश्वर भगवान द्वारा प्रतिपादित अनेकान्त की भावना को गहराई से समझते हुए, सदैव साम्यभाव और सम्यकत्व का आश्रय लेकर सत्य के तत्व का निरूपण करना।"

"रत्नत्रय ज्ञान–दर्शन–चरित्र का सदैव अवलम्बन लेते रहना। इन्हीं से मानव जीवन में उत्थान और कल्याण का पथ प्रशस्त होता है। रत्नत्रय के आधार को छोड़ देने से पतन तथा विनाश के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिलता। मानव जीवन व्यर्थ चला जाता हैं। जीवन के हर क्षेत्र में आगे बढ़ते समय तद्विषयक परिपूर्ण ज्ञान की उपलब्धि, तदनन्तर उसे आत्मानुभूति का आधार देना और फिर शुद्ध संस्कार के रूप में अपने चारित्र का अंग बना लेना ही मनुष्य की सफलता का आधार बनते हैं।"

"साधु जीवन का मूल आधार उसकी श्रद्धा है। श्रद्धा रहित आचरण और कर्म मात्र दम्भ है, दिखावा है। यही एक तरह का आत्म छल भी है। आत्म प्रवंचना है। मूर्ति–पूजन, मंदिर जाना स्वाध्याय, तप आदि के मूल में यदि श्रद्धा नहीं है, तो इनसे मनुष्य के दम्भ की ही वृद्धि होती है, एक मूर्खतापूर्ण प्रदर्शन की ही रीति–नीति सिद्ध होती है और इससे आत्म कल्याण का कोई आधार नहीं बनता। आप लोग सदैव अपने अन्तर को श्रद्धामय बनाये रखना।"

"संयम की लगाम, जीवन को सदैव निर्मल और पवित्र बनाए रखती है। साधु जीवन की तो यह महत्वपूर्ण आधारशीला है। संयम पर ही सदाचार टिका हुआ है। संयम का बाँध टूट जाने पर मनुष्य रोग, शोक, राग–द्वेष, घृणा कल्मश–कषाय आदि के कीचड़ में फँस जाता है। आत्म कल्याण के पथ से भटक कर पतित हो जाता है।"

"साधु–साध्वियों को चाहिए, जब तक जंघा बल रहे, उन्हें ग्रामानुग्राम, यत्र–तत्र विहार, परिभ्रमण करते रहना चाहिए, बहते पानी और विचरते साधु को काई नही लगती। अकारण ही एक स्थान पर आश्रय रखने से संयम, सदाचार श्रद्धा आदि में शिथिलता पैदा हो जाती है। जिस प्रकार एक स्थान पर संग्रहित जल में काई व जन्तु पैदा हो जाते हैं, उसी प्रकार एक स्थानाश्रयी साधु के जीवन में चारित्र सम्बन्धी विभिन्न विकार पैदा हो जाते हैं, जिनसे वह पतित हो जाता है।"

"विषय कषायों पर काबू पाने के लिए भेद ज्ञान, ध्यान , कामना–निवृति के लिए अतिक्रमण और दोष–निवारण के लिए प्रतिक्रमण सदा करते रहना। संसार के क्षणिक और क्षीण सुखों के लिए जीवन के महान पुरूषार्थ का कभी त्याग मत करना। चारित्र की उज्ज्वलता साधु का भूषण होती है। चारित्र सम्पदा का सदैव संचय करते रहना चाहिए।"

"श्री जिनवाणी के आलोक में समय–समय पर ज्ञानी–भगवन्तों द्वारा दिखाए गए सन्मार्ग पर सदैव चलते रहना, यही मंगल मार्ग है, कल्याण का रास्ता है। जिनेश्वरों के उपदेशों को हृदयंगम कर उनके अनुसार बरतने का सदैव प्रयास करना। जिनवाणी का प्रकाश लोगों तक पहुँचाने में कभी भी प्रमाद मत करना। हजारों वर्षों के अंतराल मे आए तूफान वैर–विरोधों में भी ज्ञानी भगवन्तों द्वारा प्रज्जवलित रही ज्ञान की ज्योति आज भी तुम्हारे लिए अमूल्य धरोहर है, जिसकी रोशनी में तुम अपना पथ प्रशस्त कर सकते हो।"

"जिस समाज और धर्म में उज्ज्वल साहित्य की सत्परम्परा बनी रहती है, वही समाज और धर्म जीवित रह सकते हैं। पिछली सदियों में समय की मार से बड़े–बड़े मठ–मंदिर धर्म स्थान टूटे और बने, कई खण्डहर बन गए, किन्तु सद्–साहित्य की अविच्छिन्न परम्परा ने इस देश के समाज और धर्मों को जीवित जागृत बनाए रखा, हमने अपने जीवन और श्रम का एक बहुत बड़ा अंश इसी ज्ञान ज्योति को जलाये रखने में लगा दिया। तभी अर्द्धमागधी भाषा का वृहद कोष तथा अन्य कई उपयोगी ग्रंथों की रचना संभव हो सकेगी। अथाह ज्ञान समुद्र को मथकर, अनेक आगम – शास्त्रों को निचोड़कर रचा गया वह विपुल साहित्य सदैव तुम्हारा मार्गदर्शन करता रहेगा। इस शरीर का साथ तो निकट भविष्य में छूटने वाला ही है, किन्तु हमारा ज्ञान शरीर सदैव तुम्हारे लिए उपलब्ध रहेगा, जिसके प्रकाश में तुम अपना पथ प्रशस्त कर सकोगे। सदियों से चली आ रही अविच्छिन्न ज्ञान परम्परा को हमारे बाद भी जीवित जागृत बनाए रखना।"

"मृत्यु प्राणियों के लिए एक मंगलमय विधान है। मृत्यु के पथ से ही चलकर प्राणी जरा, आधि, व्याधि आदि से मुक्त होकर आगे नए जीवन, नए लोक में पग धरता हैं। यह देह तो नश्वर है, आत्मा ही अजर–अमर है, अविनाशी है। वही सत्य भी है और सनातन भी। हमारे परलोक प्रयाण पर शोक मत करना। श्रद्धा, संयम, सदाचार का आधार लेकर हमारे शेष कार्यों को आगे बढ़ाना। लोक मंगल की कामना से सदैव जनहित में जुटे रहना। सद्ज्ञान सद्धर्म व सदाचार की उपासना को जीवन का आधार बनाए रखना। भगवान् अरिहन्त प्रभु की वाणी का आलोक तुम्हारा –हमारा सबका कल्याण करें, यही मंगल भावनाएं सदैव बनाए रखना।"

"सारणा–वारना–चोयणा आदि करते हुए, सुशिक्षा देते समय, तुम्हारे जीवन को तेजोमय–सामर्थ्यवान बनाने के प्रयास में

कदाचित् तुम्हारी आत्मा को मुझसे कोई क्लेश पहुँचा तो उसे क्षमा करना।"

हालांकि गुरु भगवन्त के प्रवचन के पश्चात् कहने को कुछ शेष नहीं रहता है लेकिन उनकी वाणी को और दोहराने के लाभ की भावना से पुनः सरल, विनम्र लेखन प्रस्तुत कर रहा हूँ।

गुरु भगवन्त श्रीमद् राजेन्द्र सूरिश्वरजी ने अपनी अंतिम देशना में मुख्य रूप से शास्त्रोक्त (उत्पाद, व्यय, धोव्य, युक्तम, सत–तत्वार्थ सूत्र 5.29) कथानुसार फरमाया है कि जीवन के साथ मृत्यु जुड़ी हुई है जैसा उत्पाद के साथ व्यय जुड़ा है। संसार भावना का उपशम/क्षय एवं आत्मगुणों की वृद्धि जहाँ उत्पाद है वहाँ संसार भावना का उपशम/क्षय व्यय है। यही अनंत गुणों वाली आत्मा शाश्वत है। हमारी पुरानी कोशिकाएँ नष्ट होती हैं और नई हर समय बनती रहती हैं और अंत में शरीर को पुराने वस्त्रों की तरह ही त्यागना अनिवार्य है। अतः हम ऐसा जीवन जीयें कि मृत्यु महोत्सव बने यह ध्रुव सत्य है और गुरुदेव भी उसमें अपवाद नहीं हैं। मृत्यु के पश्चात् कर्मानुसार और अच्छे बुरे भव प्राप्त होते हैं। जब तक धर्म लक्ष्य सम्पूर्ण कर्मक्षय कर मोक्ष प्राप्ति नहीं हो जाती।

गुरुदेव ने अपने अनुभवों के आधार पर बताया कि जीवन में अनुकूलताएँ कम एवं कष्ट, बाधाएँ अधिक मिलती हैं फिर भी साधु एवं श्रावक दोनों ही अपनी साधना, उपासना, स्वाध्याय एवं तप की दृढता पर प्रतिकूलताओं पर काफी हद तक विजय पा सकते है। साधुओं के लिए तो इनका और भी अधिक महत्व है। लोक मंगल का ध्येय भी आत्मकल्याण के द्वारा पूरा किया जा सकता है। अतः जो जीवन मिला है उसमें क्षण मात्र भी प्रमाद न करें। जैसा भगवान महावीर ने फरमाया "समयं गायंमपयाइये।" अमूल्य समय का अधिकतम् लाभ उठाएँ इसके लिए यथार्थ ज्ञान जिससे तत्वों की जानकारी हो , चित्त पर नियंत्रण हो और आत्म शुद्धि हो ऐसा दर्शन युक्त ज्ञान जो सत्य पर आधारित हो उसका

गहन अध्ययन आवश्यक है लेकिन दंभी को ऐसा ज्ञान विनम्रता बिना नहीं मिल सकता। हठ एवं दुराग्रह अवांच्छनीय हैं। देश, काल एवं क्षेत्र की स्थिति के अनुसार धर्मचक्र के सिद्धान्तों, व्यवहारों में भी परिवर्तन होते हैं एवं आवश्यक हैं । अनेकांत दृष्टि से सिद्धान्तों को एंव व्यवहारों को देखना चाहिए।

कर्म बन्धन से बचने के लिए संवर, संयम, तप, प्रमाद–त्याग, व्रत एवं कषायों को कृश यानि पतला करना जरूरी है। साधु, साध्वी शारीरिक शक्ति के रहते भ्रमणशील रहें। ज्यादा एक जगह वास करने से रूके हुए पानी में जैसे जीव जन्तु पड़ जाते हैं वैसे ही साधु के पुरूषार्थ एवं साधना में दखल होता है। मंदिर, उपासना स्थल जहाँ आवश्यक हो वहाँ जाएँ लेकिन उज्ज्वल धर्म साहित्य की वृद्धि करना जिनवाणी आगम का सही अर्थों में अधिक प्रचार, प्रसार जो जैनत्व की अमूल्य धरोहर है उसमे वृद्धि करना श्रावक एवं साधु दोनों के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

स्वयं गुरुदेव ने फरमाया कि इसी ध्येय से उन्होंने अथाह आगम–समुद्र को मथकर 'अभिधान राजेन्द्र कोष' बनाए जो सभी धर्मों, शास्त्रों के अध्ययन करने वालों के लिये मार्गदर्शन करेंगें। "यह ज्ञान शरीर सदैव आपके साथ रहेगा और मार्ग प्रशस्त करेगा।" संक्षेप में मुख्यतः साधु आत्मकल्याण के रत्नत्रय–सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चरित्र, को संजोकर रखें, उसमें वृद्धि विकास करें और उसका लोककल्याण के लिए बिना आग्रह एवं अभिमान के उपयोग करें। इससे समस्त चतुर्विद संघ, साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकाओं का कल्याण होगा।

जन–जन के आराध्य गुरुदेव श्री राजेन्द्रसुरी जी द्वारा विशिष्ट त्रिस्तुतिक संघ की स्थापना का ध्येय था कि छोटे मोटे देवी देवता, भोपे, ओझें, तांत्रिक, पाखण्डियों, यज्ञ, टोने, अन्धविश्वास, जादू, चमत्कार के चक्कर–बाजी से बचें तथा मात्र वीतराग प्रभु की शरण स्वीकारें, जिन्होंने स्वयं मोक्ष वरण किया है वे ही अन्य को भी मोक्ष दिला सकते हैं। "तिन्नाणं तारियाणं, मुत्ताणं मोअगाणां"।

तत्वार्थ सूत्र की विषयवस्तु एवं संदेश

लगभग दो हजार वर्ष पूर्व महान विद्वान आचार्य उमास्वाति जी द्वारा तत्वार्थ सूत्र की रचना की गई। जिसमें मात्र 344 दोहों में समस्त आगम का तत्व रूप में समावेश किया गया है। यह ऐसा ही है जैसा कि समस्त उपनिषदों को दोहन कर गीता में प्रस्तुत किया गया है। यह शुद्ध परिष्कृत रूप में सात मूल तत्व का दिग्दर्शन है। जो जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा एवं मोक्ष तत्व हैं। मूल ग्रंथ संस्कृत में है जो समस्त जैनो के लिए मान्य ग्रंथ है। जिसे श्वेताम्बर, दिगम्बर एवं उनके सभी पंथ स्वीकार करते हैं। प्रथम दोहे से ही स्पष्ट है कि उसकी विषयवस्तु क्या है।

सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्राणि मोक्ष मार्गः—

प्रथम पाठ मे मूलतः आत्म तत्व की विशेषता का वर्णन है। जैसे आत्म को सम्यग्—दर्शन प्राप्त हो सकता है। जीव ही पांच प्रकार के ज्ञान का अधिकारी है। प्रथम दो ज्ञान मति, श्रुति ये अर्जित है या परोक्ष है लेकिन अवधि, मनः पर्याय एवं केवल—ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान है जो सीधे आत्मा की उच्च, उच्चतर एवं उच्चतम अवस्था में प्राप्त हो सकते हैं। यह कर्मों के ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अन्तराय आदि कर्मों के उपशय/क्षय से प्राप्त होते हैं। प्रथम दो ज्ञान सद् या असद् दोनों संभव हैं बिना सत्य पक्ष को ध्यान में रखे इनका स्वेच्छाचारिता पूर्वक अर्थ करने से ये भ्रामक, अज्ञान या मिथ्यात्व स्वरूप भी हो सकते है।

दूसरे पाठ मे आत्मा की पाँच भाव दशाऐं वर्णित हैं। औपशमिक, क्षायिक, मिश्र, औदयिक एवं पारिमाणिक अवस्थाऐं हैं। जैसा इनके अर्थ से स्पष्ट है औपशम कर्मो का उपशम करने पर तत्वों में रूचि रखने पर कषायों को पतला करने पर आत्म शुद्धि करण इस तरह होता है जैसे मिट्टी युक्त पानी में से मिट्टी नीचे जम जाने पर ऊपर स्वच्छ जल रह जाता है। इस प्रकार उपशम भाव मे वृद्धि से सम्यक् दर्शन एवं चारित्र दृढ़ बनता है। क्षायिक भाव सबसे प्रमुख है उसमें आत्मा का दृढ मन से संकल्प होता है कि वह सभी घाति, कर्मो व ज्ञान, दर्शन, चारित्र, मोहनीय एवं अन्तराय कर्मों का सर्वथा क्षय करें एवं केवल ज्ञान प्राप्त कर शेष अघाति कर्म नाम, गोत्र, वेदनीय, आयुष्य को भी समाप्त कर मोक्ष वरण करें। औदयिक वह अवस्था है जिसमें कर्मों का उदय एवं अवधि समाप्ति पर क्षय होता रहता है और साथ–साथ कर्म बंधन का क्रम भी चालू रहता है। पारिणामिक अवस्था में जीव की स्वतः अवस्था परिवर्तित होती है लेकिन अभव्य जीव शुभ भाव में नहीं आ पाते। दीर्घकाल तक अकाम निर्जरा कष्ट सहते–सहते शनैःशनैः आत्म परिणति होती है।

तत्वार्थ का इन दो प्रथम पाठ में मूल संदेश यह है कि आत्मा में अनन्त गुण हैं। शक्ति है जिससे हम अपने अज्ञान, मिथ्यात्व को दूर कर शुद्ध अनेकान्त ज्ञान, चारित्र का विकास करें। गुण स्थान में बताए क्रमानुसार आरोहण एवं अवरोहण हमारे संसारी जीव के लिए संभव है लेकिन लक्ष्य हमारा सत्य–तत्व सम्यग्–दर्शन को प्राप्त कर जिसकी कसौटी प्रशम, संवेग, निर्वेद, आस्तिक्य एवं अनुकम्पा आदि हैं , इस हेतु मिथ्यात्व दूर करें। व्रत धारण कर प्रमाद एवं कषायों पर नियंत्रण एवं त्याग करें जिससे हम केवल अघाति कर्मों को ही बांध सकें।

तीसरा, चौथा पाठ नरक एवं स्वर्ग से सम्बन्धित है। सभी भारतीय दर्शनो में इनका वर्णन है। तत्वार्थ सूत्र में भी इनका उपयुक्त वर्णन है। नरकवासी एवं स्वर्गवासी उपपात् जन्म पाते हैं।

नरकवासी जीव दीर्घ–दीर्घ काल तक असहनीय एवं अनेक प्रकार से दुख दर्द से पीड़ित रहते हैं एवं अपने शरीर को भी अपने ढंग से परिवर्तित करते है लेकिन कुछ शैतान देव उन्हें और परेशान करते हैं। कष्ट अंतहीन सा हो जाता है। सात प्रकार के नरक बताए हैं। चौथे अध्याय में भवन–पतिदेव, व्यंतरदेव ज्योतिषिदेव एवं वैमानिक देव है इनमें और कई भेद बताए गए हैं। मूल बात यह है ज्यों–ज्यों देवता उच्च श्रेणी में आते हैं उनमे घूमने, परिग्रह, शरीर की ऊँचाई, कामना एवं अभिमान आदि सब कम हो जाते हैं। 'गति शीर परिग्रहाभिमनतों हीनाः' (4:22) ।

पांचवे पाठ में षट् द्रव्यों का वर्णन है जो जीव, अजीव धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशस्तिकाय एवं काल हैं। ये सदा से हैं एवं सदा रहेंगे। इनमें परिणमन कुछ परिवर्तन होते हैं लेकिन मूल स्वभाव में सदा अवस्थित हैं अपरिवर्तनीय हैं, 'गुणपर्याय वदद्रव्यम तद्भाव परिणाम।'(5:32)

आधुनिक भौतिक विज्ञान भी सिवाय आत्मा के इन भौतिक द्रव्यों को सृष्टि के प्रारम्भ से मूल द्रव्यों के रूप में लगभग मानता है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय के सम्बन्ध में शुद्ध उसी स्वरूप में न मानते हुए भी मोटे रूप में उन शक्तियों के रूप में मानते हैं जो कि स्थिति तत्व हैं एवं गति तत्व हैं। जो चलने में सहायक हैं।

ब्रह्माण्ड, आकाश, अन्तरिक्ष जो अनंत और विस्तृत हो रहा है उसमें चार प्रतिशत पुद्गल तथा 20 प्रतिशत डार्क मेटर एवं डार्क एनर्जी, 74 प्रतिशत शक्तियाँ मानी गई हैं , जो कि विश्व को व्यापक बनाने एवं चलायमान करने में सहयाक मानी जाती हैं। पुद्गल का भी विश्व पर उपकार है जो न केवल समस्त निहारिकाएँ, तारे, सौरमण्डल एवं पृथ्वी बनते है वरन् हमें शरीर, वाणी, मन और प्राण तक प्रदान करते हैं। सुख–दुख, जन्म, मरण, प्रदान कराते हैं। यही नहीं सारे जीव, समस्त विश्व, एक दूसरे पर आश्रित हो परस्पर एक दूसरे के लिए वे संबल हैं।

शरीर वाडमन प्राणपाना : पुदग्लानां	5:19
सुखदुख जीवति मरणोपग्राहश्च	5:20
परस्परोपग्रहो जीवानाम्	5:21
योग उपयोग जीवेषु	5:44
अर्पितान अर्पिता सिद्धे	5:31

संसारी जीव में शरीर, वाणी, मन, सुख–दुख, जीवन–मरण के साथ उपयोग समता, रमता, उर्ध्वता, ज्ञायकता, चेतन्यता सुखाभास भी है।

पुद्गल में भी विघटन या निर्माण प्रक्रिया उत्पाद, व्यय, ध्रुव संयुक्त रूप से प्रभावी हैं। वही सत् कहा है। अनेकांत पक्ष को उजागर करते हुए 5:31 में कहा है।

जो व्यक्त किया गया है और जो अव्यक्त रह गया है वह मिलकर सत्य है। क्योंकि वस्तु के अनेक–अनेक गुण धर्म हैं। जिसे एक साथ नहीं समझा या समझाया जा सकता है उसमें धैर्य, बौद्धिक एवं आत्मिक विकास मूलतः अहिंसक विचार धारा की परमावश्यकता है।

छठे एवं आठवे अध्याय में कर्म का फल एवं कर्मों का बंधन जो विभिन्न प्रकार के हैं, कर्म बंधन के कारण , उनकी अवधि एवं फल के प्रभाव का वर्णन है। छठे अध्याय में मूल रूप से किस कर्म का क्या फल है, उसका दिग्दर्शन किया गया है, जैसे ज्ञानवरणीय , दर्शनावरणीय कर्म के कारण एवं तदनुसार फल है। दोनों धाति कर्म हैं जो हमें सही दर्शन से एवं ज्ञान से अपने कार्य अनुरूप से वंचित करते हैं। इसी प्रकार साता वेदनीय व आसातावेदनीय के कारण भी दुःख, शोक, ताप, क्रंदन, विलाप ताड़न, वर्जन, आघात आदि होते है। इसके विपरीत साता वेदनीय

में अनुकम्पा भाव, छः काय के जीवों की विराधना न करना, संयमित जीवन, अपवचन सुनकर भी क्रोध न करना आदि हैं।

दर्शन एवं चारित्र मोहनीय कर्म सबसे बड़ा धाति कर्म है। केवली प्रणीत धर्म में दोष ढूंढना, भंयकर कषायों के उदय में बह जाना, धर्म गुरु की निन्दा, दुःखी लोगों का उपहास करना, दुःखी बनना और दुःखी बनाना, ये सब दर्शन मोहनीय व चारित्र मोहनीय के परिणाम हैं। आरम्भ, परिग्रह नरकायु का बंधन कराता है। इसके विपरीत अल्पारम्भ, अल्प परिग्रह, विनम्रता, सरलता, कपट रहित होना, मनुष्य आयु प्रदान कराता है। देवगति के लिए भी सराग–संयम, अकाम निर्जरा, परीषह सहना इत्यादि आधार बनते हैं। नाम कर्म भी शुभ और अशुभ होते हैं, जो अपने भाव परिणाम पर निर्भर हैं , जैसे निंदा करना, नीचा दिखाना एवं इसके विपरीत होने पर शुभ नाम कर्म बंधता है। नीच गोत्र का भी मुख्य कारण दूसरों के गुणों को भी बुरा बताना स्व–प्रशंसा करना आदि हैं । अंत में किसी के दान, लाभ, भोग, उपभोग , उत्साह में अन्तराय डालना अन्तराय कर्म का बंधन कराता है। योग, वक्रता विसंवादनच अशुभ नामस्यः।

सातवां पाठ संवर के बारे में है। किस रूप में हम कर्मों से बचे जैसे सब जीवों से मैत्री भाव, गुणी जनों से प्रमोद भाव, दुःखी प्राणियों के लिए करूणा भाव एवं वृथा अभिमानियों के लिए तटस्थ माध्यस्थ भाव रखना उचित है। व्रत तभी फलदायक होगा जब मन में शल्य, कपट, फल की इच्छा एवं मिथ्यात्व नहीं हो । श्रावक व्रतों में पंच महाव्रत, अहिंसा, सत्य, आचौर्य, अपरिग्रह एवं ब्रह्मचर्य के अलावा तीन गुणव्रत और चार शिक्षावक्रत आते हैं जैसे दिगव्रत, किन्ही दिशाओं की सीमा में आना जाना, या देशव्रत या उसके और छोटे प्रदेश में आवागमन या अनर्थदण्ड विरमण व्रत अर्थात निरर्थक ही ऐसे कार्य जैसे अति–क्रोध, हिंसा–जनक, खेलकूद, कपट व्यवहार , वृथा– प्रलाप आदि हैं। इसके अलावा शिक्षाव्रतों में सामायिक, पौधाधोपवास सीमित चीजों का

उपयोग एवं गुरुजनों का अतिथि संविभाग व्रत का पालन है। जीवन अनुपयोगी एवं मरण सन्निकट दिखें व्रत पालन न हो तब संलेखना, राग–द्वेष रहित बन, धारण करें। सभी महाव्रतों के अन्य पांच–पांच अतिचार भी बताएं हैं, उनसे बचें।

आठवे पाठ का वर्णन संक्षेप में ऊपर दिया जा चुका है।

अत्यन्त महत्वपूर्ण चारित्र मार्ग नवे पाठ में संवर एवं निर्जरा के रूप में दिया है आश्रव का निरोध संवर है। इसी प्रकार इसमें पांच समितियों और तीन गुप्तियों का भी उल्लेख है। जिन्हें अष्ट–प्रवचन–माता भी कहते हैं जैसे ईर्ष्या समिति (चलना फिरना), भाषा–समिति, ऐषणा समिति (ईच्छाओं पर अकुंश), आदान– निक्षेपण–समिति (वस्तु को उठाना रखना) एवं उत्सर्ग यानी (मल मूत्र दूशित पदार्थ विसर्जन) हैं एवं तीन गुप्तियों–मन, वचन, काया के अशुभ योग का निरोध है। सब कार्यों में जाग्रत रहे – यानि सावधानी पूर्वक व्यवहार करें जिससे अहिंसा महाव्रतों आदि का पालन हो।

दस धर्म बताये हैं– उत्तम, क्षमा, मार्दव, आर्जव, शोच, सत्य, संयम,तप, त्याग अकिंचन्य एवं ब्रह्म धर्मो।

मार्दव का अर्थ अभिमान रहित, आर्जव सरल बनना कपट रहित बनना, सत्य में हित मित वचन शामिल है। संयम से तात्पर्य पांचों इन्द्रियों और मन पर अकुंश है। तप छः ब्राह्य व छः अभ्यान्तर है। त्याग से तात्पर्य आवश्यकता से अधिक की लालसा न करना। अनासक्त भाव, अकिंचन का अर्थ देह तक में आशक्ति नहीं इसी प्रकार बारह भावनाएं हैं। जो अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आश्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधि, दुर्लभ एवं धर्म भावना हैं।

इन बारह भावनाओं में संसार की वास्तविक प्रकृति तथा उससे निवारण आदि सम्मिलित हैं अतः संसार एवं कार्यसम्बन्धी राग कम किया जाना धार्मिक क्रिया है। इस प्रकार के परिषह भी

बताए हैं जो हमें संयम–साधना में दृढ़ करते हैं जिनमें मुख्य भूख, प्यास, शीत , उष्ण, नग्नता, कामना–रहित होना, यहाँ तक कि साधना करने पर प्रज्ञा (ज्ञान) न मिलने पर भी निराश न होना वरन् प्रयास न छोड़ें। मन विचलित न करें। बारह प्रकार के तप बहुत महत्वपूर्ण हैं। मूढ दृष्टि से लोग आत्मा के सन्निकट रहना, इस ध्येय को भूल कर लोक–कल्याण से छोटे बड़े उपवास व अन्य प्रकार के तप करते हैं । ब्राह्य तप में अनशन, अनोदरी, वृत्ति, संक्षेप (भिक्षाचर्या), रस त्याग, (घी, दूध, नमक) विविक्त–शैयासन (प्रतिसल्लीनता) काया–क्लेश ये लगभग परिषह सहन जैसा ही है। प्रतिसंलीनता का तात्पर्य भी मात्र एकांतवास नहीं वरन् इन्द्रिय एवं कषायों का विरोधी है। अन्तरंग तप भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं , जिनकी तरफ आम लोगों का ध्यान नहीं जाता जो निम्न हैं – प्रायश्चित कई भेद बताऐं हैं लेकिन सारांश में गलत कार्य का पछतावा एवं इसके लिए खुले दिल से दोष कबूल कर पुनरावृति न करें। विनय भी चार प्रकार के हैं।

ज्ञानदर्शन चारित्रोपचारा

ज्ञान से अनेकांत का बोध होगा एवं इस प्रकार हमारा व्यवहार विनम्र बनेगा।

वैयावृत्य–मन पूर्वक सेवा भाव, स्वाध्याय् (आत्मचितंन), व्युत्सर्ग(त्याग) एवं ध्यान जो चार प्रकार का बताया है।

आर्त्त, रोद्र, धर्म एवं शुक्ल ध्यान है।

आर्त्त से तात्पर्य चिन्ता, भय शोक आदि है तथा क्रोध, वैर, प्रतिशोध ये रोद्र के प्रकार हैं। इनसे कोई कल्याण नहीं होता। धर्म एवं शुक्ल ध्यान और प्रकार के तप इत्यादि मुक्ति मार्ग की ओर ले जाने वाले हैं।

अन्तिम अध्याय मोक्ष तत्व के बारे में है। मोहनीय कर्म का क्षय होने पर ज्ञान, दर्शन, अन्तराय सभी धाति कर्मों का इसी क्रम में क्षय हो जाता है। बंध के कारण मिथ्यात्व अविरति (व्रत न

लेना), प्रमाद (न करने योग्य कार्य करना और करने योग्य कार्य न करना), कषाय एवं योग हैं जिनके कारण मिटने पर जीव केवली हो जाता है एवं केवल काया के योग से क्षणिक कर्म बंधन होता है जो तत्काल समाप्त हो जाता है। आयुष्य पूर्ण होने पर अथवा समुद्घात क्रिया द्वारा अन्य अघाति कर्मों को भी अल्प कर इनके समाप्ति पर जीव सर्वकर्म क्षय कर मोक्ष गति को प्राप्त करता है।

इस प्रकार हमने तत्वार्थ सूत्र की विषयवस्तु को एवं उसके संदेश को समझने एवं प्रस्तुत करने का प्रयास किया जो मानव एवं जीव मात्र का त्राण है। एकता का आधार है। उमास्वाति जी द्वारा फरमाया गया है कि जो व्यक्ति भगवान की इस वाणी का मंथन, प्रचार, प्रसार करेगा, जिन वचन रूपी मोक्ष मार्ग आराधना करने वाला हो या हितरूप श्रुत का उपदेश देने वाला हो वह अपना और पर का दोनों का अनुग्रह–कल्याण करता है। संसार के विभिन्न कष्टों के निवारण का एवं पृथ्वी को स्वर्ग बनाने का यही संदेश है। क्योंकि यही मोक्ष मार्ग है।

MESSAGE OF TATTVĀRTH SUTRA

A great erudite Achārya Umasvati wrote 'Tattvārth Sutra' , the monumental work about two thousands years ago. It is the first jain -sanskrit – treatise, epitomizing entire Agamic i.e. canonical literature which is held as its magnum-opus, condensed in only 344 stanzas, consistently with brevity and clarity. 'Little wonder, it is acceptable to both Digambars and Swetambars with their all schisms .'Pujya-Pad of Digambars wrote a long commentary 'Sarvath-Siddhi' , on it and so did Siddha Sen Gani of Swetambars. Mine is an humble attempt to translate 'Tattvārth ' both in Hindi and English and explain its core for the benefit of persons trying to understand deeper meaning of human life and its endeavor to spiritual progress , as envisioned and lived by the great author-cum-preceptor. He even intended spreading the message to all humanity, through those who tried, imbibing it and in course would earn blessings of the Lord.

Many great persons have realized soul power, and limits of physical and material means. In this clay cast mould of our body, lies the soul also. Without treating

them antithetic , the body is to be tempered by soul – force to make it a fit instrument , to make our body a temple of God, a repository of human values to achieve self realization . With this brief introduction a summary of contents of this work, chapter wise is given below.

This is the goal laid down in the first verse of chapter of 'Tattvārth', 'Samvyag Darsan, Gyān, Charitrāni, Moksha Marg'. It is in the combined pursuit of all three jewels of right faith, right knowledge and conduct, that the path of emancipation lies. Even then right-faith has prime of place -which means to have discerning capacity to grasp truth, sift it from falsehood, a scientific temper to judge objectively, an enlightened – world –view, bordering 'Anekānt', i.e. non absolutism shedding ego, anger, greed and prejudices, humility to appreciate not only 'said' but even 'unsaid'. Things apparently contradictory or opposites may be complementaries as labour and rest, man and women, every atom of magnet with north and south pole, democracy of treasury and opposite benches and so is body and soul. Truth is many faceted. The condition of right -faith entails discipline of eschewing such 'karmas' through resolve and efforts which will spur obedience to learned ones , resulting in imparting clarity of understanding texts including sacred ones . It would prompt eagerness to learn thoroughly if not exhaustively. On further flowering it might intuitively yield extra- sensory, 'Avadhigyān', perception or still higher achievements of knowing simple and complex thoughts- processes and views of others and lastly one becoming omniscient on destruction of all infatuations,

and obstructive karmas to gain unending beneficence and bliss.

Mere knowledge with right faith may lead to even diabolical results, even perversity of out- look and thinking as given in 1:33 following a course exactly opposite to truth and right one.

'Tattvārth' exhorts us to follow right- faith a remarkable quality of soul, 'reason detaire', principles of natural- justice , in short our conscience. It will guide us to avoid pit-falls of senses, running riot or unbridled passions leading a licentious life of depravation, sloth and allurements only. In the light of right faith and knowledge, right conduct will follow suit, cheerfully and willingly, not to be imposed like cut flowers.

Second chapter deals with five stages of soul; the highest one is Kshayik i.e unshakeable determination to annihilate all 'karmas' past and present to achieve self-realization in this life itself. Lesser stage is that of partially destroying and subsidence of karmas, essential even to get higher stage of knowledge by willing obedience and gratefulness to such learned ones. Still lesser degree is that of claiming them as they arise, as if the dust settles in water and making it clean. Fourth stage is that of reacting as per maturing or rising of karmas, driven by that process of suffering consequences and binding of new karmas instinctively in a chain reaction. Last one is dependent on evolution of soul, over its cycles of births and deaths.

The soul is further conditioned by senses it enjoys. One sense being is a virus, or such organism- bacteria,

two sensed as 'worm', three sensed as 'ants' , four sensed as bumble- bee and even five sensed as sub-humans have mostly instinctive life , with a little capacity to move out of conditioned existence. It is the human life alone, offering bright prospects - even of deliverance.

Chapter third and fourth deal with hells and heavens which are part of existence finding place almost in all philosophies. One special characteristic of hells given in this work is not only long- long spells of tortures, maiming and mayhems but even added ones, by fiendish gods [asurs] provoking them to ever fight mutually, they ever attempting to convert body to avoid pain , yet meeting more agony.

Chapter fourth succinctly deals with four classes of Gods [devta; unlike perfect liberated ones] mansion – dwelling, forest dwelling, luminous and empyreans. They all are hierarchical. Some of the mansion –dwelling and forest dwelling are fiendish type, enjoying teasing, tormenting hell -dwellers up to third hell. They include Asukumar – Demon, devil and goblins[4.6], besides twelve types of higher gods Saudharm and Ãshian etc[4.20] . Up to Ãshian all gods are given to fun and frolic and indulge in sex. Beyond that, the Gods are of greater restraint and therefore of greater life - spans, influence, joy, brightness, purity, and lesser inclination to visit other places, or cravings for sex, or possessions, egotism etc[4.21], [4.22]. even if the description given in the Third and Fourth chapter may elude such discovery yet, the earth it self provides enough object lessons of slums- hovels or brim stones of mental agonies; afflicting the mundane existence, and otherwise.

Chapter fifth emphasizes immutability of six substances i.e.1. soul, 2. matter, 3.forces of motion and 4. rest i.e. gravitation, 5. space, 6. and time pervading entire universe [5:2] and [5:3]. Whereas they are in their nature, their modes undergo changes . Origination, cessation and permanence constitute reality [5:29]. Atoms are formed both by splitting and fusion[5:26], earlier sub-atom-proton was considered the lightest particle- light consisted particles or waves which moved at the highest known speed. 'Large – Hadrons – Collider', CERN experiment is being conducted in Europe in 27 kilometers tunnel / colliding protons at a speed of near light bombarding them to create condition of big-bang. Stephen Hawking calling it 'Higgs boson' or 'God's particle'. Such lighter particles now known to modern physics resemble the phenomenon of 'Karma' or Tejas bodies or "karma-varganas" unchecked by anything when they move to next birth along with soul. These weightless particles being named in physics as quark, gluons ,are lighter than proton. Thus the vision held by such spiritual gurus, two thousand and six hundred years ago, especially without equipments was, indeed remarkable. Law of Karma is in escapable. Higgs Boson has been identified recently ;it enables other weightless particles to gather mass, a property resembling that of life and soul.

Thus substance of sixth and eighth lesson is primarily of reaping consequences of what we sow , especially for the motives and means we adopt to act. Mainly there are eight types of different acts of life which constitute bed- rock of karma philosophy, elaborately given in eighth chapter. Even the right faith is both inborn

as well as strengthened by shedding of ignorance [agyan]-false beliefs, superstitions, dogmas, indulgence in pride, prejudices and passions. It is fortified by vows and practice for their riddance. One's right-faith and knowledge suffers due to indulgence in slander, belittling, harbouring jealousy against wise persons. We earn 'Vedniya karma' by causing grief , hurt, agony killing or harming any being. On the contrary to it benefiting, doing kindness, grace, we earn merit reward of happiness in our life . Then there is 'Mohaniya karma'i.e. deluding – karma based on attachments and passions to be eradicated by meditation and introspection. Another equally obstructive karma is 'Antaray'; always retarding our potential to charity, beneficence, service etc. Lesser ones are our body –karma creating complete fit, fine strong and able body or otherwise, so our status depends inversely on whether we indulged in self praise; blowing our horns, even deriding others' merits and thereby inviting lower scale or status in next birth as well.

The chapter eighth is only an elaboration of the sixth one delineating eight types of karmas .It further summarizes the root causes of them and they are as per 8:1 false beliefs , non abstinence, indulgences, innate passions and body and soul acting relatively together called 'yoga' i.e. another four fold division of these eight types are their basic nature, duration, intensity and amount of karm pudgals or matter determining consequences. Further broad subdivisions of these eight types of karmas are given .Most important classification is of four obstructive karmas i.e. clouding the inherent qualities of soul of its right knowledge, faith and conduct

and its potency to act to be its own .Rest four are less harmful to soul power. They cause sensation of pain and pleasure of causing life –spans as per [8:11] or body karma [8:12] or lastly status determining. Lastly is one more division which is of binding auspicious or otherwise karmas[8:26].

The seventh chapter essentially lays down means of restraint to avoid falling prey to eight types of karmas . The five fold vows exist in all eastern philosophies, especially Hindu and Buddhist religions , also called great vows of truth, non violence , non stealing , abstinence and non possession or limiting it largely. Further supplemental to strengthen these great vows have been laid to avoid transgression by oneself or done through others or even by approving acts etc. done by others and so done by one's body, mind or even through speech. One should understand very-very clearly that the violence will be met with violence ultimately causing utter ruin and misery[7:5]. Bible also says 'those who wield sword will be slain by sword'. Man with malice cannot observe vows which are the preserve of pure heart. Whole effort is to live and let live, have peaceful coexistence and preserving ecology. [7:13]. Lastly the ultimate goal of life is given to calmly brave the death when there is no way out at all by piously submitting to equanimity, delving on the permanence of soul and it has potency to be God when it is in pure form.

In the ninth chapter a set of penances have been prescribed to avoid binding of new karmas or to destroy past- bound karmas .They are interalia five 'samities' or do's and three 'gupties'-donts' to be vigilant in walking,

talking, placing or lifting or discharging things i.e. wastes, effluents, in a non –violent way, so are laid down twenty two types of courting- hardships to temper the body to be a fit instrument to serve spiritual- advancement and not run away in face of danger.

To strengthen this process twelve types of introspections of permanent truths have been suggested i,e. body's transient, solitary, shelterless and perishable nature, its filthy contents, goal lying elsewhere, way out is self restraint etc. So are ten attributes of religion i.e. of soul's noble quality of forgiveness, humility , candour, versus cunning practices , truth ,abstinence , purity ,sacrifice etc.[9:6] . Besides this twelve types of penances have been prescribed – fasting, eating frugally than gormandizing on delicious food, limiting frivolous activities, courting physical- hardships, deliberate isolation for concentration , willing obedience to learned and voluntary service to the needy, study of scriptures, introspection and pious meditation. These are effective remedies for purging soul of its impurities for emancipation.

Last tenth chapter is brief one of seven stanzas only . It explains release of the soul earthly thralldom when it has been rid of all four obstructive –karmas, gaining omniscience, in the life time of the conqueror and shedding ultimately four minor karmas- sensation , life – span, body and status also; if necessary by process of 'samudgaht'. Thus , the soul instantaneously reaches the pinnacle i.e. 'Siddhshila' of this 'lok' or cosmos or ever enjoying omniscience, omnipotence and omnibliss.

कर्मबन्धन के कारण एवं क्षय तत्वार्थ के आलोक में

कर्म निवारण ही प्रत्येक मानव के जीवन का चरम लक्ष्य है। निम्न वर्णित आठ कर्म बंधन एवं उनका फल बताया गया है। कर्म बन्धन न्यूनतम हों उसके प्रभाव पद, उपायों को भी तत्वार्थ के छठे पाठ के सुगम एवं प्रभावी दोहों के साथ सम्यग्–ज्ञान, दर्शन, चारित्र के लाभ को प्रस्तुत किया गया है।

मैत्रीप्रमोदकारूण्यमाध्यस्थानि
सत्वगुणाधिकक्लिश्यामाविनेयेषु

–(7.6, तत्वार्थ सूत्र)

अर्थः– सब जीवों से मैत्री भाव, विशेष गुणी जनों से प्रमोद भाव, दुखी प्राणियों के लिये करूणा भाव, एवं वृथाभिमानियों के लिये माध्यस्थ भाव रखना पूर्व व्रतों के पालने में हितकारी होता है। जिससे क्षमा, दया, भाव एवं सहन शक्ति बढ़ती है।

martri pramodkārunya-mādhyāsthayanic satva gunādhi kya klisyamāna vinayesu

(7.6 , Tattavarth Sutra)

MEANING:- Such relfections on fellow feeling for all beings, intimacy and reverence for noble ones, piety and pity for oppressed ones, and indifference for vain and vile persons, would help, observance of earlier vows in

this varied world. It promotes kindness, forgiveness and tolerance, the positive virtues.

जगत काय़ स्वभावौ च संवेगवैराग्यार्थम्

(7.7, तत्वार्थ सूत्र)

अर्थः– संवेग (संसार का भय) और वैराग्य(राग–द्वेष का अभाव) के लिए क्रमशः संसार और शरीर के स्वभाव का चिंतन करें। 'संवेग'' विकास के लिए जगत की एवं स्व की सही प्रकृति एवं कार्यों का चिन्तन जरूरी है। संसार स्वार्थी है, क्षुद्र है, क्षणिक है, इसमें हिंसा, प्रतिहिंसा, वैर, वैमनस्य व्याप्त है। इनसे छुटकारा संवेग भावना है।

Jagat kāyā svabhāvāh ca samvega vairāgyārtham(7.7 , Tattavarth Sutra)

MEANING :- One of the tests of enlightened world view is developing distaste for world and its ways, by reflecting its true nature, which makes evident that the world is selfish, ephemeral, and full of violence and enmity. Delving on true nature of world, one would develop distaste and disgust for one's misdeeds.

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः

(8:1, तत्वार्थ सूत्र)

अर्थः– बन्ध के कारण पाँच हैं–मिथ्यादर्शन, अविरति,प्रमाद, कषाय एवं योग। तत्वों की श्रद्धा के विपरीत अवस्था को, मिथ्यादर्शन कहते हैं ,जो गृहीत एवं अगृहीत होता है। गृहीत यानी नैसर्गिक अर्थात् जो जीव के साथ अनादिकाल से लगा है। कषाय और योग इनमें प्रमुखतम हैं क्योंकि कषाय में अविरति एवं प्रमाद शामिल हैं। मिथ्यादर्शन में (1) एकांतवाद ,(2) सर्वथा विपरीतवाद

,(3) संशयवाद, (4) सबवाद सहीवाद एवं (5) अज्ञेयवाद या नास्तिकवाद आते हैं। कषाय में क्रोध, मान, माया, लोभ एवं हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा एवं स्त्री–वेद, पुरूष–वेद तथा नपुंसक–वेद आते हैं।

mithyādarsanavirati pramāda kasāy yogā bandhahetavah

(8.1 , Tattavarth Sutra)

MEANING :- Karmic bondage is due to five causes (1) deluded view, (2) non abstinence, (3) indulgence, (4) passion and (5) activities of body mind and speech. Perversion in turn is of two types- (1) one acquired through others' precepts and the other one (2) occurring naturally since ages with the soul. The important most further classification of deluded view may be of following five types-(1) Absolutism or non-dualism, (2) preverse doctrines, (3)skepticism, (4) egalitarianism and (5) being heretical or agnostic.

आद्यों ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुष्कनामगोत्रान्तरायाः

(8:5, तत्वार्थ सूत्र)

अर्थः– कर्म आठ प्रकार के हैं– ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र एवं अन्तराय। ज्ञानावरणीय प्रकृति के कर्मबन्धन, ज्ञान का आवरण करते हैं, इसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्म, दर्शन यानि सही दृष्टि आस्था का आवरण करते हैं। जो सुख–दुख का अनुभव कराते हैं वे वेदनीय हैं। जो आत्मा को भ्रमित कर मिथ्यादर्शन एवं मिथ्या आचरण करावें वे मोहनीय हैं। आयुष्य कर्म गति अनुसार–देव, नारक, त्रिर्यन्च,

जिससे उम्र निर्धारित होती है। जिससे शरीर निर्धारित हो जैसे मनुष्य या अन्य जीवायोनि, वह विभिन्न शरीर निर्माण नाम कर्म तथा जिससे उच्च, नीच कुल, गोत्र मिले, वह गोत्र कर्म और अंत में जिससे दान, लाभ, भोग, उपभोग, आत्मशक्ति में बाधा आवे वह अन्तराय कर्म कहलाते हैं। अष्ट प्रवचन माता में पाँच समितियाँ, तीन गुप्तियाँ भी जीवन को जागरूक कर, अशुभ कर्म व अज्ञान से रोकती हैं। सावधानी पूर्वक अपनी एवं जीवों की रक्षा पूर्वक चलें, हित, मित सभ्य वचन बोलें, सामान उठाने एवं रखने में भी वही सावधानी बरतें, इच्छाओं को सीमित करने तथा मलमूत्र एवं समस्त प्रदूषित पदार्थों के उत्सर्जन, विसर्जन, जागृति पूर्वक हों, इसी तरह मन, वचन, काया से एसे कार्यों से बचें जिससे कर्म बन्धन न हो सके।

adyojnāna-darsanāvaran-vedniya-mohaniyā-yuska-nāma- gotranatarāyah

(8.5 , Tattavarth Sutra)

MEANING :- The karmas are of eight kinds (1) obscuring knowledge, (2) obscuring intutition, right inclination, attiudes and faith,(3) Pain and pleasure causing sensation,(4) Deluding vision and conduct,(5)Determining age (6) Determining his body-strucuture, joints, voice and various other bodily functions, (7) His status at birth, class etc., (8) and obstructive one- covering or hindering beneficience, gain, comfort and satisfaction, besides spiritual endeavours.

तत्वार्थ सूत्र के छठे पाठ में निम्न दोहों में उपरोक्त विषयों पर और ज्ञान वर्द्धन किया गया है, जिसका हिन्दी–अंग्रेजी अनुवाद मेरे द्वारा किया गया है।

आस्रव तत्वः

कायवाङ्मनःकर्मयोग :

(6:1, तत्वार्थ सूत्र)

अर्थः— जीव अजीव के बाद अब सात तत्वों में से 'आस्रव तत्व' का निरूपण किया जाता है। शरीर, वचन और मन के द्वारा जो क्रिया होती है उसको योग कहते हैं। इन भेदों के साथ शुभ योग और अशुभ योग, प्रत्येक का पुनः भेद है। हिंसा करना, चोरी करना, कुशील—मैथुन करना, अशुभ कायिक कर्म योग है। पापमय वचन बोलना, मिथ्या—वचन या मर्म—भेदी कथन भी अशुभ वचन योग है। किसी के बारे में दुश्चिंतन करना, उसके उत्तमगुणों में दोष—बताना, ईर्ष्या करना, मन का अशुभ योग है। इसके विपरीत सत्कार्य, सबके कल्याण के चिंतन शुभमनोयोग है।

Kāyāvān manah karmyogah

(6.1 , Tattavarth Sutra)

MEANING :- The action of body, mind and spech is 'yog'. Further divsion of these respective actions can be made into auspicious and inauspicious ones. To commit violence, theft, prohibited sexual acts, are inauspicious actions. Similarly uttering false, sinful, injurious infalmmatory words is unauspicious. So is to think evil of others, being jealous, finding faults, even with the best is also inauspicious. On the contrary good acts, words and thoughts of good of all, results into auspicious Yog or actions.

स आस्रवः

(6:2, तत्वार्थ सूत्र)

अर्थः— कर्मों के आने के द्वार को आस्रव कहते हैं। निम्न तीन प्रकार का योग ही आस्रव है। आत्मा में कर्म आने में योग कारण है।

sa āsravāh

(6.2 , Tattavarth Sutra)

MEANING :- The activity of Karmas which get bound, is called inflow of Karmas.

शुभः पुण्यस्य

(6:3, तत्वार्थ सूत्र)

अर्थः— शुभ योग पुण्य का आस्रव है। अर्हन्त भक्ति, जीवरक्षा, शुभ योग के उदाहरण हैं। जो आत्मा को पवित्र करें उसे पुण्य कहते हैं।

Subhah punyasya

(6.3 , Tattavarth Sutra)

MEANING :- Good action results in inflow of beneficient karmas or Punya.

अशुभःपापस्य

(6:4, तत्वार्थ सूत्र)

अर्थः— अशुभ योग, पाप का आस्रव है। जो आत्मा को अच्छे कार्यों से रोके, दूर करे उसे पाप कहते हैं। हिंसा, चौर्य, असंयम, मर्मवचन, परनिंदा, शत्रुताभाव आदि अशुभ योग के उदाहरण हैं।

Ausbhah pāpasya

(6.4 , Tattavarth Sutra)

MEANING :- Violence, stealing, incontinence, harsh words, backbiting, animosity envy are examples of evil actions of body, speech and mind.

सकषायाकषाययोः सामपरायिकेर्यापथयोः

(6:5, तत्वार्थ सूत्र)

अर्थः-- उपर्युक्त तीनों प्रकार का योग सकषाय और अकषाय दो प्रकार के जीवों को होता है। सकषाय जीवों के सांपरायिक आस्रव होता है जिसकी स्थिति अनियत हैं, दीर्घ अवधि वाली है एवं अकषाय जीवों के ईर्यापथ आस्रव होता है जिसकी स्थिति एक समय की ही होती हैं– यानि अल्पत्म है। कर्मबंध चार प्रकार का है, प्रकृति, प्रदेश, स्थिति एवं अनुभाग बंध ।

Sakasāyākasāyayoh sāmpārayikerya pathyoh

(6.5 , Tattavarth Sutra)

MEANING :- All three types of activities may be performed with passions which would cause karmic bondage that in turn causes soul's long term wordly wandering and those activities which are done without passion would casue only one- time unit bondage called "Irayya Path Karma", binding without passions does not involve Karma binding of duration, except for only one unit of time.

अव्रतकषायेन्द्रियक्रियाःपचचतु पंच पंच विंशतिसंख्याः पूर्वस्य भेदाः

(6:6,तत्वार्थ सूत्र)

अर्थः– अव्रत (5), कषाय (4), इन्द्रियाँ (5) और सम्यक्त्व आदि (25) क्रियाऐं–ये साम्परायिक आस्रव के 39 भेद हैं। हिंसा,

झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह पाँच अव्रत हैं। प्रमाद के योग से किसी जीव के प्राणों की विराधना होती है, वह हिंसा है। कषाय चार प्रकार की होती हैं। इसमें घोर कर्म बन्ध के कारण अंनतानुबंधी कषाय हैं। इन्द्रियों की क्रियाएँ, पाँच प्रकार की हैं, सम्यक्तवादि पच्चीस क्रियाएँ हैं जो कुछ शुभ हैं एवं अन्य अशुभ। इनसे पुण्य और पाप का दीर्घावधिका साम्परायिक आस्रव होता है। जैसे सम्यग् दर्शन पाने में मददगार संयम में मनोवृत्ति, उत्साह, या इसके विपरीत मन, वचन, काया की अशुभ वृत्ति–निंदा, हिंसा, कत्ल एवं इस हेतु शस्त्र निर्माण, क्रोध में कहना, करना, बुरे कर्म का अनुमोदन, समर्थन, रहस्योद्घाटन, सूत्रों का स्वेच्छाचारी अर्थ या उनकी उपेक्षा करना, पर्यावरण को क्षति पहुँचाना, मिथ्यात्व एवं कषायों का पोषण आदि हैं।

Avratkasāyendriyākriyah pancacatuh panca pancavimsati samkhyāh purvasya bhedāh

(6.6 , Tattavarth Sutra)

MEANING :- The gates of inflow of Karma are five senses, five non-vows of violence, lies, stealing, non abstience and possessiveness, four passions of anger, pride, deceit, and greed especially in their most tenacious forms. Rest of binding of Karmas are due to twenty five urges, part of which are auspicious, resulting in binding of long term Punya, but others are inauspicious i.e. sinful. Auspicious ones promote enlightened world view, abstinence, vigour in such acts, opposed to it are evil urges of body, mind and speech, malicious talks, doing violence, murder, forging, weapons of destruction, speaking in anger, approval of evil acts, disclosure of sins of others, arbitrary interpretation of scriptures, disrespect

of them, destructions of ecology, nursing passions and deluded view etc.

तीव्रमंदज्ञाताज्ञातभाववीर्याधिकरणविशेषेभ्यस्तद्विशेषः

(6:7, तत्वार्थ सूत्र)

अर्थ :– तीव्र भाव, मंदभाव, ज्ञातभाव, अज्ञातभाव, वीर्य विशेष और अधिकरण विशेष से आस्रव में हीनाधिकता होती है। आस्रव में न्यूनाधिकता, तीव्रकषायों, जाने–अनजाने में क्रिया होने पर, असावधानी बरतने पर शक्ति एवं मनोभावपूर्वक, प्रयोजनवश (अधिकरण) कार्य करने आदि पर निर्भर है। इन कारणों की भिन्नता से आस्रव या बन्धन में भी अन्तर होता है।

tivra mand jnātājgnātābhāva virya dhikarana visese bhyast dviseasah

(6.7 , Tattavarth Sutra)

MEANING :- Nature of bondage of Karma, owing to inflow of Karma, differs according to the intensity of passions, acting deliberately or through ignorance , without caution, the interest, vigour and purpose with which actions are undertaken, the bondage follows action done personally, through others, or approving it although done by others.

अधिकरणं जीवाजीवाः

(6:8, तत्वार्थ सूत्र)

अर्थः– अधिकरण के दो भेद होते हैं– एक जीव और दूसरा अजीव अर्थात् आस्रव जीव और अजीव दोनों के आस्रव हैं।

Adhikaranam jivā jivāh

(6.8 , Tattavarth Sutra)

MEANING:- The passions of a being are the means for actions that cause long term bondage, external things are body and implements or instruments used for voilence etc. and internal means are his intensity of feeling or attachment towards it.

आद्यं संरम्भसमारम्भारम्भ–

योगकृतकारितानुमतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिचतुश्चैकशः

(6:9, तत्वार्थ सूत्र)

अर्थः– जीवाधिकरण आस्रव, सरंभ, समारम्भ, आरम्भ, मन, वचन, काय रूप तीन योग, कृत कारिक अनुमोदना तथा क्रोधादि चार कषायों की विशेषता से 108 भेद रूप हैं। संरम्भ, समारंभ एवं आरम्भ का अर्थ है इच्छा होना, तैयारी करना एवं क्रिया करना। इन तीनों अवस्थाओं के प्रेरक चार कषाय हैं। तीन करण क्रिया के प्रकार हैं, जैसे स्वयं करना, अन्य से करवाना, या अन्य के किये अच्छे बुरे कार्य की अनुमोदना करना। करण भी मन, वचन एवं काय के सहयोग से प्रकट होते हैं। इस प्रकार सब के गुणा से (3x3x3x4) उपरोक्त 108 भेद बनते हैं।

टिप्पणी– (तत्वार्थ सूत्र उपाध्याय केवल मुनि पृष्ठ 268), नवकारवाली में भी 108 वर्ण होते हैं , प्रायश्चित भी 108 नवकार गिनकर करते हैं।

ādyam samārambha samārambhā rāmbha yog krita a kārit numata kasāy viśe sais tristris tris catuś caikasah

(6:9 Tattavarth Sutra)

MEANING:- The basic urges of actions are-four passions motivated by the one's desires to do some act, for which he then plans and ultimately implements it. Accordingly he would undertake activity of his mind, speech and body. He would then do it either himself or get it done through others, or would approve of it done by others. Binding of auspicious or inauspicious karmas is through above narrated 108 type of activities (4x3x3x3). Navakar mantra too is repeated for 108 times to atone sins.

निर्वर्तनानिक्षेपसंयोगनिसर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परम्

(6:10, तत्वार्थ सूत्र)

अर्थः— अजीवाधिकरण आस्रव दो प्रकार की निर्वर्तना, चार प्रकार का निक्षेप, दो प्रकार का संयोग और तीन प्रकार का निसर्ग इस तरह 11 भेद वाला है। अजीव अधिकरण से आस्रव इस प्रकार होते हैं। निर्वर्तना का अर्थ निर्माण करना है। यह दो प्रकार का है— दुष्चेष्टा या शस्त्र निर्माण से। पाँच प्रकार के शरीर हैं— औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस एवं कार्मण— इनमें से किसी प्रकार के शरीर से कर्म—बन्ध की कुचेष्टा से या दूसरे प्रकार का अधिकरण शस्त्र निर्माण आदि से है जिसका हिंसा करने में प्रयोग होता है। निक्षेप का अर्थ, रखना है। बिना जागरूकता के वस्तु आदि को रखना या मलमूत्र श्लेष्म को सहसा उत्सर्जित करना, भय से या बिना विवेक या उतावल से रखने से या भोजन के पदार्थों को एक दूसरे में मिलाने से अथवा मन में दूषित भाव लाने से या ऐसे वचन बोलने से अभिप्राय है।

nirvartanā niksepa samyoga nisargā dvi caturdvi tribhedāh param

(6.10 Tattavarth Sutra)

MEANING:- The long term bondage of Karma due to nonsentient things, include wrong actions by five types of bodies, gross, protein, conveyance, fiery and karmic or through material objects like weapons etc. used for them, such binding or resulting of Karma means 'Nirvartana' or discharging, excreta, effluents, urine, toxins, inadvertently i.e. inattentively or e.g. placing out of fear, or haste, without looking at the spot, or by mixing different foods, or making mind impure by evil thoughts or bursting out acrimonious words.

तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः

(6:11, तत्वार्थ सूत्र)

अर्थः– ज्ञान और दर्शन के विषय में किये गये प्रदोष, निह्नव, मात्सर्य, अन्तराय, आसादन् और उपघात ये ज्ञानावरण तथा दर्शनावरण कर्म के आस्रव हैं। ज्ञानावरण एवं दर्शनावरण कर्म बन्धन के छः हेतु हैं, जो दोनों के लिए समान हैं। वे हैं (1) प्रदोष का अर्थ है द्वेष भाव, (2) निह्नव का अर्थ है छुपाना, (3) मात्सर्य का अर्थ है ईर्ष्या, (4) अन्तराय का अर्थ है रूकावट, ज्ञानी, ज्ञान एवं ज्ञान के उपकरणों के प्रति ऐसे भाव एवं अविवेक, अपमान या तीव्र निंदा, (5) आसादन– गलत संकेत को सुनने वाला अयोग्यमंद बुद्धि है एवं (6) उपघात–जिनवाणी में झूठे दोष निकालना है। ये सभी ज्ञानावरणीय एवं दर्शनावरणीय के आस्रव हैं। जब ये कारण देखने की क्रिया से सम्बन्धित होते हैं, ये दर्शनावरणीय के कारण बनते हैं। देखने के तुरन्त बाद तत्काल ज्ञान होता हैं अतः दोनो के कारण समान हैं।

Tatpradosa nihnava mātsaryā ntaraya sādano paghātā jnānadarsanāvaranayoh

(6.11, Tattavarth Sutra)

MEANING :- Out of the causes that result in binding of intuition, covering, or knowledge obscuring Karmas, the most fundamental ones, are six and are same for both. It is because the moment one sees or feels a thing one starts knowing about it. When we envy some one's achievements or conceal our knoweldge with motive, that others may not know and feel equal, or feel jealous of the learned person or of means of knowledge scriptures etc. and indulge in slander, libel, contempt and condemnation of scripture or hold the other worthless for hearing; one binds these self- destructive- karmas of knowledge, intuition obscuring karmas.

दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थानान्यस द्वेद्यस्य

(6:12, तत्वार्थ सूत्र)

अर्थः— असातावेदनीय का आस्रव निज पर तथा दोनों के विषय में स्थित दुख, शोक, ताप, आक्रन्दन विलाप, ताड़न, वर्जन आघात से होता है। हालाँकि चिकित्सक या महात्मा या तपस्वी जो स्वयं के या अन्य के हित से कार्य करता है, उनके यह सब बंध नहीं होता है।

dukha sokatāpa krandana vadha paridevanāny ātma parobhay asthanānya sa devedyāsya

(6.12, Tattavarth Sutra)

MEANING:- The pain karma is bound either by causing pain, grief, torment to others, or indluging in cries, injuries, weeping and wailing to onself including harm to vitalities of senses, mind, body and speech or life and breathings or jeopardizing these of others. The surgeon of course does not bind it acting altruistically or ascetics undertaking penances.

भूतव्रत्यनुकम्पा दानं सरागसंयमादियोगः क्षान्तिः शौचमितिसद्वेद्यस्य

(6:13,तत्वार्थ सूत्र)

अर्थः– चारो गतियों के जीवों पर अनुकम्पा भाव रखने, व्रतियों, यति–मुनियों, सर्वत्यागी पुरूषों पर विशेष अनुकम्पा भाव से, दान दक्षिणा करने से, पाँचों इन्द्रियाँ एवं मन पर निग्रह करने से, छः काय के जीवों की विराधना न करने से, बिनाव्रत के भी, संयमित जीवन (अकामनिर्जरा), आसक्तियुक्त संयम, अपवचन सुनकर भी क्रोध न करने से शांति मिलती हैं । निर्दोष व्यवहार, लोभ छोड़ने से जैसे स्नान के द्वारा मैल धोने से (शोच या पवित्र जीवन कहलाता है) इन कार्यों से सातावेदनीय अर्थात सांसारिक सुख शांति मिलते हैं, परिवार एवं समाज का भी कल्याण होता है।

bhutā vratyanukampā dānam sarāga samyamādi yogha ksantih saucamiti sadvedyasya

(6.13, Tattavarth Sutra)

MEANING :- Compassion to all living beings, especially by charity and alms to asceties, undertaking penances, practising forbearance, and not killing or injuring any one of all six major kinds of beings, living a life of abstinence, without even undertaking vows, of observing restraint, even with attachment (unconscious

shedding of karma) or involuntary penances through misguided religious tenets, not being angry with any one even on slanderous insulting words or remarks, by practising self-control in face of provocation by thinking of values of composure; as patience is antidote of anger, so is contentment to greed. All these acts result in or are conducive to inflow of pleasure producing karma, for the individual family and society.

केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनामोहस्य

(6.14, तत्वार्थ सूत्र)

अर्थः— केवली, श्रुत (शास्त्र), संघ (साधु–साध्वी, श्रावक–श्राविका) धर्म और देव का अवर्णवाद करना, दर्शनमोहनीय कर्म का आस्रव है। केवलज्ञानी भगवतों एवं अर्हंत जिनके चार धाती (ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय एवं अन्तराय) कर्म नष्ट हो गये हैं, जिन्होंने मोक्ष–मार्ग का उपदेश दिया है, उसे श्रुत कहते हैं, उस पर गणधरों द्वारा द्वादशांग की रचना की गई है, जो आचारंग आदि बारह हैं। ऐसे ही उपांगों की रचना परम त्यागी एवं ज्ञानी संतों द्वारा की गई है। इन दोनों से मिलकर श्रुत सांगों पांग बनता है। इस प्रकार चतुर्विध संघ, साधु साध्वी एवं श्रावक, श्राविका होते हैं। वे केवली प्ररूपित धर्म, जिनधर्म का पालन करते हैं। जो अहिंसा, संयम, तप प्रधान हैं। देव के चार भेद पूर्व में कहे जा चुके हैं। इन सबका या किसी का अवर्णवाद करना या झूठा कहना, बुरा कहना, दर्शन मोहनीय कर्म का कारण होता है।

kewali sruta sangha dharma devavarna vādo darsaana mohasya

(6.14, Tattavarth Sutra)

MEANING:- The great rishies i.e. asceties, by shedding karmas have gained omniscience i.e. 'kewal' and so are 'Arhats' having destroyed soul-impeding-karmas i.e. knowledge, faith, conduct and soul's potency-obscuring Karmas. They have preached and guided path of emancipation. This knowledge being handed over to their immediate disciples of great learning and sacrifices, was reduced to twelve canonical texts like 'Āchārang' etc called knowledge through 'audition' i.e. 'Srut'. Then vast commentaries were added to it, called 'Upang' by great scholarly saints. Four fold order was formed of male and female saints and male and female laytees. The religion being followed by them is based on non- violence, abstinence and penances. There are four types of Gods and Goddesses as mentioned earlier in Chapter4:1. To malign such faith or scriptures, talk evil of all of them or any one of them, is to commit sin which results in influx of faith, deluding karmas, which will obscure vision and truth or its further discovery.

कषायोदयात्तीव्रात्मपरिणामश्चारित्रमोहस्य

(6.15)

अर्थ– कषायों के उदय से जो आत्मा के तीव्र कुलषित परिणाम होते हैं, उनसे चारित्र मोहनीय कर्म का आस्रव होता है। कषाय–क्रोध, मान, माया, लोभ हैं। उपकषाय– हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरूषवेद एवं नपुंसक वेद हैं। इन उपकषायों की उतेजना से कषाय और भड़कते हैं। उनके कारण सच्चे देव, गुरु, धर्म की निंदा, बुरे व्रत एवं बुरी आदत हैं। दुःखी लोगों का उपहास करने या त्यागी एवं व्रतियों का उपहास, गंदे, खेलकूद, क्रीड़ा में रूचि लेने या विदूषकों की तरह औरों का

विनोद करने, व्रतों से बचने की प्रवृति, अन्य लोगों में असंतोष की भावना भड़काने से, गंदी भीड़ में भाग लेने से, दुखी बनने या अन्य को दुखी बनाने की प्रवृत्ति से, औरों के श्रेष्ठ कार्यों को भी हीन बताने से, अधिक व्यसनी, लालची, झूठा बनने से भी कषायों एवं उपकषायों के तीव्र परिणाम बनते हैं। जो चरित्र मोहनीय कर्म के आस्रव हैं।

Kasāyodayat tivrātma parinams cāritramohasya

(6.15, Tattavarth Sutra)

MEANING:- As a result of rising of acute passions, there is an influx of the conduct- deluding Karmas, to the extent of nursing of gravity of passions , which are anger, pride, deceit, and greed. The sub passions are laughter, relish, envy, grief, fear, abhorrence, feminine, masculine and hermaphroditic sexuality passions which further feed on passions. Main causes of indulging in virulent passionate activity are slander against right faith or enlightended view, God, preceptor and religion, or having bad habits and making bad vows. They may be further elaborated as mocking at persons in distress or at practitioners of vows, deriving pleasure in unwholesome sports or buffoning, disinclination to take vows, or taking positively bad vows. Stirring dissatisfaction in others, associating with vile crowd, feeling grieved, feared and making others dejected, criticising even the praise worthy acts of others, being voluptuous, greedy, untruthful etc.

ब्रह्मारम्भ परिग्रहत्वं च नारकस्यायुषः

(6:16, तत्वार्थ सूत्र)

अर्थः– बहुत आरम्भ एवं बहुत परिग्रह नरक आयु का आस्रव है। बहुत आरम्भ का अर्थ तीव्र या घोर कषाय,क्रोध, मान, माया, लोभ जनित हिंसा, दम्भ, कपट एवं परिग्रह की कृष्ण लेश्या आदि से है। मृत्यु के समय में भी लगातार हिंसा में भाग, अन्य लोगों का धन हड़पने की क्रिया, संसारी चीजों से अत्यधिक लगाव से, नरक गति मिलती है। अत्यधिक परिग्रह, तृष्णा का यह परिणाम है।

Brahiārambha parigrahatva ca nārkāsyāyusah

(6.16, Tattavarth Sutra)

MEANING:- Virulet aggressive indulgence in violence, pride, deceit, and greed as to deprive people of their possessions ,to accumulate one's own riches ,with much attachment and black 'aura' due to such thoughts even at time of death, result in birth in the infernal region.

माया तैर्यग्योनस्य

(6:17, तत्वार्थ सूत्र)

अर्थः– माया यानी छल, कपटपूर्ण आचरण से तिर्यंच आयु का आस्रव बनता है। यह आचरण शब्दों एवं क्रिया से हो सकता है। झूठा उपदेश, अनैतिकता, धोखाधड़ी, नील–कापोत–लेश्या या मृत्यु के समय ऐसे भाव, इसके कारण होते हैं।

māyā tairgyonsaya

(6.17, Tattavarth Sutra)

MEANING :- The deceitful conduct result in birth in animal kind.Such conduct may be through words and or deeds. Preaching false hood, and or practising immorality, forgery or possessing such fiendish thoughts

of blue, grey aura, or at the time of death, result in birth in animal kind.

अल्पारम्भपरिग्रहत्वं स्वभावमार्दवार्जवं च मानुषस्यायुष

(6:18, तत्वार्थ सूत्र)

अर्थः— अल्प आरम्भ, यानी घोर और तीव्र कषायों की अल्पता, अल्प झगड़ालूपन एवं अल्प परिग्रह तथा निराभिमानता, विनम्रता तथा ऋजुता, कपट रहित सरलता, ये मनुष्य आयु के आस्रव हैं।

alpārambha parigrahitvam svabhava māradavārjavām ca mānusayāyusa

(6.18, Tattavarth Sutra)

MEANING: – Attenuated aggression i.e. enfeebled passion of anger (violence), pride, deceit and greed, besides meager possessions ,along with humble nature, guileless-conduct and simplicity or candour, they are the causes of birth in human kind.

निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषाम्

(6:19 , तत्वार्थ सूत्र)

अर्थः— शील और व्रत का अभाव सब गतियों के आस्रव का हेतु है।

nihsilavratatvam ca sarvesam

(6.19, Tattavarth Sutra)

MEANING:- Without practising vows to ward of violence, untruth, stealing, possessions, birth in all the four kinds of lives, including infernals may occur.

सरागसंयमसंयमासंयमाकामनिर्जराबालतपांसि दैवस्य

(6:20, तत्वार्थ सूत्र)

अर्थः– देव गति के आस्रव के हेतु हैं– सराग संयम, संयम–असंयम के साथ साथ, अकामनिर्जरा पराधीनताकष्ट–सहन एवं बालतप, अज्ञानतप जिसका उद्देश्य आत्मशुद्धि नहीं वरन् अन्य भौतिक लाभ हो।

sarāg samyama samyamā samyamā kām nirarāḥ bāltapāmsi daivasya

(6.20, Tattavarth Sutra)

MEANING:- Self restraint with attachment, limited restraint (lay vows), involuntary shedding karmas by forced vows in indigent circumstances and austerities not inspired by purging of soul but for other wordly objects, are causes of gaining heavenly life.

योगवक्रताविसंवादनंचशुभस्य नाम्नः

(6:21 तत्वार्थ सूत्र)

अर्थः– योगों की कुटिलता और विसंवादन अन्यथा प्रवृत्ति एवं ऐसे कार्य–अशुभ नाम कर्म के आस्रव के हेतु हैं। लेकिन इससे भिन्न यानी योगों की सरलता एवं शुभ प्रवृत्ति–शुभनाम, कर्म के हेतु हैं। अशुभनाम कर्म के कारणों में निंदा में रस लेना, अन्य को नीच दिखाना, अधीरता, खोटे तौल–नाप में

लेना आदि हैं। इसके विपरीत, कपट रहित आचरण एवं विचार, नम्रता आदि शुभनाम कर्म के हेतु हैं।

yoga vakratāvisamvādanam ca subhāsya nā mnah

(6.21, Tattavarth Sutra)

MEANING:- Deceitful, crooked thoughts and actions e.g. teaching false spirituality, observing deluded views, indulging in backbiting, malignment, restlessness of mind, using false weights and measures, lead to inauspicious body-karma and vice-versa. Guiless straight forward thoughts and actions done with humility bind auspicious body karma.

विपरीतं शुभस्य

(6.22 , तत्वार्थ सूत्र)

अर्थः— अशुभ से विपरीत यानी योगों की सरलता और अन्यथा प्रवृति का अभाव, शुभनाम कर्म के आस्रव के हेतु हैं।

viparitam subhasya

(6.22, Tattavarth Sutra)

MEANING:- Opposite to inauspicious binding of Karmas ,are pious truthful thoughts and acts explained above.

दर्शनविशुद्धिर्विनयसंपन्नताशीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णं ज्ञानोपयोगसंवेगौ

शक्तितपस्त्यागतपसी, संघसाधुसमाधिवैयावृत्यकरण महदाचार्यबहुश्रुतप्रवचन

भक्तिरावश्यकापरिहाणिमार्गप्रभावना प्रवचनवात्सलत्वमिति तीर्थकृत्त्वस्य

(6.23)

अर्थः— दर्शन की प्रकर्ष विशुद्धि, विनयगुण की पूर्णता, शील एवं व्रतों की सम्पन्नता यानी उनका अतिचार रहित पालन, निरन्तर ज्ञानाभ्यास, संसारिक बंधनों से भय, शक्ति अनुसार दान और तप, शक्ति न छिपाते हुए साधु एवं संघ की समाधि यानी उसके तप की रक्षा करना, शांति बनाये रखना, सेवा अरिहंत भक्ति, आचार्य, बहुश्रत भक्ति, प्रवचन भक्ति, आवश्यकों का पालन प्रभावना एवं प्रवचन वत्सलता। ये सोलह भावनाऐं तीर्थंकर प्रकृति के आस्रव हैं।

darsanavisuddhir vinaysampannatā
silvratesvanticārobhiksnamgyāno
payogsamvegou saktitas

tyagopsai sangh sādhu samādhi vaiyāvratya
karanam ārhad ācārya

bahusruta pravacan bhakti rāvsyaka pari
hānirmārga prabhavanā pravacanavatsal samiti
tirthkratvasya

(6.23, Tattavarth Sutra)

MEANING:- These virutes result in culmination of binding Tirthankar Gotra by (1) getting world view of englightened faith, (2) humility par excellence, (3) abstinence without transgressions, (4) relentless pursuit of right knowledge, (5) dread of wordly existence, (6)charity, (7) without mincing one's capacity undertaking

penances or, (8) helping austerities of monks and layatee or for establishing peace there, (9) serving the ascetic order, (10) ardent worship of enlightened ones 'Arhat' Siddha, (11) devotion to Ācharya or preceptor, (12) and (13) and to learned spiritual ascetics and scriptures, (14) observance of daily compulstory duties as Sāmāyak i.e. equanimity for set period, observance of essential rules, (15) promotion of bonds amongst fellow beings affectionately and (16) attending religions preachings.

परात्मनिंदा प्रशंसे सदसद्गुणाच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य

(6:24, तत्वार्थ सूत्र)

अर्थः— दूसरों के गुणों को छुपाकर मिथ्यारूप से दोष जाहिर कर उनकी निंदा करना, स्वप्रशंसा करना, अपने असद्गुणों को भी अच्छा बताना, ये नीच गोत्र के आस्रव हैं।

paratmanindā prasamse sadasadgunācchādano dbhāvne canicairgotrasya

(6.24, Tattavarth Sutra)

MEANING:- Criticising or maligning others and findings faults with them, while obscuring their merits and on the contrary praising self even for 'ones- demerits', are the causes to court low status.

तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य

(6:25 तत्वार्थ सूत्र)

अर्थः— उपर्युक्त सूत्र से विपरीत भाव यानी स्वनिंदा, परप्रंशसा, दूसरे के असद्गुणों का आच्छादन, अपने सदगुणों का

गोपन, निरभिमानता एवं नम्रता, इनका आस्रव उच्च गोत्र का हेतु है।

tadviparyayo nicair vrtty ānutsekau cottarasya

(6.25, Tattavarth Sutra)

MEANING:- Contrary to the causes mentioned in earlier -aphorism, praise of others, self-criticism and introspection, hiding others shortcomings and ones own merits, behaving humbly i.e. shedding pride and behaving modestly, cause inflow of Karma binding high status

विघ्नकरणमन्तरायस्य

(6.26, तत्वार्थ सूत्र)

अर्थः— किसी के दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य (उत्साह) में अन्तराय, यानी बाधा डालने से अर्थात् इन भावों के आस्रव से अन्तराय कर्म का बंध होता है। यानी उस जीव को भी अपने जीवन में ये ही बाधाएँ भोगनी होती हैं।

vgighnakarnam antarāysya

(6.26, Tattavarth Sutra)

MEANING:- Impeding any one's potency for beneficience, gain, consumption, comforts and vigour, result in inflow of such obstructive Karmas in one's own life.

आचार-व्यवहार

जैन दर्शन एवं हमारी जीवन पद्धति (प्रयोग आधारित)

अंग्रेजी में एक प्रचलित कहावत है, "Proof of Pudding is in eating". धर्म क्या है, जो हमारे व्यवहार में आचरण में आवे, यह केवल शास्त्रों में न रहे। धर्म वह जो धारण किया जावे। इसलिए धर्म जो सही माने में जीवन का मार्गदर्शक हो। हम उसे केवल श्रृद्धा से नहीं वरन् सही माने में भी समझें तथा जिस पर मनः पूर्वक व्यवहार करें। वही हमारे लिए कल्याणकारी धर्म होगा। ऐसा धर्म ही हमें पग–पग पर कर्मो के सतत् बन्धन से शनैःशनैः मुक्ति की ओर बढायेगा। मोक्ष चरम लक्ष्य है, उसके पहले कदम–कदम पर उस पथ पर बढ़ना होगा, तब वह रास्ता आसान होगा। विज्ञान में भी निष्कर्ष के पहले "Observation, experimentation" होता है फिर "Conclusion" होता है; इसलिए तत्वार्थ सूत्र जो जैन दर्शन का सभी सम्प्रदायों के लिए एकमात्र लगभग दो हजार वर्ष पुराना सर्वमान्य प्रामाणिक ग्रंथ है, उसके महान लेखक आचार्य श्री उमास्वातिजी ने प्रथम दोहे में ही लिखा है 'सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्राणि मोक्ष मार्ग है।' जैन दर्शन के तत्वों में जैसे सम्यग्–दर्शन अर्थात् अनेकांत, सत्य, आत्मतत्व, आत्मा को कर्मो के बंधनों से छुड़ाने के उपाय– जैसे संवर यानि अहिंसा, अचौर्य, अपरिग्रह ब्रह्मचर्य हैं उनसे एवं निर्जरा यानी तपादि, दस धर्म क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि अपना कर, उन की विस्तार से जानकारी पाकर उन्हें स्वेच्छा से जीवन में अधिकाधिक अपनाकर, सुखी, संतुष्ट, आनंदित बनें, यही मुक्तिमार्ग है।

सच्चे धर्म की कसौटी के रूप में कहा है, "धम्मो मंगल मुक्किट्ठं, अहिंसा, संयंमो, तवो देवावितं (नमः संति; जस्स धम्मो, सया मणो)"। धर्म वह है जो सर्वजन हिताय, श्रेष्ठ मंगल हो। ऐसा वह तभी हो सकता है जब वह अहिंसा यानी प्राणी–मात्र की अहिंसा पर, हर संभव रूप से आधरित हो, मन वचन काया से स्वयं करने से, दूसरे से करवाने से एवं ऐसे ही रूप में कार्य अनुमोदन से होती है। ऐसे ही धर्म में, दस धर्म आ जाते हैं जो उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव (कपट रहित नितांत सरल), सत्य, शौच (लोभ रहित), संयम (परिग्रह, विषय–विकार पर नियंत्रण), तप जैसे मिताहार, सेवा, स्वाध्याय आदि त्याग, नम्रता, बोध इत्यादि हो। इसी तरह उत्तम बारह भावनाओं को स्मरण करें जैसे जीवन की क्षणभंगुरता, अशुचिता, अशरणता, संसार की स्वार्थ--लोलुपता, ज्ञान की अल्पता, अतः दर्शन, ज्ञान एवं चारित्र की महत्ता के भावों का सतत् स्मरण करें, यही शुभ ध्यान है।

आत्म तत्व की ओर अग्रसर होने के लिए पूजा, वंदन, सामायिक, प्रतिक्रमण, पौषध, बाह्यय साधन अवश्य उपयोगी हैं। आलम्बन है , लेकिन ध्यैय आत्म शुद्धि है, सद्ज्ञान, दर्शन का विस्तार है , आत्म तत्व की पुष्टि है, इनके बिना इसका महत्व नहीं है, केवल लेबल न बन जाए। श्री बनारसीदास जैन दर्शन के उत्तम चिंतक हुये हैं। उन्होंने सारांश में आत्म–तत्व के निम्न परख बिन्दु (कसौटी) दिये हैं – समता, रमता, उर्ध्वता, ज्ञायकता, उद्भाष, वेदकता, चेतन्यता, ये हैं, जीव विलास। समभाव रखें, सुख, दुख में, धनी, निर्धन होने में, मान अपमान आदि आदि में। शुभभाव में रमण, उच्च– विचार, सत्य की खोज एवं चाह, ज्ञान की ललक, जड़ता से, विषयों से, रूढ़ियों से, पापों से दूरी , ये आत्मा के लक्षण हैं। इनकी वृद्धि का एक सरल उपाय, सामायिक एवं ध्यान साधना है। दूसरे शब्दों में एण्डोक्रीन (ductless), नाली–रहित ग्रंथियों या शरीर में स्थान विशेष पर

चक्र है, उन पर उत्तम शुभ–भाव, अध्यवसाय का ध्यान करें एवं उन भावों को भी लक्षित करें।

विनोबा भावे ने गीता प्रवचन में लिखा है , शिवलिंग पर तांबे के पात्र से बूंद–बूंद गिरती है। उसका तात्पर्य है हमारे जीवन में भी एक–एक शुद्ध संस्कार आवें और हम निर्मल बनें। कोई बुराई न आवे, जागरूक रहें। ध्यान मुद्रा में इन चक्रों पर उच्च विचारों, भावों से हमारा मन संस्कारित हो। जैसे सर्वप्रथम हम मेरूदण्ड सीधाकर पद्मासन या सुखासन पालथी लगाकर बैठ जावें अपनी गुदा को संकुचित कर भीतर खींचते हुए ध्यान करें, मैं उर्ध्वयात्रा शुद्ध उच्च विचारों में वृद्धि कर रहा हूँ। मेरी ऐसी यात्रा शुरू हुई है। मैं सत्य, संयम, अहिंसा की ओर बढ़ रहा हूँ । यह हमारा शक्ति केन्द्र (यहा हमारे गोनाड एवं Testicles हैं)। इन भावों से कुछ मिनटों बाद ध्यान को आगे बढ़ाते हुए हम अपनी किडनी के ऊपर दो एड्रिनल की ग्रंथियों पर ध्यान केन्द्रित करावें, वे हमें भय की अवस्था में निर्भय बनने का संकेत देती हैं। निर्भय बनकर हम पाप रहित बनें। अभय की जीवन में साधना करें। पाप रहित सत्यवान आत्मा, अभय होती है। यह हमारा तेजस–केन्द्र है। फिर हम थाईमस या आस पास हृदय कमल पर ध्यान करें जो शुद्ध हो, निर्मल हो, करूणामय हो, संवेदनशील निश्छल हो।

ध्यान को आगे बढ़ाते हुए गर्दन एवं आस–पास थाइराइड एवं पैराथाराइड ग्रंथियां जो विशुद्धि केन्द्र हैं , उन पर ध्यान करें, मूलतः कि मैं स्पष्ट कथन करूँ, संदेहरहित वचन बोलू, मीठा बोलूं, किसी को मर्माघात न करूँ, क्रोध न करूँ, अपशब्द न कहूँ। फिर ध्यान को आगे बढ़ाते ललाट पर दर्शन केन्द्र यानी सम्यग्–दर्शन के भावों पर ध्यान करूँ। मेरा जो है वही सत्य नहीं, वरन् सत्य मेरा है। सत्य के अनेक रूप हैं। अक्सर विरोधी दिखने वाले पहलू या धर्म, सभी सत्य के अंग हैं, पूरक हैं। एकान्त मत नहीं उसके अनेकांत रूप हैं। स्त्री, पुरूष, दिन, रात प्रारम्भ एवं अंत, अंहिसा, अभय, दृढ़ता, मृदुता, धैर्य, श्रम, विश्राम, गति, स्थिति

इत्यादि–इत्यादि। यही हमारी हाईपोथेलेमस एवं पिनियल ग्रंथियाँ हैं। अतः एकान्त का आग्रह या दुराग्रह सर्वथा नहीं।

इसी क्रम में फिर हम पिच्युटरी ग्रंथियाँ ज्ञान केन्द्र पर ध्यान बढ़ाते हैं। हम केवल श्रद्धा तक सीमित न रहें लेकिन ज्ञान से उसे प्रमाणित करें, पुष्ट करें, जैसे विज्ञान, प्रयोग से उस धारणा या सिद्धान्त को पुष्ट करता है उसी तरह गहरे ज्ञान से हमारी श्रद्धा और मजबूत होगी। सभी वनस्पति एवं जीव–प्राणी प्रकृति के अभिन्न अंग हैं, शांतिपूर्ण सहअस्तित्व में ही विश्व का कल्याण है। पर्यावरण के गहरे अध्ययन ने अहिंसा के इस सिद्धान्त को प्रमाणित कर दिखाया है। इसी क्रम में शीर्ष पर सहस्रार चक्र–बिन्दु पर ध्यान का अर्थ है, इस दर्शन के साथ–साथ हमारा आचरण भी उतना ही अच्छा हो हम नैतिक, स्वेच्छा से बनें।

बाह्य पूजा, तिलक, छापों, से ज्यादा हमारी प्रवृत्तियाँ, समभाव में, शांति में, दया, क्षमा, सत्य, त्याग, वीतराग, भाव में रमण करें। जगत का सत्य–निवृति की ओर हम बढ़ें , इन गुणों से हर्षित होकर सहज–भाव से निराभिमान होकर, इन्हें अपनावें "परस्परोपग्रहों जीवानाम।" परस्पर सहयोग तत्परता से करें, मनुष्य जन्म का यही मधुर फल है। इससे इन गुणों को प्राप्त करें। हमारी पुरूषार्थ मय गुण ग्रहण की जीवन पद्धति ही जैन दर्शन का सार है। जहाँ कई जीवों में ओध–संज्ञा होती है, आने वाले संकट को भांप कर जैसे भुकम्प , तूफान, सूनामी, आकुल–व्याकूल हो प्राण रक्षा हेतु भागनें लगते हैं वहाँ मनुष्य में लोक संज्ञा होती है । वह पूर्वजों के ज्ञान, कला, हुनर की निधि को प्राप्त कर पूवर्जों के कंधों पर चढ़कर उसे और आगे बढ़ाता है।

अतः जहाँ अन्य जीव मात्र हजारों, वर्षों में या आदि काल से वैसे ही हैं, मनुष्य उसमें सतत विकास कर रहा है। यद्यपि पाया गया है कि मनुष्य चांद पर पहुंच गया है लेकिन अभी धरती पर प्रेम से रहना नहीं सीख सका है। जैन दर्शन से प्रेरित जीवन पद्धति से स्वयं जैन भी और अधिक सीखें औरों के लिए भी नमूना बनें।

जैन साहित्य का विश्व पर प्रभाव

संत कबीर के सीधे साधे दोहों के गूढ़ तत्व–ज्ञान पर आधारित गीतांजलि पर गुरुवर श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर को 'नोबल विश्व पुरस्कार' मिला। गीता जो उपनिषद युग की देन है उसका समस्त विश्व पर प्रभाव है। जैन दर्शन भी कर्मकाण्ड पुरोहितवाद से परे शुद्ध आत्म धर्म है। वैदिक धर्म के भी पूर्व से भारत में श्रमण धर्म की परम्परा चल रही थी जिसे उपनिषदों में एवं प्रभु महावीर की वाणी में पुनरुत्थान मिला। ऑल्डस हक्सले ने इसे पेरिनियल फिलोसोफी यानी सतत् धर्म दर्शन कहा है। मेक्समूलर इससे अत्यन्त प्रभावित थे। उन्होंने पूर्व का पवित्र दर्शन नामक ग्रंथ इस पर लिखा है।

सर्वज्ञ वीतराग एवं केवल ज्ञानियों द्वारा जैन धर्म दर्शन का प्रतिपादन किया गया है। प्रभु महावीर के गणधरों ने श्रुति एवं स्मृति की परम्परा पर आगम् जैन दर्शन साहित्य की विपुल रचना की। आचार्य सुधर्मा ने महावीर के समय में ही आचारंग की रचना की। समस्त आगम महावीर के लगभग 980 वर्ष पश्चात् देवर्द्धि क्षमा श्रमण के नेतृत्व में संकलित रचयित लिपिबद्ध किये गये। बाद के महान आचार्यों ने भी इन पर महत्वपूर्ण भास्य, चूर्णियाँ, टीकाएँ लिखीं, उनका संक्षिप्त दिग्दर्शन इस छोटे लेख में गागर में सागर के समान प्रयास होगा।

आगम का अर्थ है– 'जानना '– जो आत्मा का स्वभाव है। मूल 11 आगम उपलब्ध हैं। बारहवां आगम 'दृष्टिवाद' लुप्त है।

उनके उपांग मूल, सूत्र, छेद, चूर्णिकाएं आदि मिलाकर कुल 46–47 आगम माने जाते हैं।

मूल आदि आगम–ग्रंथ आचारंग है, जिसमें प्रभु की वाणी प्रचुर मात्रा में मूलतः उपलब्ध होना पाया जाता है । प्रारम्भ इस प्रकार है–(अनुवाद में),"कइयों को विदित नहीं मैं कौन था? कहाँ से आया हूँ ?क्या मेरा पुनर्जन्म होगा..... ? जिन्हें यह ज्ञात है , वह परिज्ञात कर्त्ता मुनि कहलाते हैं।"

वर्तमान विश्वस्तर के वैज्ञानिक श्रुदिंगर ने भी कहा है कि आज का प्रश्न है, "मैं कौन हूँ"? महावीर ने भी तत्समय यही प्रश्न किया एवं समाधान दिया जो विज्ञान के पास नहीं है।

आचारंग के कुछ और उद्धरण देखें– "वनस्पति काय भी उत्पत्तिशील है। जैसे मनुष्य शरीर आहार करता है वैसे वनस्पति भी आहार करती है।" (आज विज्ञान हमें बताता है कि पेड़ अपने पत्तों से आहार बनाते हैं उसका भोजन करते हैं।) "सत्यं परेण पर नत्थि अहिंसा परेणपरं । शस्त्र एक दूसरे से बढ़कर है लेकिन अहिंसा से बढ़कर कोई शस्त्र नहीं है।" अन्य आगमों में प्रश्न व्याकरण एवं भगवती में अहिंसा का विशद वर्णन है। अहिंसा के उपकार के अनेक नाम हैं। भगवती अहिंसा में संयुक्त है–"क्षमता", "समाधि", "क्रांति", "तृप्ति", "महति", "धृति", "ऋद्धि" आदि। भयभीत प्राणियों के लिए अहिंसा शरणाभूत है। नीड है। अहिंसा भूखों के लिए भोजन है। यह अहिंसा अवधि–ज्ञानियों, यहाँ तक कि केवल ज्ञानियों द्वारा ज्ञात की गई है। चतुर्दश पूर्व श्रुतधारी मुनियों ने जिसका अध्ययन किया है। सभी लब्धि धारियों ने इसे प्रतिपादित किया है। जगत का त्राण है। भगवान प्राणी मात्र की करूणा से प्रेरित है। इसलिए धाति कर्म क्षय हो जाने के उपरान्त भी केवल ज्ञान के बाद भी लोकहित हेतु उपदेश देते हैं।

इसलिए आज शाकाहार, निशस्त्रीकरण, मानवाता के लिए सबसे उपयोगी सिद्धान्त बन गये हैं। शाकाहार के लिए कहा जाता है कि यदि सात दिन में एक बार भी सामिषाहारी मांसाहार छोड़ दे तो विश्व से अकाल मौत समाप्त हो जाये। क्योंकि आठ किलो अनाज खिलाकर जानवरों से एक किलो मांस पाते हैं। हालांकि सभी धर्मों में किसी न किसी रूप में अहिंसा को स्थान दिया है लेकिन जैन दर्शन साहित्य में अहिंसा परमोधर्म है। विश्व का यही त्राण है। मार्टिन लूथर किंग , महात्मा गांधी एवं नेलसन मण्डेला पर अहिंसक रूप से राजनैतिक आन्दोलन करने का पूरा प्रभाव पड़ा है। संयुक्त राष्ट्र ने भी इन्हें बहुत हद तक अपनाया है।

'उत्तराध्ययन' एवं दशवैकालिक भी आगमों के मूल एवं महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं। दशवैकालिक में समस्त जैन दर्शन का अत्यन्त संक्षिप्तीकरण कर दिया है। एक ही दोहा प्रस्तुत है जिससे विदित होगा कि कहीं कुछ भी ऐसा नहीं जिससे लगभग ढाई हजार वर्ष पश्चात् भी असहमति की जा सके।

धम्मो मंगल मुक्किट्ठं अहिंसा संयमोतवो ।
देवावितं नमंसति जस्स धम्मो सयामणो।।

वहीं धर्म श्रेष्ठ मंगल हैं जिसमें अहिंसा, संयम और तप है। ऐसे मनुष्य को देवता भी नमन करते हैं।

विपाक सूत्र में कर्मों का ऐसा निश्चित्त एवं हृदय स्पर्शी प्रभाव, रोचक, मार्मिक कथानकों से विद्वता पूर्वक दिखाया है कि कोई चित्रपट पर भी ऐसा न्याय–प्रभाव पैदा करने में शायद ही सक्षम हो।

ऐसे विशिष्ट अंग उपांग आदि साहित्य पुराण पर बाद के महान आचार्यों ने जो और व्याख्याऐं की हैं , महान ग्रंथ लिखे हैं, एक झलक उनकी देना जरूरी है।

ईसा की लगभग दूसरी सदी में आचार्य कुंदकुंद द्वारा महान रचना समयसार की गई। यह आत्मा पर लगभग अद्वितीय ग्रंथ है। पंडित हुक्मचंद भारिल ने अपनी अमेरीका यात्रा के संस्मरण में लिखा है कि अमेरिका में "समयासार" जानने में अत्यधिक रूचि है। उस पर बहुत प्रश्न किये जाते हैं।

तत्वार्थ सूत्र – जैनों की बाईबिल समझी जाती हैं, जो उमास्वाति की महान रचना है।

आचार्य सिद्ध सेन द्वारा स्याद्वाद– अनेकांत वाद पर सन्मति तर्क लिखा है। समंत भद्र सूरी ने भी 'आप्त–मीमांसा' लिखी है तथा आचार्य हरिभद्र सूरी ने भी योग दृश्टि समुच्चय लिखा है। ये सब अनेकांतवाद को सुस्पष्ट करते है। योग, प्रेक्षाध्यान, विपश्यना भी लोकप्रिय हो रहे हैं। विश्व के जैन दर्शन के अधिकारी लेखकों ने अहिंसा के समान ही स्याद्वाद का प्रभाव माना है।

डॉक्टर हर्मन जेकोबी जो जैन धर्म –दिवाकर पदवी प्राप्त हैं, उन्होंने स्याद्वाद के लिए कहा है "स्याद्वाद से समस्त सत्य विचारों का द्वार खुल जाता है।" डॉक्टर डी.एस. कोठारी जी ने स्याद्वाद को "समंतभद्र सर्वोदय तीर्थ" कहा है। डॉक्टर थामस इंग्लैण्ड वासी ने कहा है, "न्याय शास्त्र में जैन न्याय दर्शन अति उच्च है और स्याद्वाद का स्थान अति गंभीर है।" वस्तुओं की भिन्न परिस्थितियों पर यह बहुत सुन्दर प्रकाश डालता है, जैसे महावीर से गौतम ने पूछा – "क्या जीव नित्य है"? महावीर ने कहा, "जीव नित्य भी है, अनित्य भी। कर्म रूप से मुक्त जीव नित्य है अन्यथा अनित्य"।

आचार्य हेमचन्द्र जिन्होंने लाखों पद जैन साहित्य हेतु लिखे– उन्होंने अनन्त धर्मात्मक संत कहा है। अतः एकान्त आस्ति या एकान्त नास्ति उचित नहीं।

एक अमेरिकी विश्रुति दार्शनिक ने यहाँ तक कहा है, "विश्व शांति स्थापना के लिए जैनों की अहिंसा की अपेक्षा, स्याद्वाद का अत्यधिक प्रचार करना उचित है"।

'वास्तव में स्याद्वाद में सत्य एवं अहिंसा दोनों ही शामिल हैं। तटस्थता पूर्वक पूर्वाग्रहों से रहित विनम्र दृष्टि का नाम स्याद्वाद है। केवल उच्च कोटि के जैन साहित्य की सूची भी अपार है। स्याद्वाद शैली है, अनेकान्त धर्म है। विमलसूरी की रचना 'पऊम चरित्र'—पद्मचरित्र जो श्री राम के चरित्र के बारे में है, उसके लिए महापंडित राहुल संकृत्यान ने कहा है— "वह रचना काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से तुलसीकृत रामायण से कहीं आगे है। कोमलता एवं मधुरता के आगे यह रचना अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं रखती।" यह वाल्मीकि रामायण के लगभग पुरानी है।

'षट्खण्डागम'; उन मुनि के शिष्यों द्वारा रचा गया, जिन मुनियों को पूर्वों का ज्ञान भी प्राप्त होना बताया गया है। जो दृष्टिवाद के साथ लुप्त होना, श्वेताम्बर मानते हैं। चामुण्डराय के गुरु श्री नेमीचन्द सूरी द्वारा कर्मवाद पर महान ग्रंथ गौम्मट सार लिखा गया। श्री हेमचन्द्राचार्य जो कालिकाल सर्वज्ञ माने जाते थे उनके द्वारा त्रिशष्ठीश्लाका पुरूष अन्य ग्रंथों के अलावा लिखा गया। वर्तमान युग में भी जयाचार्य द्वारा लाखों पदों की रचना की गई एवं चिन्मय चिराग श्री राजेन्द्र सूरीश्वरजी द्वारा सप्त खण्ड में दो लाख प्राकृत पद जो विविध ग्रंथों में थे उनसे अभिधान—राजेन्द्र कोष की रचना की गयी। उक्त विश्व कोष जैन दर्शन का आज सभी पंथों के लिए एवं मनीषियों, विद्वजनों के लिए आधार एवं प्राथमिक ग्रंथ है।

यह विडम्बना है कि जैन दर्शन साहित्य जो रत्न भण्डार हैं, वह तलघरों में, बन्द बस्तों में, शताब्दियों तक, सीमित उपयोग, के साथ पड़ा रहा। पाश्चात्य विद्वानों, वैज्ञानिकों एंव पूर्वीय शोधकर्ताओं द्वारा भी इस पर अभी बहुत कुछ कार्य किया जाना बाकि है, अन्यथा विश्व की कई ज्वलन्त समस्याओं का निराकरण

संभव होता। सारे ब्रह्माण्ड में मात्र पृथ्वी पर अब तक की जानकारी के अनुसार जीवन की लौ है । विज्ञान के वरदान में भी भयंकर अणु आयुधों का प्रलयंकारी ढेर है। अतः जैन दर्शन उपयोगी बने।

ऑल्डस हक्सले ने ठीक ही कहा है कि–

विश्व शांति की शर्तों में निःशस्त्रीकरण, साम्राज्यवाद का निष्कासन तथा अहिंसा की सर्वमान्यता जीवन के हर क्षेत्र में आवश्यक है। मैं जोड़ना चाहूँगा कि धार्मिक कट्टरवाद, अधिनायकवाद , विरोधी विचार धारा का अंत करने वाले साम्यवाद के निराकरण भी अनेकांत जैन दर्शन से बहुत संभव है।

जैन साहित्य के अधिकाधिक प्रचार एवं प्रसार से ही उक्त लक्ष्य संभव है। पश्चिम में भी शाकाहार का भी क्षेत्र बढ़ रहा है। एच.जी. वैल्स ने ठीक ही कहा है "शाकाहारी बनना सभ्य बनना है।"

गुणानुराग

सद्‌गुणों की महिमा करना, ऐसे व्यक्तियों का बहुमान करना एवं अनुशीलन करना गुणानुराग है । यह इस कलियुग की महत्ती आवश्यकता है, जिससे घोर स्वार्थ–परता, अनाचार, आतंकवाद, पर्यावरण, विनाश, सर्व–संहारक अणु बमों आदि से इस विश्व को त्राण मिल सके।

बाल–मंदिर की पूर्व संस्था कुशलाश्रम में प्रातः ईश प्रार्थना में हम लोग 'मेरी भावना' गाया करते थे , जिसके कुछ अंश आज भी हृदय पटल पर स्मृति रूप में उभर जाते हैं।

"गुणी जनों को देख हृदय में मेरे प्रेम उमड़ आवे,
बने जहाँ तक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे।
होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे,
गुण–ग्रहण का भाव रहे नित् दृष्टि न दोषों पर जावे।
अथवा कोई कैसा ही भय या लालच देने आवे,
तो भी न्याय मार्ग से मेरा अविचल पथ, डिगने ना पाये।"

इससे पूर्व भी प्राथमिक शाला के प्रधानाध्यापक जी ने हमें प्रतिज्ञा दिलाई कि, "मैं सदा सत्य बोलूंगा।" इस अमिट छाप के कारण कालेज जीवन में भी प्रिंसीपल महोदय द्वारा प्रमाण पत्र में उल्लेख किया कि, "That I was exceedingly receptive" (गुणग्राही)। कॉलेज काल के चारों वर्षों का best conduct and behaviour पारितोषिक प्राप्त किया। अत्यन्त विनम्रता पूर्वक यह

उदाहरण प्रस्तुत इसलिए किया है कि गुणानुरागी अपने पथ में और अधिक संख्या में आगे बढ़ें।

तत्वार्थ सूत्र (उमा स्वाति द्वारा रचित आगम आधारित जैन दर्शन का अपूर्व ग्रंथ, जो दो हजार वर्ष पुराना है)। इसके अनेक स्त्रोतों में मार्ग–दर्शक तत्व गुण उल्लेखित है, जिनमें से कुछ प्रस्तुत हैं। जीवन व्यवहार के चार सिद्धान्त बताये हैं– 'मैत्री, प्रमोद, करूणा, माध्यस्थ भाव।' सामान्य जनसे सदा मैत्री भाव, अपने से ज्यादा गुणी, महान व्यक्तियों के लिए प्रमोद–भाव, (अन्तर से आल्हाद), हमारे से निम्न–स्तर वालों पर करूणा भाव, तथा जो सिखाने पर भी कुमार्ग न छोड़ उन पर माध्यस्थ या उपेक्षा–उदासीन वृति रखें। जिससे हमारा शुभ हो, अशुभ–पाप से हम बचें। कई बार अधम लोगों को सुधारने की जगह वे हमें भी ले डूबते हैं।

बचपन में गाँधी को बहादूर बनाने के नाम पर, चोरी करना, मांस खाना दोस्त ने सिखा दिया, लेकिन सत्यता का गुण होने से पिता को लिखे पत्र में मोहनदास ने चोरी करना स्वीकार कर पिता को पत्र थमाया। पिता ने कुछ न कहा, उनकी आँखों से मोती तुल्य आँसू टपक पड़े। वही प्रभाव बालक मोहनदास पर पड़ा। उन्होंने आत्म–कथा में लिखा कि अहिंसा का मेरे जीवन में यह प्रथम साक्षात पाठ (Objective-Lesson) था। उस गाँधी ने जीवन में सत्य, अहिंसा के प्रयोगों से इतनी महानता प्राप्त की कि संयुक्त राष्ट्र के सभी देशों ने एक स्वर से उन्हें 'सहस्राब्दी–पुरूष' (Man of Millennium) माना । सर्वोच्च कोटि के वैज्ञानिक आईंस्टीन ने लगभग अद्ध शताब्दी पूर्व श्रद्धाजंली में कहा, "आने वाली पीढ़ियाँ मुश्किल से विश्वास करेगी की यह हाड़ मांस का पुतला धरती पर चलता था।" गाँधी की अहिंसा कायरों की अहिंसा नहीं वीरों की अहिंसा थी। वे प्राणों की बाजी लगाकर भी आततायी, निष्ठुर, अन्यायी का हृदय–परिवर्तन करने में विश्वास रखते थे। उनकी कथनी करनी में अन्तर नहीं था।

संत कबीर ने भजनों में गाया है। "झीनी, झीनी, बीनी चदरिया, सुक्ष्मतार से तीनी चदरिया। ये चादर सुर, नर, मुनि, ओढ़ी; ओढ के मैली कीनी चदरिया। दास कबीर जतन से ओढी ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया।"कबीर के दोहों पर मूलतः आधारित गीतांजली है, जिस पर रवीन्द्रनाथ ठुकर को नोबल पुरस्कार मिला। अनासक्ति के बारे में भोलेनाथ शिशु को संबोधन करते लिखा है। "Teach me the game of unconcern (अनासक्ति), the game of making and breaking of toys". सृजन भी वे एवं प्रलय भी वे ही कर सकते हैं। श्रीराम कृष्ण परम हंस पोथियों के पंडित नहीं बल्कि विरक्त, आत्मलीन, उपकारी थे, जिनके लिए उनके शिष्य विवेकानन्द ने कहा है, "जो कुछ अभिव्यक्ति के या अन्य दोष हैं, मुझमें हैं, मेरे गुरु में किंचित मात्र दोष नहीं।" वे गंगा मैया में गोते लगाते उससे लिपट कर शिशुवत रोते।

गाँधीजी ने श्रीमद् राजचन्द्र को अपना आध्यत्मिक गुरु माना है। उन्होने मनुष्य को सद्भागी या दुर्भागी मानने के कुछ परख तत्व (Touch-Stone) बताये हैं। दुर्भागी वे हैं जिनमें "नहीं कषाय–उपशांतता, ना अन्तर–वैराग्य सरलपणु नय मध्यस्थता ते कुमति दुर्भाग्य। दया , शान्ति , समता , क्षमा , सत्य , त्याग , वैराग्य , जे मुमुक्षु घट विषे, ते सुमति सुभाग्य।" ये उपरोक्त गुण हमारी संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। रामायण के मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम इनके प्रतीक हैं। महावीर, बुद्ध, कबीर नानक, मीरा, तुकाराम ने आदर्शों को चरितार्थ किया है। अहिंसा एवं सत्य का समावेश करते हुए उसे वीरों की अहिंसा बनाया है, कायरों की नहीं।

इन मूल्यों के बावजूद, कलयुग में मशीनीकरण के बढ़ते विशाल उत्पादन, तथा तदनुरूप भोगवादी (Consumerism) संस्कृति के वैश्वीकरण के कारण पृथ्वी का अभूतपूर्व दोहन हुआ है। वास्तव में यह भू मण्डल हमे विरासत में प्राप्त नहीं हुआ है

वरन् आने वाली पीढ़ियों की धरोहर है। होना चाहिये था "each according to his need, and not according to his greed".

बढ़ते हुए मांसाहार, मद्यपान, उन्मुक्त–भोग के फलस्वरूप उष्ण–कटि–बंधीय जंगल जो हमारे प्राण–वायु–ऑक्सीजन के भण्डार थे, वे काफी मात्रा में नष्ट हुए हैं। एक किलो मांस प्राप्ति में एक किलो शाकाहार की तुलना में सौ गुणा अधिक पानी एवं आठ गुणा खाद्यान नष्ट होता है। आने वाले युद्ध इस जल संकट के कारण होंगे। भूतल–जल काफी कम हो गया है। दीर्घ अर्से से कल कारखानों से कार्बन–डाई ऑक्साईड गैस के भारी उत्सर्जन (CO_2) से एवम् संचय से ध्रुव–प्रदेश के शीत–सागर एवं हिम–श्रंग ग्लेशियर पिघलने लगे हैं। समुद्र–तटीय–प्रदेश एवं टापू डूबने के कगार पर हैं। भयंकर सुनामी, भूकम्प, बाढ़ अतिवृष्टि एवं अनावृष्टि, सूखे से हमारा कृषि उत्पादन गिर रहा है। समय रहते हम नहीं चेते तो सारा पर्यावरण क्षत विक्षत हो जायेगा।

प्रश्न है गुणों की वृद्धि, जन समुदाय में कैसे हो? कुछ दिन पूर्व महाप्रज्ञ जी ने, तत्व–बोध के लेख में ठीक कहा, "हमारे निर्णय, बुद्धि विवेक से न होकर, कषायों से होते हैं।" विवेक वृद्धि कैसे हो, कषाय कम कैसे हो? उपाय है सत्य की चाह से, सम्यक्–ज्ञान, दर्शन से , सत्संग एवं शुभ ध्यान से, मिथ्यात्व मिटाने से, सत्य की चाह ज्यों ज्यों बढ़ेगी यह स्वतः सुलभ होगा। एकान्त–दुराग्रह की जगह अनेकांत–भाव– दर्शन अपनाने से क्रोध,मान, माया, लोभ, अहंकार, प्रमाद, स्वतः शिथिल एवं अधिकाधिक प्रयास से समाप्त होंगे।

स्पष्ट विदित होगा–हिंसा, झूठ, चोरी, असंयम, परिग्रह बुरे हैं। प्रमाद युक्त हिंसा आदि का परिणाम सिवाय विनाश के, और कुछ नहीं है। गीता में भगवान कृष्ण ने स्पष्ट कहा है, "कर्म का फल सुनिश्चत है जैसा करेगा वैसा भरेगा।" तत्वार्थ में भी कहा है– गुणी, ज्ञानीजन में दोष निकालने, उन्हें नीचा दिखाने का ईर्ष्या भाव, वृथा बाधाएँ उपस्थित करने, अनादर करने से दर्शन

एवं ज्ञानावरणीय कर्म बंधते हैं, उसका फल–मंद–बुद्धि, विद्या, पढ़ने से अनिच्छा होंगे। इसी प्रकार सब पर अनुकम्पा भाव रखने, साता देने से, हमें साता वेदनीय–कर्म का बंधन होता है या सुख मिलता है, इससे विपरीत क्लेश करने, सताने से, क्रन्दन व वध करने से असाता मिलेगी। कषायों के तीव्र उदय करने से मोहनीय कर्म का बंधन होता है, अतः इन कषायों का निग्रह करना चाहिये। आज कषायों में बहजाने से क्रिया–प्रतिक्रिया करने से, आंतकवाद बढ़ा है; सर्व संहारकारी अणुबमों के ढेर पर दुनिया बैठी है।

ऐसे अन्य दुर्गुणों को मिटाने के भी उपाय हैं। सरलता रहित, वक्र–संवाद करने से, अशुभ नाम अर्जित होता है व स्व प्रशंसा करने से, दूसरे के गुणों को एवं अपने अवगुणों को छुपाने से, नीच गोत्र प्राप्त होती है। बहुत पाप कर धन संग्रह से नरक गति एवं सद्गुणों एवं कार्य में अंतराय बाधा पहुँचाने से हमें भी लाभ, सुख की अप्राप्ति एवं अच्छे कार्यों में अनुत्साह मिलेगा।

बार–बार प्रयास करने से क्या प्राप्त नहीं होता? अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति जेम्स फ्रेंकलीन ने अपने चारित्र में कमियों की सूची बनाई एवं एक एक दोष को दूर करने के लिए बिना चूक के 21–21 दिन त्रुटि रहित प्रयोग कर, उन सब कमियों को दूर किया।

अमेरीकी पूर्व राष्ट्रपति बुश ने बताया वे 1984 में शराब की लत में इतने अधिक आदि हो गये थे कि स्वास्थ्य की गिरावट के अलावा परिवार से भी दूर हो रहे थे। उन्हें तभी इस स्थिति का भान हुआ और तब से अब तक शराब से दूर रहें। उन्होंने कहा इसी का परिणाम है कि वह आज यहाँ है, अर्थात् राष्ट्रपति हैं।

एमर्सन ने कहा कि "Every one I meet, is in some way superior to me". गुण ग्रहण के अपनाने की यह अपूर्व मिसाल है। सब में अच्छाइयाँ देखकर उन्हें लेना है। मनुष्य जन्म दुर्लभ है, देवता भी मनुष्य जन्म में आकर अहिंसा, सत्य, संयम, तप,

प्रायश्चित, विनय, सेवा, स्वाध्याय, त्याग, ध्यान, कायाकष्ट, आहार एवं विषय संयम कर मोक्ष प्राप्त करते हैं, जो हर व्यक्ति का परम लक्ष्य हो। भगवान शिव के ऊपर बूंद–बूंद बहती गंगा की तरह हमें सतत सुसंस्कार जीवन भर लेते रहना है, इस विधि से स्वयं एवं पर का कल्याण होगा।

शाकाहार-जगत का त्राण

आधुनिकता की आँधी में कई बार नादानी में हम शाश्वत मूल्यों की होली कर बैठते है। रूक्मिणी देवी अरण्डेल; नें, जो पशु कल्याण आन्दोलन की सिरमौर थीं, पचपन वर्ष पूर्व हमारे कॉलेज के उद्‌बोधन में बताया कि, "पश्चिम जगत में जहाँ हमारे सांस्कृतिक मूल्य जैसे "शाकाहार" अपनाने की अभिलाषा एवं होड़ लगी हैं, वहीं हमारे तथाकथित आधुनिक भ्रमित प्रगतिशील लोग उनके पुराने विचारों के चिथड़े जैसे मांसाहार, सामिष--भोजन एवं मद्यपान को अपनाने में गर्व मानते हैं।" मैंने स्वयं एक केनेडियन--मंत्री से बात की तो उन्होंने बताया कि, "हम लोग सामिष--भोजन, मद्यपान, रात्रि भोजन त्याग रहे हैं; कोई बुढ्ढे ठाडे अपनी पुरानी आदत से बाज नहीं आ सकते, वे लाचार हैं, लेकिन नई पीढी इसके विरूद्ध हैं।" इसलिए पाश्चात्य देश के अच्छे विचारक बर्नार्डशा, एच.जी.वेल्स, आल्डस--हक्सले, आईंस्टीन, लीओ, टोल्सटाय, चार्ल्स डार्विन, वाल्टर--न्यूटण आदि न केवल शाकाहारी थे वरन् वे इसके प्रबल समर्थक थे।

भारत के लगभग अधिकांशों धर्मों में जीव दया, शाकाहार, का इस कद्र समर्थन किया है कि भारत की सांस्कृतिक परम्परा में 'अंहिसा परमो धर्म', न केवल आगमों में वरन् महाभारत एवं उपनिषदों में भी श्रेष्ठ माना गया है तथा आज के विश्व में देशों को स्वाधीनता दिलाने में गाँधीजी का अहिंसात्मक आन्दोलन का शस्त्र, युग--युग में उत्तम समझा गया है, इसलिए विश्व में उन्हें सहस्राब्दी पुरूष माना गया है। मनुष्य की सुकोमल भावनां--सहानुभूति, दया, करूणा, प्रेम भ्रातृभाव का पहला द्योतक

उसका शाकाहारी बनना है। मद्यपान से अधिकांशतः यह विवेक कुण्ठित हो जाता है। ठीक ही कहा है, "नशे में ही कोई मुर्दा खा सकता है।" महावीर ने मद्यपान को उतना ही या अधिक बुरा माना है क्योंकि वह हमें विवेकहीन बनाता है।

अक्सर कई समझदार लोग भी तथ्यों की जानकारी के अभाव में तर्क करते हैं कि सभी लोग शाकाहारी बन जांये तो लोगों को खाद्यान्न भी नहीं मिलेगा। इससे ज्यादा गलत बयान भला और क्या होगा क्योंकि सच्चाई यह है कि अधिक माँस उत्पादन के लिए मुख्यतः विकसित देशों में 8–9 किलो अनाज गाय, बैल, भैंस आदि को खिलाकर उससे एक किलो की दर से माँस प्राप्त किया जाता है। शोध अनुसार लगभग 90 करोड़ लोगों को दिया जाने वाला खाद्यान्न गेहूँ, मक्का, अन्न मोटा अनाज ढोरों को, अतिरिक्त मांस उत्पादन हेतु खिलाया जाता है, अर्थात निःसन्देह वर्तमान विश्व की जनसंख्या जो लगभग 700 करोड़ है उतनी और जनसंख्या के जीवन आधार के लिए यदि वह शाकाहारी हो तो लगभग उक्त खाद्यान्न पर्याप्त है।

लेकिन फिर भी इस तरह खाद्यान्न को माँस में परिवर्तित करने की चक्रीय प्रक्रिया से विश्व में प्रतिदिन 1/7 यानी 100 करोड़ आबादी को भूख का सामना करना पड़ता है। संसार के कई भागों में दुष्काल, दरिद्रता, भुखमरी, कुपोषण से प्रतिदिन 40,000 मानवों की मृत्यु हो जाती है जिसमें तीन चौथाई लोग 5 वर्ष से कम उम्र के छोटे बच्चे होते हैं। कारण स्पष्ट है कि गरीब देश एवं उनमें भी निर्धन रेखा के नीचे के तबके के लोग अन्य के मांसाहार के कारण मँहगा अनाज क्रय नहीं कर पाते हैं। इस त्रासदी से बचने के लिए शाकाहार ही एक मात्र ईलाज है। अब तो बायो डीज़ल के लिए भी मक्के की काफी मात्रा में फसल कई देशों में उगाने से मक्का की उपलब्धि और भी कम होने जा रही है।

खाद्यान्न से भी ज्यादा संकट विश्व भर में पेयजल का कई जगह है एवं भविष्य और भी भयावह है। कहा जाता है कि भविष्य के युद्ध, 'जल पर अधिकार' के लिए होंगे। जहाँ एक किलो अनाज उत्पादन के लिए 110 लीटर औसतन पानी चाहिए वहाँ एक किलो माँस के लिए 11,000 लीटर पानी चाहिये। माँस उत्पादन के लिए विश्वभर में लगभग 1400 करोड़ गायें पाली जाती हैं। इस चक्रीय तरीके से कितने अनाज एवं पानी का अपव्यय हो रहा है अनुमान लगाया जा सकता है। ज्ञात रहे कि संसार भर में केवल एक प्रतिशत पेयजल उपलब्ध है। शेष 70 प्रतिशत समुद्री खारा जल है एवं शेष का 30 प्रतिशत ध्रुवीय जमे बर्फ में है तथा और शेष नदी नालों आदि में है।

अन्न एवं पानी के साथ विश्व का पर्यावरण कितना दुषित हो रहा है। इस सम्बन्ध में श्री अल्गोर पूर्व उपराष्ट्रपति अमेरीका ने अपनी खोज पूर्ण पुस्तक "असुविधा जनक सत्य"– "An inconvenient Truth" में लिखा है। मुख्यतः इन 1400 करोड़ गायों के चारे एवं मोटा अनाज उत्पादन के लिए प्रतिवर्ष 1140 लाख हेक्टेयर वर्षावन भूमि के वृक्ष काटे जाकर जंगल मिटाये जा रहे हैं। इस तरह अब तक लगभग 1500 करोड़ हेक्टेयर वन भूमि का सफाया कर दिया गया है। वे वर्षा वन विश्व के फेंफड़ों तुल्य हैं क्योंकि विश्व की 50 प्रतिशत ऑक्सीजन इससे एवं 80 प्रतिशत वनस्पतियाँ प्राप्त होती हैं। वनों की इस तरह की बर्बादी मानवता के लिए एक त्रासदी से कम नहीं है।

कोयला, खनिज तेल के उपयोग एवं वृक्षों की कटाई आदि के कारण वायुमण्डल में बढ़ती कार्बनडाई ऑक्साईड भी चिंता का विषय है। पशुओं के कल कारखाने भी औद्योगिकरण के अंग है। औद्योगिकरण के प्रारम्भ से अब तक 50 प्रतिशत CO_2 और बढ बया है। यही नहीं माँसाहार की प्रवृत्ति से पशुओं द्वारा उत्सर्जित मीथेन–गैस जो कार्बनडाई ऑक्साईड से 25 गुणी अधिक सशक्त है, उसकी मात्रा 'ग्लोबल–वार्मिंग' में 17 से 20 प्रतिशत तक हो

गई है। प्राण वायु की हो रही विलुप्तता के बारे में भी अतः शीघ्री उपाय "मुख्यतः प्रमुख–शैतान मांसाहार", के विरूद्ध आवश्यक है।

ध्यान रहे की इन वर्षावनों की कटाई से लाखों वनस्पत्तियों की प्रजातियाँ विनिष्ट हो जाती हैं। जिनमें कई प्रमुख औषधियाँ एवं अन्य आर्थिक विकास की आधार होती हैं। यही नहीं उन पर निर्भर पशु पक्षियों की अनेक प्रजातियाँ जो वनसम्पदा एवं पर्यावरण के महत्वपूर्ण अंग हैं असंतुलित हो जाते हैं एवं उपरोक्त सब कारण मिलकर हमारे अस्तित्व के संकट बन जाते हैं।

मांसाहार अन्य दृष्टि से भी मनुष्य के जीवन के लिए घातक है–शारीरिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक, नैतिक रूप से। युनेस्को के अध्ययन के अनुसार लगभग 160 बीमारियों का घर मांसाहार है। केवल थोड़े से दूध, दही एवं वनस्पतियों से भी मांस से मिलने वाले बायोलोजिकल प्रोटीन की कमी–पूर्ति हो जाती है। फाईबर्स, विटामिन, कार्बोहाइड्रेट का माँस में अभाव है जो एक संतुलित भोजन के लिए जरूरी है। अतः यह उचित भोजन कतई नहीं है।

इन भौतिक कारणों के अलावा मनुष्य होने के नाते हम संवेदना पूर्वक सोचे कि जैसे हमें जीने का अधिकर है हर जीव को वह उतना ही है। सबको अपनी जान प्यारी है। सामान्यतः मरना कोई नहीं चाहता है। जो जान हम दे नहीं सकते उसे छीनने का हमें अधिकार नहीं। विश्व स्रष्टा ने सबको एक दूसरे के पूरक के रूप में बनाया है जैसे हमने उपरोक्त लेख में पाया है।

इसलिए धर्म शास्त्रों में सत्य ही कहा है, **"आत्मवत् सर्वभूतेषू"**। सबके सुख दुख को अपनी तरह समझें। डॉक्टर हर दयाल ने ठीक ही कहा है– **"जो जीव जितना विकसित है उसकी हत्या करने पर मन में उतना ही अधिक आघात होता है।"** तत्वार्थ सूत्र में कहा है "मुख्यतः पंचेन्द्रिय संज्ञी जीव मनयुक्त होते हैं, वे सोच विचार कर सकते हैं, दुखी सुखी होते हैं, संवेदनशील हैं। अतः प्राणियों की हिंसा से सिवाय अनिष्ट, दुःख एवं सर्वनाश के कुछ भी प्राप्त होने वाला नहीं है।"

मनुष्य जन्म से नहीं कर्म से महान होता है

1. जैन दर्शन मात्र जन्म के आधार पर किसी व्यक्ति को ऊँच–नीच नहीं मानता। "कर्म से ही ब्राह्मण, कर्म से ही क्षत्रिय, कर्म से ही वैश्य और शुद्र होता है।" उत्तराध्ययन सूत्र, 25/33/सूयगड़ों के 2/2/25 में उल्लेखित है, "जो अन्य को तिरस्कृत करता है कि मैं जाति, कुल आदि गुणों से विशिष्ट हूँ इस प्रकार गर्व करता है वह अभिमानी मनुष्य मरकर गर्भ, जन्म और मौत के प्रवाह में निरन्तर भ्रमण करता है। क्षण भर भी उसे दुख से मुक्ति नहीं मिलती।" जीव ने अनेक बार ऊँच–नीच गोत्र में भव भ्रमण किया है अतः जाति, कुल, गोत्र का अभिमान वृथा है।

शुद्ध जैन दर्शन किसी व्यक्ति की किसी अन्य पर केवल जाति, वर्ण, लिंग, क्षेत्र, सम्पद्राय आदि के बाह्य कारणों से श्रेष्ठता स्वीकार नहीं करता। हरिकेशिबल मुनि, मलिन वस्त्रों में थे तथा महान तप के कारण क्षीणकाय थे, लेकिन ज्ञान, ध्यान, आदि "गुणों से विभूषित थे। जाति के गर्व से चूर, ब्राह्मणों ने यज्ञस्थल पर इन चण्डाल–मुनि का उपहास कर उन्हें प्रताड़ित करने का प्रयास किया, (उ.सू 12/41), तब मुनि नें ब्राह्मणों को ब्राह्मणत्व की सही विशेषता दर्शाई, " जो निसंग और निशोक है, राग–द्वेष भय एवं असत्य से परे है..... जो स्वर्गीय, मानवीय और पाशविक किसी भी प्रकार का अब्रह्मचर्य सेवन नहीं करता वह ब्राह्मण है। ब्राह्मण के लिए धन ग्रहण करना वमन किये हुए पदार्थ ग्रहण करने के समान है।

02. उन्होंने यज्ञों में होने वाली जीव–हिंसा, पशु–बलि का विरोध किया तथा उन्हें जैन साधुओं द्वारा प्रशस्त यज्ञ के विषय में बताया जिसमें तप, ज्योति है, जीव आत्मा ज्योति का स्थान है। मन,वचन और काया का योग कुड़छी है, शरीर कण्डे हैं कर्म ईंधन है, और प्रवृति शांति पाठ है।

तवो जोई जीवो जी इठाणं, जोगा सुदा सरीरै कारिसंग कस्म एहां संजम जो सत्नी, होम हुणामी इसिंग पसत्य।

(उ.सू 12/44) कर्म काण्ड युक्त यज्ञ की जगह वासनाओ पर विजय प्राप्त वाले भाव यज्ञ श्रेष्ठ हैं (उ.सू 12/42) ।

मुनि के तप से वे अभिभूत हुए। भगवान महावीर ने इस बारे में कहा, "यह तप महिमा प्रत्यक्ष है, आँखों के सामने है, जाति की कोई विशेषता या महत्व नहीं है जिनका योग–आदि और सामर्थ्य आश्चर्यजनक है, वह हरिकेश मुनि चाण्डाल के पुत्र हैं"। (उ.सू 12/37)।

03. चित्त, सम्भूत, शूद्र कुल में जन्म लेकर भी पुण्य कर्मों से देवलोक में गये। मेतार्य मुनि मेहतर थे लेकिन ज्ञान, दर्शन, चरित्र, की साधना से ऊँचे मुनिवर कहलाते थे। हाल ही में अनेक अन्त्यज जैसे बाबू जगजीवन राम अपनी विद्या, पुरूषार्थ, समाजोपयोगी कार्यों से श्रेष्ठ पद पर पहुंचे, यहाँ तक कि डॉ. अम्बेडकर स्वतंत्र भारत के संविधान के निर्माताओं में से एक तथा भारत–रत्न कहलाये। भारतीय – संविधान में सभी व्यक्तियों को बिना जाति पांति के, लिंग–रंग, धर्म, के भेदभाव के, समता का अधिकार प्रदत्त है।

जैन दर्शन में प्रारम्भ से सर्वधर्म समभाव रहा है। यहाँ तक कि जीव – मात्र के अस्तित्व में समता सिद्धान्त को मान्यता दी गई है।

04. ब्राह्मण कुल में पैदा हुए जयघोष, जो पूर्व में स्वयं हिंसक–यज्ञ में सतत् संलग्न थे लेकिन कालान्तर में इन्द्रियों का

निग्रह कर उत्तम जैन मुनि बने। उन्होंने ब्राह्मणों की यज्ञशाला में विजयघोष को यज्ञ एवं ब्राह्मण का सही स्वरूप बताया–

"नवि मुण्डि एण समणो न ओंकारेण बम्मणों,
न मुणि रणावासिंग कुसची रेण न तावसो,
समाए, समणोहोई–बंभचेरंण बम्मणों।

(उ. सू 25/31)।

मुण्डन करने से कोई साधु नहीं बन जाता। 'ओम–ओम' का उच्चारण करने से कोई ब्राह्मण नहीं बनता। न अरण्य वास से मुनि बनता है अथवा कुशवस्त्र पहनने से तापस बनता है। समता भाव से ही श्रमण एवं ब्रह्मचर्या से ब्राह्मण बनता है।

05. इस प्रकार गौतम गणधर जाति से ब्राह्मण थे लेकिन प्रभु महावीर के प्रिय गणधरों में एक थे। जैन आगम अधिकतर गणधरों की जिज्ञासाओं से एवं तीर्थंकरों के उपदेशों से परिपूर्ण है। उन्होंने सभी साधकों एवं सामान्य जनता को लक्ष्य कर प्रश्न किये जिनका समाधान प्रभु द्वारा किया गया। जो गौतम आगे जाकर स्वयं 'श्रुत–केवली' हुए। इसी उत्तराध्ययन सूत्र में श्रमण धर्म की आत्मिक मर्यादाएँ–क्षात्र धर्म की बाह्य मर्यादाओं के अनुरूप मानी हैं।

06. **जो सहस्सं सहस्साणं संगामें दुज्जएजिणे**
एगं जिणेज्ज अप्पाणं एससे परमोजओ।

(उ. सू. 9/41)

जो योद्धा दुर्जय संग्राम में सहस्त्रों–सहस्त्रों शत्रुओं को जीतता है उसकी अपेक्षा जो केवल अपनी आत्मा को जीतता है उसकी विजय, श्रेष्ठ है। इसलिए श्रद्धा को नगर, क्षमा को बुर्ज एवं खाई, संयम को नगर–द्वार की अर्गला, पराक्रम या पुरूषार्थ को धनुष, ईया–समिति को उसकी डोर जिसे सत्य से बांध कर महाव्रतों के बाणों से कर्मकवच को भेदकर, व्यक्ति स्वयं पर विजय पाता है– संसार से मुक्त होता है।

07. **सुत्तनिपात** में एक जगह कहा गया है । क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चण्डाल पुक्कस सभी समान हैं यदि उन्होंने धर्माचरण किया है। इस प्रकार पूर्व विवेचन के आधार पर यह सुस्पष्ट एवं प्रमाणित है कि जैन दर्शन व्यक्ति–व्यक्ति के बीच जाति–पांति आदि कारणों से भेदभाव अनुचित, समझता है। 'मनुष्य अतः जन्म से नहीं कर्म से महान बनता है'।

08. फिर भी इसका यह कदापि अर्थ नहीं कि चौरासी लाख योनियों में मनुष्य भव की विशेषता नहीं । वह तो है ही जिसके लिए देवता भी तरसते हैं।

मनुवगदूर वित्तओ विणुव गइए महव्यय सयलं
मनुव गद्दीए ज्झाणं, मणुव गद्दीए णिव्वाणं।

(द्वादशांग अनुप्रेक्षा , 2991)

मनुष्य योनि में ही तप, महाव्रत, शील, ध्यान, निर्वाण, सम्भव है। इन्द्रिय निग्रह, उत्तम दस–धर्म, बारह भावनाएं, पंच महाव्रत अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्य आदि एवं अष्ट–प्रवचन–माताओं के अनुसरण से, यानी सावध कर्मों एवं कषायों से बचकर मनुष्य मोक्ष भी प्राप्त कर सकता है–बिना जाति–पांति के भेदभाव के हर आत्मा इस पराक्रम के लिए स्वाधीन है।

09. इस महान दर्शन के उपरान्त भी वास्तविकताओं को ओझल नहीं किया जा सकता है। जन–मानस में जैन धर्म भी अन्य की तरह एक सम्प्रदाय मात्र है तथा उनके भीतर के फिरकों से मूर्तिपूजक में त्रिस्तुतिक, चतुर्स्तुतिक, दिगम्बर तथा अन्य में स्थानकवासी, तेरहपंथी आदि आदि अनेक पंथ हैं। जिनमें वास्तविक अन्तर नाम मात्र है। उन सब में मूलभूत समता होते हुए भी एकता की जगह संकीर्णता, असहिष्णुता अधिक दृष्टिगोचर होती है। आत्म–प्रशंसा एवं प्रचार की भूख बढ़ रही है। जैसा दैनिक अखबारों में अपने फोटो तथा प्रचार पूर्ण विज्ञापनों से प्रतीत होता है। कुछ मंदिर–मार्गी साधुओं में द्रव्य रखने–रखवाने में मुनि

के लिए सहज संकोच की सीमा लांघी जाना प्रतीत होती है। यहाँ तक कि प्रतिष्ठा या तप–उत्सव आदि कराने में श्रीसंघ के साथ आय में भागीदारी मांगी जाने की भी काफी हेय रही, विश्वसनीय चर्चा होती रही है। वीतराग धर्म एवं मुक्ति पथ के साधुओं के नाम तो उत्तराध्ययन एवं आचारंग में निर्धारित मर्यादाओं से ही समुज्जवल होगा। परिग्रह पाप है उसे छोड़ने के लिए ही वे विरत बने हैं।

10. इसी प्रकार श्रावकों में भी जैनत्व के संस्कार क्षीण हो रहे हैं। स्वास्थ्य, आत्मदर्शन, सुसाहित्य, आगम, वाचन, श्रवण, मनन में आम श्रावक की अभिरूचि विकसित नहीं है। भोग–प्रधान सभ्यता की चकाचौंध में पश्चिम के विचारों के चिथड़े, अपनाने में शोभा समझी जा रही है, इसलिए जहाँ पश्चिम में दारू–मांस भक्षण को छोड़ना, सभ्यता का चिन्ह माना जाता है वहां उनकी इन पुरानी आदतों को हमारे मुख्यतः कुछ भ्रमित युवकों, द्वारा अपनाना गौरव पूर्ण समझा जाता है।

"To be vegetarian is to be civilized" – H.G. Wells.

"शाकाहारी बनना सभ्य बनना है।"– एच.जी. वैल्स।

"If I were an ommipotent despot, I would have arranged such a state of affairs with my subjects, as to ban use of fish, fowl meat, intoxicants, from the face of earth." George Bernard Shaw.

"यदि मैं सार्वभोम शक्ति सम्पन्न शासक होता, तो मेरी प्रजा में ऐसी व्यवस्था करता कि पृथ्वी से मच्छी, मुर्गे, मांस, मादक, द्रव्यों के उपयोग का सर्वथा निषेध करता।"– जोर्ज बनार्डशाह।

अपरिमित परिग्रह करने में पाप है, कषायपूर्ण आचरण है। निकाचित कर्म बन्धन है, परन्तु जैन धर्मावलम्बी भी परिग्रह में आमतौर पर किसी अन्य जातियों से कम प्रतीत नहीं होते। मानो जैनत्व का उन पर कुछ भी असर नहीं। व्यक्ति सारी उम्र, धन

इकट्ठा करने में लगा देंगे। जैसे जीवन का एक मात्र लक्ष्य यही हो। विडम्बना यह है कि प्राप्त धन को वे भोग नहीं सकते। नये की तड़प बनी रहेगी। इस उधेड़ बुन में परमात्मा का स्मरण या उसके काम नहीं हो पायेंगे। बाईबिल में कहा है,"कुबेर की पूजा करने वाले परमात्मा को नहीं पूज सकते।धन के प्रेम वश दीन-हीन की भी सेवा नहीं कर सकते, फिर भी मौत कें एक झटके से वह धन यहीं छूट जाएगा "।

रोजमर्रा के व्यवहार में सरलता, सत्यता, निर्मलता की जगह भक्कारता, आडम्बर दिखावा यहाँ तक कि असत्य एवं छल कपट पूर्ण आचरण भी छा रहे हैं।

आज भी अहिंसा को मानने वाले शाकाहारी समाज जैसे खाती, घांची, ब्राह्मण आदि हैं । समस्त जैन चाहे वे श्वेताम्बर, दिगम्बर, अग्रवाल, ओसवाल, पोरवाल, श्रीमाल,पालीवाल हों उनमें भी विवाह-सम्बन्ध, अपवाद हैं। यहाँ तक कि ओसवाल समाज में भी ढांइया, पांचा, दस्सा, बिस्सा की बात अक्सर गाई जाती है। शादी-विवाह के दिखावे, समाज विनाशी व्यय, जैसे हजारों लोगों के भोज, शामियाना, कालीनें, रोशनी की शान-शौकत, भारी दहेज प्रथा, वर-विक्रय आदि जितने कम किये जावेंगें, सामूहिक विवाह होंगें, उतना ही समाज में प्रेम की प्रतिष्ठा बढ़ेगी। समाज, ग़रीब के लिए जान लेवा न बनकर परोपकारी बनेगा। जीवन के प्रत्येक विभाग एवं कार्य पर जैन संस्कृति का प्रभाव पड़े जो संयम एवं वीतराग-भावना पर आधारित है जिससे कि मनुष्य जन्म से नहीं कर्म एवं पुरूषार्थ से महान बने। तथा राष्ट्रों में शांति, अहिंसा एवं अपरिग्रह से लोक-कल्याण हो, तभी प्रभु महावीर का धर्म-जैन जाति मात्र का धर्म न होकर, जन जन का यानी 'मानव धर्म' होगा।

सुसंस्कार-अनेकान्त दृष्टि से

संस्कार निर्माण न केवल आनुवांशिक गुणों (जीन्स), जो हमें अपने माता, पिता या दादा, दादी, नाना, नानी आदि से प्राप्त होते हैं, पर निर्भर हैं, वरन् हमारे लालन–पालन, शिक्षा, गुरुजन, मित्र मण्डली, सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक–परिवेश पर भी आधारित होते हैं। उनके अन्तर–स्रोत सामान्यतः हमारी वे पुष्ट धारणाऐं, भावनाएँ एवं आस्थाएँ हैं, जो तर्क से अधिक महत्वपूर्ण हैं। अक्सर अधिकांश लोग उन्हीं तर्कहीन गलत मान्यताओं में जीते हैं एवं गलत तर्क से पुष्टि भी करते हैं। लेकिन यह भी सत्य है कि कई बार बचपन में ही मातृ–पितृ भक्ति, देश भक्ति, वीरता, उत्तम चरित्र एवं नैतिक शिक्षण के ऐसे सुन्दर भावनात्मक संस्कार (sentiments, emotions) बच्चों में मुख्यतः माताओं द्वारा दे दिये जाते हैं, जो उनकी अमूल्य निधि जीवन पर्यन्त बन जाते हैं। छत्रपति शिवाजी में ऐसे संस्कार माँ जीजाबाई एवं महात्मा गांधी में उनकी माँ पुतली बाई के द्वारा धार्मिक परिवेश में दिये जो इंग्लैण्ड जाने के पूर्व जैन साधु श्री बेचरदास जी द्वारा दिये गये व्रत मद्य, माँस, परस्त्री त्याग रूप में उभरे, इस में आनुवांशिक गुण एंव प्रारम्भिक जीवन के वातावरण दोनों का परस्पर योग स्पष्ट है।

श्रेष्ठ उपयुक्त वातावरण अक्सर अधूरा रह जाता है, जब अनुवांशिकता अनुपयुक्त हो। पंचतंत्र की गीदड़ की कहानी यथार्थ साबित हो जाती है कि गीदड़ का बच्चा शेर की मांद में पलकर, शेर शावकों के साथ बड़ा होकर भी, गीदड़ों के झुंड की आवाज "हुक्की हूँ . हुक्की हूँ, " सुनकर उनके साथ भाग जाता है। ऐसे ही जुआरी, अपराधी, धूर्त, चोर, अल्प बुद्धि व्यसनी–परिवार में जन्मे

व्यक्ति को अच्छा वातावरण मिलने पर भी उसके जन्मजात संस्कार उस पर हावी हो जाने का अंदेशा रहता है। जरा सा ऐसा मौका मिलते ही सब कुछ मटिया मेट हो सकता है।

मनोविज्ञान, आनुवांशिकता को, या प्राणी शास्त्र अंतः स्त्रावी ग्रंथियों की क्रियाओं को, इनका कारण मानकर इति श्री कर लेता है, जबकि जैन दर्शन इससे अधिक जड़ तक जाता है। क्यों कोई व्यक्ति या कोई जीव निर्बुद्धि, अज्ञानी, अधर्मी, पापी, कुबुद्धि, अल्पबुद्धि होता है या इसके विपरीत सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चरित्र युक्त होता है। जैन दर्शन का स्पष्टीकरण है– ज्ञाना वरणीय कर्म बन्धन करने से यानी पूर्व भव या इस भव में गुरुजन, ज्ञान एवं उसके साधनों की अवज्ञा या विराधना करने, करवाने या अनुमोदन करने से ऐसे कर्म बन्धन कर, वह उसका फल भोगेगा। इसी प्रकार वीतराग भगवान देव आचार्य उनके प्ररूपित धर्म देशना का अज्ञानवश या स्वार्थवश अतिक्रमण व निंदा करने का फल उसे अवश्य भोगना पड़ेगा। काम, क्रोध, मान, माया लोभ के अनंतानुबंधी अति घोर कर्म कर हिंसा, असीमित परिग्रह या भोग–विलास में जीव लिप्त होने पर उसका परिणाम भी मोहनीय–कर्मोदय के साथ–साथ उसे मिलेगा।

धन सम्पदा, शक्ति, ज्ञान सभी सामर्थ्य मिलते हुए भी किसी के कष्ट निवारण हेतु दान या परोपकार में किंचित मात्र भी त्याग न कर सके, यह अन्तराय कर्म का उदय है। इसके विपरीत सब अवसर होते हुए भी किसी को कोई लाभ प्राप्त न हो, स्वप्नवत् हो जाये, यह भी उसके इन कर्मों के उदय का कारण है। कर्मों की यह अन्तहीन श्रृंखला चलती रहती है जब तक वह स्वयं चोट खाकर जागृत न हो, या गुरु प्रेरणा से स्वाध्याय, सामायिक, परीषह जय, (कष्ट सहन) बारह अनुप्रेक्षाएँ जैसे–अनित्य, अशरण, अशुचि, अन्यत्व, संसार, लोक, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, बोधि दुर्लभ एवं मोक्ष भावनाओं न भावे, बारह तप–अनशन,उणोदरि, वृत्ति संक्षेप, रस–त्याग, प्रतिसंलीनता (एकांतवास), प्रायश्चित, विनय,

सेवा, स्वाध्याय, प्रतिक्रमण(परित्याग) धर्म–ध्यान,शुक्ल–ध्यान न करे।

व्रत हमारे लिए सुरक्षा कवच हैं, जो हमारे सुंस्कारों, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह, संयम (ब्रह्मचर्य), मार्दव (अभिमान रहित होना), आर्जव (निष्कपट होना, सरल बनना), शौच (लोभ मल से दूर रहना), ऊपर वर्णित तप आदि को सम्बल देते हैं। इन परीक्षाओं में खरे उतरने पर अनुपम दैविक–लाभ मिलता है। मद्य, मांस, परस्त्री त्याग, आश्रम के संयमित जीवन, कष्ट, सहिष्णुता एवं त्याग के व्रतों के फल स्वरूप गांधी भारत के राजनैतिक अहिंसात्मक आन्दोलन के अग्रणी बने। सत्याग्रह का विकास कर भारत के ही नहीं समस्त मानव जाति के सहस्त्राब्दी पुरूष (Man of Millenium) बने। यहाँ तक कि उनकी आत्म–कथा–'मेरे सत्य के प्रयोग', भावी पीढ़ियों के लिए सुसंस्कार निर्माण की एक जीवन्त पुस्तक, अनुपम देन बन गई। उनके द्वारा संस्थाओं के सुसंचालन के लिए विधिवत् लेखा–जोखा रखना एवं अपने अच्छे स्वास्थ्य के रहस्य का श्रेय एवं बचपन में बचत हेतु खर्च का पूरा हिसाब रखने एवं पैदल 8–10 किलोमीटर प्रतिदिन घूमना बताया है।

प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने धरातल पर देश, काल, क्षेत्र, स्वभाव से प्रभावित होता है। इनमें व्यक्तित्व विकास के लिए बाह्य परिस्थितियों का अनुकूल एवं प्रतिकूल होने के साथ साथ आत्म भावना अधिक प्रेरक बनती है। मेरे बाल्यकाल से मेरी सरल, करूणामयी देवी माँ से, बुद्धिमान मामाजी से, साहसी बड़े चाचाजी से, मैं इन संस्कारों से प्रभावित हुआ हूँ। बचपन में ही मुख्याध्यापकजी ने 'सदा सत्य बोलने का व्रत' दिया तथा सेवाकाल में आचार्य श्री तुलसी नें, "किसी से सौदा बाजी न करने का व्रत" दिया। इन दोनों को मैंनें लगभग अच्छी तरह पालन किया। मेरे पिताजी कुछ वहमी पति एवं काफी निष्क्रिय प्रकृति के थे। उनसे विपरीत बनने हेतु मैं अधिक उद्यमी, विद्या प्रेमी एवं एक

हद तक साहसी बनना चाहता रहा हूँ। इसलिए गांधी, नेहरू विनोबा, विवेकानंद के जीवन का तथा गीता एवं जैन दर्शन का विद्यार्थी आजीवन बना रहा हूँ।

इस प्रसंग में जब मैं आठवीं का कुशलाश्रम में विद्यार्थी बना तब कुलपति दिवंगत श्री देवीचन्द जी शाह ने एक बार जहां परीक्षा में कक्षा में प्रथम आने को सराहा, दैनिक जीवन व्यवहार पर भी टिप्पणी की कि 'बात–बात में बिगड़ना अच्छा नहीं', उनकी इस सीख को भी आजीवन ध्यान में रखा। एक बार हाल ही में शांति निकेतन बालोतरा में व्याख्यान देने पधारे श्री देवीचन्द जी ने, शाला निरीक्षण के समय अत्यन्त साफ सुथरी स्कूल के फर्श पर एक कागज का छोटा टुकड़ा पड़ा देख, उसे उठा लिया। जिसे देख हम विस्मित हुए तथा इसे अनुकरणीय माना। व्रत पालन, सत्य व्रत व अन्य उपरोक्त वर्णित व्रत एवं संस्कार निर्माण का सुफल मुझे भी मेरे जीवन में प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। कॉलेज जीवन के प्रथम चारों सालों में आन्ध्रा, गुँटुर हिन्दू कॉलेज में, मुझे सुचरित्र,सुचाल–चलन एवं व्यवहार का श्रेष्ठ पुरूस्कार सतत् प्राप्त हुआ। मेरिट में विश्व विद्यालय में तीसरा स्थान मिला। प्रतियोगिता परीक्षा में सफलता के साथ सेवाकाल निष्कंटक बनना, अधिक उपयोगी रहा। इस बात का संतोष होने के साथ इसका विशेष कारण "सत्य", "मार्दव एवं आर्जव " भावना को देता हूँ।

कोई भी सुंस्कार के लिए जैसे विद्यार्जन के लिए विनम्रता, गुरु के प्रति समर्पण भाव और स्वयं को सच्चा विनम्र विद्यार्थी मानना अनिवार्य समझता हूँ। साथ ही सतत् जागरूकता आवश्यक है। विनोबा भावे ने गीता प्रवचन में कहा है शिवजी पर गंगा की एक एक बूंद गिरती है उसका महत्व यह है कि सुंस्कार ही हमारे मन–मंदिर में जीवन में आवे। किन्हीं ग़लत मित्र, स्वजन से कोई बुराई, गाली, अविनय, बुरी आदत न आने पावे। नमनीयता यानी गुण ग्राहकता (Receptivity) के द्वारा ही सबसे एवं सर्वत्र सीखा जा सकता है। शेक्सपीयर के अनुसार, "Books

in running brooks and sermons in stones", उपलब्ध हैं। कुछ व्यक्तिगत उल्लेख, सामान्य व्यक्तित्व विकास, जो छात्रों के लिए हितकर हो, उस उद्देश्य से सत्य कथन रूप में ही किया गया है फिर भी क्षम्य हूँ। मैं निश्चित रूप से मानता हूँ जैसे कृत कार्य का फल निश्चित है उसी प्रकार विनय वान को ही विद्या नसीब हो सकती है।

प्रभु महावीर ने कहा है इन निम्न कारणों से विद्या नहीं आती, – "थम्भा, कोह, पमाएणं, रोगेणाऽलस्स एण"– अर्थात अभिमान, क्रोध, प्रमाद (करने योग्य न करना एवं अकरणीय को करना) रोग एवं आलस्य। वास्तव में एक अभिमान से शनैः शनैः शेष सभी अवगुण आ जाते हैं। हमारी तुच्छता हमें अभिमानी बनावे तब महापुरूषों की उपलब्धियों को निहारें, ताकि हम विनम्र बन सकें।

इस विनम्रता के गुण के आधार पर ही हम अधिक ज्ञानी, व्यापक दृष्टिकोण वाले, उदार–हृदयी, प्रजातांत्रिक बन, धर्मान्धता, कट्टरता, अंधविश्वास, स्वेच्छा–चारिता, हिंसा, बर्बरता, भ्रष्टाचार और नैतिक पतन के अभिशाप से मुक्त हो सकेंगे।

गुण–ग्राही बनने की भावना इसका आधार है। अन्यथा दम्भी, अज्ञानी तालिबान बनेंगे जिन्होंने हजारों वर्ष पुरानी संसार की अनुपम कलाकृतियों एवं शाँति की धरोहर बुद्ध–प्रतिमाओं का तथा विश्व–व्यापार–केन्द्र का विस्फोट कर अन्ततः स्वयं अफगानिस्तान का विनाश करवाया।

अंत में उचित वातावरण से संस्कार निर्माण से भिन्न आचार्य रजनीश का यह कथन भी नकारा नहीं जा सकता कि, "कोई पिता, गुरुजन या महाजन किसी पुत्र, छात्र या संरक्षण प्राप्त व्यक्ति को अपनी प्रतिकृति (image) में ढालने की भूल न करें क्योंकि हर जीव एक स्वतंत्र व्यक्तित्व है, उसे अपना सत्य स्वयं खोजना है"। गुरुदेव टेगौर के शब्दों में, "The traveller has to knock at every alien door to reach his own". गुरुजन, शुभचिंतक, केवल साक्षी भाव से अर्थात् बिना राग, द्वेष क्षोभ के, उसे पथ दिखा सकते हैं। यात्रा उसे स्वयं करनी है।

साम्प्रदायिकता

जब धार्मिक संकीर्णता, कट्टरता, एक अलगावपन की उग्र असहिष्णुता पर पहुँचती है, वही साम्प्रदायिकता है। उदाहरणार्थ धार्मिकता जब हिन्दुत्व के नाम पर मुसलमानों को एक 'अलग राष्ट्रवादी जाति' समझे या इसके विपरीत मुसलमान हिन्दुओं को भी इसी तरह प्रतिकूल समझे तब यह दोनों प्रकार के धर्मावलम्बियों की घोर साम्प्रदायिकता होगी। भारत का विभाजन इसी साम्प्रदायिकता का घातक परिणाम है। साम्प्रदायिकता का विष राजनीति एवं आंतकवाद के संखिया–जहर में घुलकर और अधिक भयावह हो जाता है।

छोटे स्तर पर विभिन्न धर्मों के अनेकानेक पंथ, सम्प्रदाय जब अलग–अलग मत विशेष पर बल देते हैं तब और छोटे अगणित सम्प्रदाय बन जाते हैं। जब तक वे किसी विशेष धार्मिक विचार की भिन्नता वश अलग सम्प्रदाय गठन करते हैं, वह वैचारिक स्वतंत्रता का द्योतक है। जो उदारवादी हिन्दू धर्म या इस देश के अन्य उदारवादी धार्मिक–परम्परा के अनुकूल है। "भारत के विभिन्न सभी धर्म रंग बिरंगे गुलदस्ते की शोभा हैं, छटा हैं, धर्मों की मूल एकता जो अध्यात्म की नींव है, उसमे विभिन्न सम्प्रदायों की अनेकता है, विभिन्न सम्प्रदाय सहिष्णुता एवं सह–अस्तित्व, विविधता एवं वैचित्र्य का सुन्दर अनूठा बाग है।" स्वागत योग्य है। क्योंकि जहां पर वह एकरूपता की नीरसता से परे है वहीं पर व्यक्तित्व के विकास के लिए, व्यवसायों की विविधता के लिये एवं विभिन्न विचार–धाराओं को पनपाने के लिए प्रजातंत्र के विकास के लिए विविध शक्तियों के प्रचुर योगदान के लिए यह समन्वय

एवं अनेकांत वादी दृष्टिकोण, राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीयता के लिए विशिष्ट योगदान वाले होने से 'परस्परोग्रहों जीवानाम सिद्धान्त' अनुसार अति उपयोगी है।

भारत में भारतीय संस्कृति इन्हीं मूल आधारों पर प्रचुर समय तक पनपी है। वैदिक–काल, यहाँ तक कि पूर्व–वैदिक–काल, 'मोहनजोदड़ों एवं कालीबंगा' की सभ्यता के समय से समन्वय होता रहा है। आर्यों के प्रकृति–पूजन, वैदिक–सभ्यता, रामायण, महाभारत, उपनिषद, गीता, जैन–आगम, बौद्ध ग्रंथों–सबमें अध्यात्म के आदर्श–अहिंसा, संयम, तप एवं नैतिक मूल्य रहे हैं। इसमें वैष्णव, शैव, मातृशक्ति, देवासक, आदिवासी, जैन, बौद्ध, सिख सभी अपनी अपनी मान्यता रखते हुए भी शांति एवं सद्भाव से रहे हैं। इनमें धार्मिक कट्टरता एवं अनुदारता, घृणा, हिंसा, प्रतिशोध नहीं है।

यूरोप की तरह यहाँ दीर्घकालीन धार्मिक युद्ध नहीं हुए। सम्प्रदाय मात्र पूजा एवं व्यक्तिगत रूप से श्रद्धा का विषय रहा। साम्प्रदायिक सौहार्द बना रहा।

भारतीय इतिहास के अंतराल में मध्ययुग में इस स्थिति को बड़ा झटका लगा। इस्लाम जो शांति एवं भाईचारे का धर्म था आततायियों, कट्टरवादि, लूटेरों एवं अधिनायक वादी शासकों के हाथों जैसे महमूद गजनवी, गौरी, तैमूर, औरंगजेब आदि द्वारा तेग, तलवार एवं ताकत के बल पर धर्मपरिवर्तन, राज्य विस्तार एवं धनोपार्जन का साधन बना। अंग्रेजों ने भी 'फूट डालो एवं राजकरो', की नीति के द्वारा साम्प्रदायिकता उकसाने का कार्य किया।

पाकिस्तान बनाने के लिए जिन्ना द्वारा 'डाइरेक्ट एक्शन' बड़े पैमाने पर 16 अगस्त 1946 को साम्प्रदायिक दंगे, हिंसा के रूप में करवाये गये जिससे अकेले कलकत्ता में एक ही दंगे में छः हजार लोग मरे, अनेक घायल हुए। यह सिलसिला इस कदर बढा कि

पाकिस्तान न बनने का कोई विकल्प न रहा। विभाजन मानना पड़ा। साम्प्रदायिकता का विष फिर भी इस द्विराष्ट्र हिन्दू अलग, एवं मुस्लिम अलग, सिद्धान्त में बढ़ता गया। विभाजन के समय दोनों ओर खून की होली खेली गई। लेकिन पाकिस्तान ने जो इसी सिद्धान्त पर बना था वहाँ की हिन्दू आबादी को अधिकांशतः निकाल बाहर किया। इसी अत्याचार एवं असहिष्णुता एवं भेदभाव के कारण पूर्वी पाकिस्तान ने उर्दू न अपनाकर बंगला–भाषा को अपनाया। अंततः पाकिस्तान ही उसी का दुश्मन बन गया। जिसकी सैन्य–शक्ति एवं पाशविकता की प्रतिक्रिया स्वरूप पाकिस्तान से बंगला–देश अलग हो गया। पाकिस्तान जो बनने के समय विश्व में दूसरा बड़ा इस्लामिक राष्ट्र था तीसरे नम्बर पर मुस्लिम राष्ट्र जन संख्या में आ गया। भारत की धर्म–निरपेक्षता के फलस्वरूप आज मुस्लिम जनसंख्या में वह विश्व में दूसरे नम्बर पर है। स्वयं पाकिस्तान भारत की इस तुलना में पीछे है। इण्डोनेसिया के अलावा पाकिस्तान में भी शिया, सुन्नी और अहमदिया–मुस्लिम सम्प्रदाय होते हुए भी एक दूसरे के विरोधी हैं, अहमदियों को तो 'नापाक काफिर' तक मानते हैं। दूसरे सम्प्रदाय जैसे ईसाइयों द्वारा की गई इस्लाम के विरूद्ध सामान्य तार्किक टिप्पणी को भी गहन दोष या मौत के फरमान योग्य समझा जाता है। ऐसे कानून बनाये हैं जिसे अन्य द्वारा "निंदा ब्लासफेमी" (Blasphemy Act) कहा जाता है।

दुर्भाग्य यह है कि भारत विभाजन ने तथा पाक की फिरका–परस्ती सतत् भारत विरोधी एवं वैमनस्य की नीतियों ने यहाँ की साम्प्रदायिक पार्टियों, संगठन जैसे शिव–सेना, विश्व हिन्दू परिषद, बंजरगदल, आर.एस.एस. यहाँ तक कि पुराने जनसंघ के नये रूप बी.जे.पी. भी कमोबेश मुस्लिम समाज द्वारा उनके विरोधी समझे जाते हैं। इसी प्रकार जैसे मोहम्मद, लश्करे–तोयबा, हुर्रियत, मुस्लिमलीग पाक हिमायती एवं पक्के साम्प्रदायिक संगठन हैं। यहाँ तक कि प्रथम तीन संगठन

आंतकवादी एवं देश के और विभाजन के पक्षधर हैं। समय–समय पर देश में बम कांड, गोधरा काण्ड, के जिम्मेवार हैं एवं प्रतिक्रिया में बेस्टबेकरी एवं गुजरात में शर्मनाक साम्प्रदायिक दंगे हुए। साम्प्रदायिक दंगों से अशांति की मांग करने वाली साम्प्रदायिकता ने आंतकवाद का वर्षों तक सहारा लिया। कश्मीर में इसी साम्प्रदायिकता के तांडव ने वहाँ के तीन लाख पंडितों को अपने ही देश में दशाब्धियों से शरणार्थी बना दिया। सत्तर हजार से अधिक मौत के शिकार हुए, लाखों घायल हुए। पाकिस्तान ने आतंकवाद को राष्ट्रीय नीति के रूप में दो तीन दशाब्दियों से अपनाया जिसका दुष्प्रभाव नरसंहार रूप में उसे भी स्वयं भोगना पड़ रहा है।

हिंसा प्रतिहिंसा का दौर थम नहीं रहा। यह संकुचितता की मानसिकता राष्ट्रनीति बनाने का सही आधार नहीं बन सकती।

अन्तरराष्ट्रीय–स्तर पर भी कट्टरतावादी इस्लामिक संगठन– तालिबान का स्वयं अमेरिका ने अफगानिस्तान में रूस के विरूद्ध उपयोग किया, घातक शस्त्रों से उसे लैस किया। वे सैन्य प्रशिक्षण देकर अफगानिस्तान वासियों के लिए अभिशाप बने। जब तालिबानियों को वहां से खदेड़ा गया वे भस्मासुर की तरह आतंककारी ओसामाबिन लादेन सरगना के अधीन स्वयं अमेरिका, यूरोप के लिए प्रमुखतः एवं भारत के लिए एवं कुछ हद तक रूस, चीन आदि सारे विश्व के लिए आतंक बन गये। पाकिस्तान ने पुनः साम्प्रदायिक एवं अधिनायकवाद के प्रभाव में अफगान– आतंककारियों जैसे मोहम्मद–एवं लश्करे–तोयेबा में अन्तर कर अमेरिका विरोधी पांच सौ आतंककारियों को तो अमेरिका को सौंपा है जबकि भारत विरोधी एक भी आतंककारी को नहीं सौंपा है। अमेरीका भी इस नीति पर मौन है। वास्तव में आतंककारी सभी संगठन सारे विश्व के लिए खतरा है।

'विश्व व्यापार केन्द्र' न्यूयार्क एवं पेंटागन भवनों को ध्वस्त कर अलकायदा ने सारे अमेरीका जैसे महाशक्ति शाली देश को

अवाक् कर दिया, जिनमें लगभग तीन हजार व्यक्तियों की मौत एवं चंद मिनटों में, 90 अरब डॉलर की सम्पत्ति स्वाह हो गई। आज कदाचित्त उनके पास ए.क्यू.खान, जैसे पाकिस्तान के परमाणु पिता की कृपा से एवं अन्य स्त्रोतों से और अधिक विनाशक एवं जन संहारक अणु हथियार उपलब्ध हैं।

इसी भय को भड़काकर राष्ट्रपति बुश पुनः राष्ट्रपति चुन लिये गये लेकिन ओबामा तत्पश्चात् इसलिए राष्ट्रपति बन सके कि भंयकर हिंसा, नरसंहार एवं गहन खोजों के बाद में इराक मे महाविनाशकारी (weapons of mass destruction), हथियार अणु, परमाणु अस्त्र नहीं मिले। वहाँ पैट्रोल के लालच में आतंक एवं भंयकर शस्त्र रखने का बहाना बना इराक के युद्ध में अमेरीका का विपुल धन जन का स्वाहा हुआ। इसीलिए नये राष्ट्रपति ओबामा भी अफगानिसतान में इन कट्टर-- पंथियों को पाक को विपुल वित्तीय एवं सैनिक सहायता देकर नष्ट करना चाहते हुए भी अपने मित्र राष्ट्रों के सहयोग के उपरान्त भी मुख्यतः पाकिस्तान की दोगली--नीति से उद्देश्य में सफल न हो सके। उधर अमेरीकी नागरिकों ने इस वित्तीय--क्षरण का एवं अपने सैनिकों के बड़े पैमाने पर हताहत होने का घोर विरोध किया। यही मित्रराष्ट्रो का हाल हुआ। अतः दुबारा राष्ट्रपति बनने की चाह में पाकिस्तान की भूमि और बाद में सैन्य छावनी के निकटस्थ ही बहुत बड़ी कोठी में रह रहे है ओसामा बिन लादेन का पता लगाकर अमेरिका ने इकतर्फा कार्यवाही कर उसे ढेर कर दिया फिर भी ओबामा ने अफगानिस्तान से सन् 13--14 तक मित्र राष्ट्रों सहित पलायन ही उचित समझा। विश्व व्यापी मंदी भी एक और कारण है मुख्यतः पूंजीवादी देशों में। ईश्वर ही जाने युद्ध, गृहयुद्ध, घोर आंतककारी भंयकर शस्त्रधारी संगठनों द्वारा अमेरीका एवं मित्र राष्ट्रों के इस तरह पलायन के बीच अफगानिस्तान का क्या हश्र होगा? आज जो जनतंत्र की लहर मध्य एशिया के लगभग सभी देश जैसे मिश्र, युनिसिया, अल्जीरिया, सीरिया यहाँ तक कि

पाकिस्तान में फैल रही है, उससे 'अफगानिस्तान' कुछ राहत पा सकेगा, यह सब अनिश्चित है।

प्रश्न है क्या ऐसी साम्प्रदायिक, संकुचित, असहिष्णुता एवं आतंककारी गतिविधियों का उत्तर, और 'प्रखर हिंसा' है या शांति पूर्ण सहअस्तित्व, धर्मनिरपेक्ष अहिंसक नीतियों एवं प्रजातंत्रीय प्रणाली का विश्वव्यापी प्रचार–प्रसार व अनुशीलन? इस संक्रामक अवस्था में कदाचित् सच्चाई एवं ईमानदारी पूर्वक सभी महाशक्तियों वाले बड़े देशों का दोनों का सम्यग् समन्वित प्रयास एवं प्रयोग ही इसका निदान है।

नशामुक्ति शिविर एक अनुभव

पूर्व बालचरों एवं गाईड–संगठन–संस्थान, जोधपुर जो हमारी संस्था है की ओर से जोधपुर के निकट ही लूणी क्षेत्र में पवित्र राजाराम आश्रम के सौजन्य से बारह दिन का नशा–मुक्ति–शिविर दिनांक 04–10–1993 से 15–10–1993 को लगाया गया, जो शत–प्रतिशत सफल रहा। उससे प्राप्त अनुभवों का निचोड़ सर्व सामान्य के हितार्थ निम्न दिया जाता है। इस शिविर में 21 अमलचियों की मानसिक एवं शारीरिक चिकित्सा,मनोविज्ञानिक चिकित्सा विभाग,नव–अध्ययन–अस्पताल जोधपुर के कुशल अनुभवी विभागध्यक्ष की देखरेख में की गई।

शिविरार्थी स्वतः अथवा स्वयं सेवी संस्था एवं स्थानीय प्रेरकों के प्रयासों से आये और लाये गये थे अतः मोटे रूपसे इस क्षेत्र के इस नशे के आदि लोगों को प्रतिनिधि नमूना माना जा सकता है क्योंकि आने वालों में से जाति उम्र, या अन्य किसी सामान्य कारण से छँटनी नहीं की गई थी।

1. नशा सेवन करने वालों में 28 से 40 वर्ष की उम्र के पचास प्रतिशत लोग थे। इतने अधिक युवावर्ग के लोग अफीम के नशेबाज होना गहरी चिन्ता का विषय है। शेष 41 से 60 वर्ष की उम्र वाले थे। जो युवा अवस्था में ही इस नशे के आदि हो गये थे या लगभग 5 से 10 वर्षों से इस लत के शिकार हैं। कल्पना की जा सकती है कि यदि इसे शीघ्र न छोड़ा जाये तो अपने स्वास्थ्य के अधोपतन के साथ

समाज के अन्य कितने और युवाओं को अपने इस व्यसन का शिकार करेंगे।

2. विश्वस्त सूत्रों से विदित हुआ है कि इस क्षेत्र के कई गांवों में 30 प्रतिशत व्यसनी हैं। मोगड़ा गांव जो जोधपुर से केवल 14 किलोमीटर दूर राजमार्ग पर स्थित है, वहाँ इससे भी अधिक प्रतिशत व्यसन के आदि बताये गये हैं। शिवरार्थी अन्य गांव लूणी, सतलाना, सालावास, से आये । इन सभी एवं आसपास के अन्य गांवों में भी बहुतायत से अफीमची हैं। जिन्हें आदत के कारण प्रतिदिन आधा तौला या कुछ कम या इससे भी अधिक तौला अफीम सेवन करनी पड़ती है। हजारों की संख्या में ऐसे लोग अभी इस क्षेत्र में हैं। जहाँ माणकलाव आदि के प्रयास से इस दिशा में सराहनीय कार्य किया गया है। वहाँ समस्या अभी सुरसा के मुँह की तरह खुली हुई है। भारत में नशाग्रस्त लोगों का औसत 1 प्रतिशत है, वहाँ इस अभिशप्त क्षेत्र में यह पुरूषों में औसत बीस गुणा या अधिक हो सकेगी। सर्वेक्षण से और निश्चितता आयेगी। स्वतंत्र भारत में यहाँ के लोगों की स्थिति एड्स की बीमारी की तरह हृदय दहलाने वाली है। लाल चीन होने के पूर्व चीन अफीमचियों का देश कहलाता था। किस प्रकार उन्होंने इस बुराई पर काबू पाया उनसे अवश्य ही कुछ सीखा जा सकता है।

3. शायद सब को विदित होगा कि अफीम के आदि लोग रूग्ण, पीतवर्ण, निस्तेज, कमजोर, अनिश्चित मानस, अस्थिर–प्रकृति एवं कई बीमारियों से ग्रस्त पाये जाते हैं। अक्सर उनमें क्षय रोग ग्रस्त, कभी हृदय रोगी आदि भी मिलते हैं। यदि ये अनियंत्रित रहे तो दूसरे व्यसन–धुम्रपान, अधिक चाय सेवन के साथ, अन्य नशे पते जैसे हीरोईन, लिब्रियम, कम्पोज का सेवन भी बढ़ सकता है। भारत वैसे भी मादक वस्तुओं जैसे बेन्जोडीएनपाईन्स, मेन्ड्रेक्स, बार्बेरेट्स

ब्राउनशुगर का बड़ा बाजार बन रहा है। आश्चर्य नहीं स्थानीय नेताओं द्वारा इस क्षेत्र में बनाये जाने वाले मेन्ड्रेक्स के अवैध कारखाने पकड़े गये हैं एवं इससे प्रेरित व्याभिचार के दोषी रंगे हाथों पकड़े जाने पर कत्ल के जुर्म में जेल में हैं।

4. इस क्षेत्र मे आश्चर्य है, वर्षों से अफीम तस्करी का अवैध व्यापार खुलकर हो रहा है। यह आम चर्चा है कि तस्कर जीप भरकर अफीम चित्तौड़ से लाते हैं। इन्हें राजनीतिक संरक्षण कदाचित प्राप्त है। इनके सम्बन्धी राज्य के राजनीति में उच्च पद पर रहे हैं, कई क्वींटल में अफीम तस्करी कर उसमें पशुओं के खाने का गुड़, तथा ऊँट का मूत्रादि मिलाकर उसकी मात्रा लगभग चौगुनी या अधिक कर लेना बताया जाता है। इस अपमिश्रित माल की रीटेल्र्स को किलों में तथा वे अपने स्तर पर घर घर ऐसे अफीमचियों को लगभग पैंतीस या अधिक रूपये तोले के मंहगे मूल्य पर बेचकर लाभ कमाते है। काश नागरिक– पुलिस–प्रशासन, अब भी इस ओर विशेष ध्यान देकर दोषियों को दंडित करें।

5. इस लत के शिकार लोग अफीम प्राप्त करने के लिए उनके जीवन स्तर की तुलना में कई ज्यादा व्यय करते हैं। ये अत्यन्त दयनीय स्थिति के लोग होते हैं। मैने स्वयं प्रयास कर दो–तीन अनुसूचित जाति के व्यवसयियों को अफीम मुक्ति के लिए प्रेरित किया जो टूटे फूटे छप्परों में दयनीय स्थिति में सालावास में रहते थे, जिनके परिवार में निराशा का अंधकार था। जब ग्यारह दिन चले शिविर समारोह में इन्होंने भी अन्य के साथ उत्साह पूर्वक भाग लिया। निःसन्देह ऐसा लगता था कि वे सभी 10–10 वर्ष युवा हो चुके हैं। उनमें आशा की मुस्कान थी, शरीर में शक्ति थी एवं मुख पर ओज था। मन एवं दिमाग से स्वस्थ, स्थिर एवं संकल्पवान थे। कहते है अमेरीका में हीरोईन सेवन करने पर

जो खर्च होता है वह भारत में सम्पूर्ण बजट राशि से अधिक है। निश्चय है इन गरीब अफीमचियों का खर्च भी अपने परिवार की अन्य सतत खर्चों के बजट से अधिक है। एक नशा दूसरे नशे को जन्म देता है , नदी के कगार के वृक्ष गिरते जाते हैं। अतः समय रहते चेतना पैदा हो।

6. शिविर द्वारा चिकित्सा एक आदर्श पद्धति है जिससे उनमें परस्पर संबल मिलता है। एक सामूहिक सुनिश्चय से सभी ओत--प्रोत होते हैं। दुख–सुख में साथ मिलता है। सामूहिक सेवा से भी उन पर वांछित प्रभाव पड़ता है। जिन क्षैत्रिय कम्पाउन्डर, अध्यापक एवं आश्रम के स्वयं सेवियों तथा हमारी संस्था के लोगों द्वारा उनकी संभाल, दवाईयों से चिकित्सा, सेवासुश्रुषा की, उससे वे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। जिनकी चेतना कुंठित हो गई, रूग्ण हो गई वहीं पुनः सचेत हो जाती है। यह सामूहिक संबल ही व्यक्ति को अपने इस निश्चय में सहयोगी बनाता है।

7. वास्तव में मादक नशे की बेभान दशा ने व्यक्ति के जीवन–अमृत में विष घोल दिया है, उसका विवेक खो चुका है । उसका बड़ा दोषी स्वयं समाज है। यही सामंती–समाज बड़ी महफिलों में श्रीमंतों, ठाकरों, जागीरदारों की सभा में अपने काश्तकारों, कारिन्दों को साथ बैठाकर अफीम घोल–घोल कर अपनी झूठी शान बढ़ाते हुए, उन्हें चुल्लू भर–भर कर अफीम के घूंट के साथ मौत पिलाता रहा है। यह सम्मान सूचक प्रतीक फिर सभी छोटे बड़े उत्सवों में अनुकरणीय बनते रहे हैं। चाहे किसी भी जाति में सगाई आदि न्यात, टाणें, मृत्यु–भोज कोई कैसा ही अवसर क्यों न हो। अफीमचियों के इस रौनक, शान वाले दरबार का भला कौन विरोध कर सकता ? ऐसे सामूहिक नशा मुक्ति–शिविर से अफीम छोड़ने वालों में ही वह शक्ति आ सकेगी जो अफीम के इस दानव–देवता को सम्मान के शीर्ष से अपदस्थ

कर सकेगी। हालाँकि प्रत्येक ऐस व्यसनी पर इन शिविरों में पाँच सै छःसौ रूपये दवाई एवं इतनी ही राशि खुराक आदि पर व्यय होती है। यह अधिकतम 1500/– रूपये व्यय प्रति व्यक्ति आवश्यक एवं लाभप्रद है, क्योंकि अन्यथा ऐसा व्यक्ति एक लाख से डेढ लाख रूपया अपने जीवनकाल में अफीम पर व्यय कर चुकता है यदि उससे होने वाली उसके जीवन की विनाश लीला एवं समाज के पतन को भारी कीमत को एक बार न भी आँको तो आज की बढ़ी महँगाई में यह चारगुणी अवश्य हो गई है।

8. अन्त में मेरा यह निश्चित मत है कि ऐस समाजोपयोगी शिविर धार्मिक संस्था, जैसे राजाराम, आश्रम या अन्यत्र लगाये जाने से अतिरिक्त लाभ है। वहाँ के शुद्ध आध्यात्मिक जीवन का भी सुप्रभाव उन पर अवश्य पड़ता है तथा उसमें निस्वार्थ स्वयं–सेवी–संस्था जैसे पूर्व बालचर एवं गाईडस संस्थान, जोधपुर का योगदान सोने मे सुहागे का काम करती है। लक्ष्य भी तो उतना ही महान है, विषैले मादक द्रव्यों के सेवन से जो व्यक्ति एवं समाज के जीवन में भूकम्प आया है, जिसने उसे क्षत–विक्षत कर दिया है, उससे छुटकारा दिला उन्हें नव–जीवन, नव–समाज, नव–राष्ट्र में पुनर्स्थापित करना हैं। संतोष का विषय है, भारत सरकार अपने विशेष विभाग के द्वारा देश भर में नशामुक्ति के प्रयासों के लिये हर प्रकार से सचेष्ट है, लेकिन सरकारी योजनाऐं इकतर्फी ही रहेंगी जब तक जन साधारण या एवं स्वयं–सेवी–संस्थाऐं इस भागीरथी प्रयत्न में साझीदार न हों। धन्य है अणुव्रत समिति जो इस वर्ष को एवं समय–समय नशामुक्ति वर्ष के रूप में मना रही है। प्रेक्षा–ध्यान उसका अभिन्न अंग है। इस ध्यान, मौन, हृदय–मंथन एवं अध्यात्म की पावन–गंगा में पलकर ही इन प्राणियों को नशामुक्ति के पश्चात् अपने निश्चय में सुदृढ़ता प्राप्त होगी।

9. खेद है पाश्चात्य सभ्यता के वश में युवा एवं युवतियाँ कुछ आर्थिक समृद्धि पाकर, शराब एवं अन्य नशे के अधिकाधिक शिकार हो रहे हैं। भारतीय– संस्कृति के आंतरिक आह्लाद अहिंसा, दया, शांति, त्याग, पारस्परिक प्रेम, सद्विचार, ज्ञान एवं आचरण हमारे लक्ष्य बनें। हमें एवं मानवता को चरम भौतिकता से, अस्त्र शस्त्रों के बढ़ते विनाशकारी ढेरों से और बुद्धि एवं विवेक हरण करने वाले नशों से मुक्ति दिलावें।

AN APPRAISAL OF GANDHI AND HIS IDEAS

Gandhi was a real Baniya extracting such treasure trove from his life as to deserve the title of 'Man of the Millennium'. U.N. Observing unanimously his birthday as the day of ***non violence***; so dear to him.

Albert Einstein paid glowing homage to the effect that, "the coming generation of mankind would scarcely believe that such a man in flesh and blood trod on this earth".

Roma in Rolland, clamored for privilege of serving the king of India Gandhiji; who visited France while returning from London to home after attending Round Table Conference there with George; the king of the Greatest Empire.

French Author Dominique Lepierre has given graphic details on Gandhi in a searching appraisal in the famous book, "Freedom at Mid-Night". Some of them are as follows:

A quarter century of his inspired leadership offered through non-violent, Civil-Disobedience-Movement, agitations and protests, courting of imprisonments on

mass scale, making them fearless, rousing public-opinion to undergo suffering ,turning the other cheek to the oppressor: forced the British-Rulers leave India, rather than being driven by armed rebellion.

Gandhi however was dead against the partition, as he said to Jinnah, "Cut me into two before you cut India into two." Jinnah was adamant, "there are two Indias a Hindu India and a Moslem-India, we would have India divided or India destroyed".

He and Moslem -League called for direct action, leaving 6,000 persons dead, in bitter communal violence first in Calcutta, then spread far and wide at many places in India .This titanic dance went on for over a year.

Gandhi at one point of time offered Mount Batten; the Viceroy, the entire India to Jinnah but cautioned him not to name him for the proposal, lest he should say it is from wily Gandhi.

At the age of 76 he undertook fast unto death in Calcutta and achieved miracle. What a million force under Mount Batten could not achieve, the communal-harmony was restored there when all the parties agreed to shun violence and goondas surrendered their weapons howsoever shortly.

The conflagration of violence spread to delta region of Ganga and Brahamputtra; very difficult inaccessible area for formation of islands. Gandhi visited Rampur, then Noakhali area on foot, covering about 47 villages and over 112 miles unarmed with sore feet, having chill-burn and blisters. He stayed preferably in a Moslem hut if not given shelter he would stay beneath a hospitable

tree, bringing the peace there. Through love, truth and non-violence he could ultimately undo Pakistan had he survived. God willed otherwise to test further these people.

South Africa was used as laboratory for testing his ideas in context of perfecting his weapons of non – violent movements to fight for rights of Indians there. He already suffered brick-bats, blows, kicks, humiliations, and even imprisonment for 249 days during his struggle for 21 years there. First such encounter to bolden him was the brutal treatment at Maritzburg Railway Station to be thrown out of the First Class Compartment, during a very cold night. He mused and prayed the God of Geeta. With dawn, came courage and fortitude to carry on the struggle for decades there and ultimately on going through *Unto the Last* (by Ruskin) became capable to renounce his lucrative practice of earning of $5000 annually and possessions. He had befriended Gopal Krishan Gokhale then itself and till then worked under his guidance since arrived in 1914 in India.

He travelled far and wide in India with his mouth shut and ears open for 2-4 years on Gokhale's advice and felt for India himself. He dwarfed all other leaders by his organizational skills, staunch faith in his novel means of non-violent-civil-disobedience-movement, selflessly and sacrifices earning title of "Mahatma" from the world renowned poet-Ravindra Nath Tagore.

His was astoundingly successful movement in Champaran in Bihar for ameliorating the worst conditions of Indigo-Workers of foreign-planters. Then raising his

voice against massacre of Jalian-wala-Bagh by General Dyer. Then Kheda Satyagraha and at the top of it Dandi-March witnessed by the world reporters an unarmed man walking with a bamboo staff, trod from Sabarmati to Dandi to pick up a handful of salt to challenge the mighty British Empire, braving lathi blows of its forces . He suffered imprisonment for freedom struggle for 2089 days in various Indian jails and so many others, courted arrest on mass-scale fearlessly. He made India fear-free from the clutches of imperialist-rule which left India ravaged by cyclical famines, taking toll in millions, reducing majority of people to dire poverty,leaving them half-naked, half-starved. His fasting technique proved disastrous to the British Rule.

When Churchill derided him as half naked Fakir, striding the steps of Buckingham Palace to parley on equal terms, his was the characteristic reply, that "the king wore enough for me and my semi-naked people." Mount Batten; then serving Viceroy, rightly predicted in his lifetime that Gandhi would go down in history at par with 'Christ and Buddha'.

Round-Table-Talks were bound to fail and agitations against British Raj again made him 'Guest of King of British Empire', this time at Yervada Jail. He undertook fast unto death. His condition worsened .Viceroy sent cable to Churchill who petulantly replied "has he not yet died"? Even funeral pyres were secretly arranged in Agha Khan Palace. Churchill's Order was to crush him and all he stands for, because he knew that the loss of India to the empire would be fatal. India being the 'jewel in the

crown', it would start a process that would leave the empire to a scab of minor power.

He instructed in his own snobbish way the bureaucrat I.C.S.officers to ignore welfare of India, to enjoy its steel frame, maintain a distance from locals, pamper princes and kings of India, who accepted their hospitality and enjoyed birds and wild life shooting ;for whom Gandhi felt ashamed of their silken robes, pearl necklaces and pass times of harems for sex. It is mentioned that Raja of Patiala Bhupendra Singh had 350 choicest ladies in his harem. King of Gwalior shot 1100 tigers in his life time almost equal to present tiger population in India for which world is striving to conserve them for protecting environment.

There is much to write about the man of the millennium but suffice to end the article for brevity that he offered Mount Batten accept Congress proposal, to be the first Viceroy of the Independent India for wresting it from Britishers in a unique struggle for it for 35 years, despite a saga of suffering by him and by his country men. Mount Batten said that, 'it was his greatness'.

Gandhi's impact on India and the world is unique. It is quite likely many a young person might be quite unaware of it in their ignorance or due to his appearance. He survives in India after more than 65 years of his passing away ,and may for millennium as India buried deep Jinnah's two-nation-theory of Hindu-India and Muslim-India .We had been following secularism ever since , and so is Indian-Constitution. We had more than 10 All India General and our Assemblies' Election. India

has second largest muslim population in the world. Kashmir is symbol of our secularism. India had more than once muslim President of India, in a way highest respectable office of the head of the state, enjoying sweeping powers in emergency.

The world equally owes much to Gandhi. Forty years ago Martin Luther King had a non-violent march in America for the rights of the blacks .Today his dream came true. There is a black President of U.S.A. enjoying the second term and the greatest powers in the world. Racial-segregation has been wiped out in South-Africa where Gandhi had his first lesson in this regard and taught the world a way out from the philosophy of 'tooth for tooth' and 'nail for nail'i.e. against the scourge of nuclear wars.

HOW CAN THE OLD AGE BE MADE HAPPY

The title smacks of skepticism if old age could be made happy. Prima-facilely it sounds pessimistic. That old age is condemned to be decrepit one with despair writ large on one's destiny, accompanied as it were with failing health, vision, diseases, ill served by family and little cared by others, hoping against hope to be happy.

Is this a real picture of our aged folks in the modern world ? Should we be clouded in our thinking to look old age with despondency? The title unfairly assumes so and yet looks for light. This is the purpose of this article. In the encircling gloom there are not only rays but effulgence of hope, I believe to make old ones happy. I find them as follows.

I like to see the positive and the bright side of the picture also. God has been gracious on one to bestow him such long life. Thirty years ago beyond sixty were rare. With increasing longevity due to better health – services and knowledge, the number beyond sixty years of age has almost doubled if not trebled of earlier ones, mentioned above.

Human life is a precious –most gift of God and as such long–life enables one to achieve life –long ambitions in this age of knowledge , science , technology and above all freedom realize goals of self expressions – being say a skilled doctor ,surgeon ,eminent engineer ,jurist, industrialist, educationist, krishi pandit, social worker, yogi or a saint. Old age therefore is a celebration, not a matter of regret .He has carved out a distinguished place in family, in society, if he had lived well which is expected of a human being, under God's bounty. Old age even offers plentiful time for review and atone sins.

Such successful old age, a dream coming true, offers beckons of light for younger generations who being human enough, may learn invaluable lessons of life. It is said, "Youth is impetuous and age is discretion", which is better part of valour. The home with such combination would be a boon, an object -lesson for even second generation. Such home rippling with joy and love of children, respect and veneration for the aged ones, catholicity of understanding, would distinctly be a proud Indian home befitting our culture.

I am not oblivious of the fact that advanced old age brings in its train enfeebled body naturally. One may be prone then to blood-pressure, diabetes, heart-attacks, arthritis etc., etc. The preventive measures almost common to all, are exercises, 'asans', aerobic, walking etc.

I find, keeping oneself engaged in work of one's interest would also help keep one fit, away from worries, tensions, awareness of paucity of time for trivials gives a good sense of proportion. The nagging habit, becoming

over conscious regarding utterances of others and falling prey to casual remarks and things said in anger, would have then little impact, if one knew and practiced avoiding clash in family for nothing . A golden rule would be 'not to find faults with others, nor have an exaggerated' view about oneself. See merits in others and shortcomings in oneself.

Another important thing is to be a realist. In order to keep the pot boiling as you have rightly earned your age, you must have adequate bank balance, to lead a carefree old age. If have still more make your daughters partake your plenty to bring them at least somewhat on par with your son.

For all your sweat and hard-work you deserve to provide for leisure, good food, treatment, entertainment, pilgrimage, excursions and hobbies. In Indian conditions , son has a certain priority in your wealth under limits of regard shown, but daughters deserve for their filial leanings besides their abilities .These days girls out shine boys .If there is scope for charity don't miss it because society has elated and elevated you .

Every one knows population doubles itself in 25 years whereas land remains static. Investment soundly made there multiplies generally. Reap its harvest, intelligently.

Some of the voluntary agencies render service to the community at large e.g. Mahaveer International, Lions and Rotary and other caste organizations, or old age houses. Membership of them affords opportunities to serve camps and campaigns of polio-eradication,

corrections, eye- operations, founding of burn units, fighting floods and famines, running cattle-camps, providing awareness against diabetes, hypertension, heart-attacks, H.I.V. and AIDS, besides problems of arthritis, gouts of old age and abandonment of family. If we include in our humdrum priorities some of these social services , life would be worth – living, a solace of soul.

The greatest charge against old folks is of being reactionaries, against modern liberal and scientific outlook. Although I feel such charge can be levelled even against youth, making it amenable to one who does not have scientific temper, refuses to grow. Enlightenment is the key. The apparent symptoms of a highly conservative and reactionary outlook are– belief in caste –system and its hierarchy, committing sati, keeping women subjugated, illiterate and ill treated, demanding dowry and committing dowry –deaths, child-marriage, death–feasts etc, etc.

Some of the following may appear to be modern traits but are equally pernicious dead ill outlook as habits of drinking, over-eating, consuming fat and excessive calories, sedentary life –style; doing little physical work or exercises, walking, 'asans', pranayams, aerobics, squandering wealth in three W's (women, wine and wrangles). One who has to get rid of such dogmatic fixation as early as one can.

'Many things are wrought by prayer than thought of'. Meditation is a source of communication with God. It elevates our soul to a higher plane, charges it, with the inexhaustible power-house of all virtues, non–violence, truth, equality, forgiveness, detachment and contentment

,good for this and lives to come, as the soul is imperishable , no circumstance should sway or upset you as a rule.

Last but not least is to little restrain and warm up your behaviour in the family and outside it.

You have had your innings, established your identity; let the juniors – your son, daughter –in –law, daughters etc play their role. Promote, assist them if needed, be an onlooker and not an unwanted meddler .Your honest advices may mean your unwanted interference, bringing you down in estimation and esteem.

So also your behaviour outside .i.e. group of colleagues, be not of superiority, of picking up words of duels and debate. Remember, "You may win an argument but lose a friend". The aim should be to leave a group more friendly and joyous than you found it.

In short by engaging in things of personal interest and thereby helping family and society and thereby disengaging from things causing bitterness, you might leave this world a better place than you found it.

BOVINE SLAUGHTER AND BIRD FLU

It is really alarming to note that B.S.E. (Bovine-Spongiform-Encephalopathy); the dreaded 'mad-cow-disease' might imperil eleven million cows as reported in Hindustan Times, years earlier, besides that already 1,60,000 cows have been destroyed due to it. The British Health Secretary, Stephan Dorrel shocked the farming community by confirming that wholesale slaughter was one of the options should there is surge in cases of C.J.D. The human counter part of B.S.E.

It is however, important to note that there have been reports of about ten people, had been so far affected and or died. Here also scientific conclusion is lacking. The decision to slaughter live stocks enmass, smacks of frenized panicky, senseless, cruelty. It was being done in the context of main European countries banning import of beef. Total export of beef-annually from Britain is reported to be 2,48,000 tonnes of which major importers are France 80,000 tonnes and Italy 42,000 tonnes. In France the sellers are putting up hoarding of "French beef". Some 10,000 schools in England provide to their children, beef, in their meal and lacs of persons are using

it, the beef-industry is reported to be of four billion pounds, or equal to 22,400 crores of a rupees approximately or even more. Now owing to price rise it may have doubled.

The root cause of all this is, the pandering to the palate, of using beef as food derived through butchery. Great thinkers like Bernard shaw, H.G. Wells, Aldous Huxley have contributed much to the cause of vegetarianism but the habits die hard and the message is yet to reach vast sections of population. Otherwise cattle farming would not have degenerated into mainly a 'beef-industry' bereft of all human values from beginning to the end as butchery and beef go together. Enormous cruelty is involved in killing such a big animal as cow. The cows are fed with offal i.e. sheep brain affected by such disease. There is crisis in beef industry and buyers shun it. The prices of beef have crashed, although B.S.E. was there for about last twenty months wihtout taking epidemic form in human beings showing doubtful connection of transmission.

Lord Mahaveer's words are prophetic, "It is none else also than thyself, when you intend destroying it". One shudders to think if one would also resort to such ruthlessness on sample checking of AID's in human-beings. Nature's laws are retributive. This industry is no exception to Malthusian checks. When self- restraint is loosened positive-checks are bound to apply. "Slaughters for profits, madly followed by salughters for survival". This vicious circle should end. Already two world wars have taken their tolls of human misery mainly there. The world cannot afford any more. It is said that even if a day's

meet-diet in a week, is spared, it can save the world from the scourge of famine deaths yet occurring in several parts of the world.

Permanent soultion, therefore lies in vegetarianism and eschewing alcohol, as non vegetarian and liquor mutually feed one another. The adhoc measures can be the practice of patience pains-takingly, identifying each cow affected irreversibly. No reckles guillotining entire bovine beings as was done on sparrows in China, or through the decree of Stephen Dorrel to do away with millions of cattles would do. A new leaf can be taken from experience of South Africa and Kenya, where millions of cattles are immunised with vaccines against Rinder pest and Capriopox which took an enormous toll of cattle. Ironically the vaccine was tested first on cows of Surrey (England) .

In the age of liberalisation and globalization of trade the entrepreneurs of west as well as east and especially those of India should learn lesson from it to eschew slaughters of animals especially by not putting monsters of death i.e. multi crore mechanical slaughter houses and other- like projects of Kentuky Fried fowls for fast food. All animal lovers of the world may like to raise voice in support of the cause of animal citizens of the world for their right to live; as we care for right of human beings. Jimmy Phibbs a young vegetarian who opposed slaugher of calves, and who threw herself was crushed before a lorry to death. It is good if MCDonald's and Burger king, have now stopped serving hamburgers as it came in wake of mad-cow-disease after 15 months of the above incident. Yet the orthodox i.e. of so called 'scientific

temper' represented by'Spectator' writing in its editorial "Stay sane, eat beef" and the like of "roubst western values writing"- 'To conquer superstition we must now eat British beef" -are cynics ,making out bursts, which are patently perverse and suicidal.

Even raising poultry, on large-scale world-wide and consequent epidemic of birds flu recently has caused much loss of human life. It is becoming alarming and heaven knows that despite cruel wholesale destruction of fowls etc in millions, the fatal disease recurs frequently and in severity. World wide destruction of about half of rain forests and potable drinking water tables reaching, rock-botton, it is little wonder that resort to non vegetarianism be regarded as a taboo. It may be in near future, a cause of world war to caputre and own such sources of potable drinking water, as great powers make conflicts for scarce commodity as fuel oil, gas, etc.

It is high time they read the message writ large on the wall i.e. of 'vegetarianism', 'of peaceful coexistence' with our lower-fellow animal- beings, of, 'live and let live', not as inheritors but as trustees of the planet earth, where alone life survives.

A CASE FOR VEGETARIANISM

Mahaveer due to his severe austerities and consequently eliminating of passions achieved ominscience, observed, "One, who according to you, should be killed is non- else than thyself." Law of Karma is inescapable besides the fact that an englihtened soul feels akin for other. "आत्मवत सर्वभूतेषू'। शमित्तिमें सव्व भूएसु वैरं मज्झंन केणई"। "I have friendship with all beings, enmity with none". Bible says, "Do unto others,what thou do unto thyself".

The world has outgrown the stage of caveman, pastoral, living, it is reaching much higher civilized existence, has feeling for his other fellow- beings, recognizing the rights of animal citizen and realising duties to preserve and protect them thus protecting environment. This leads to nonviolence and vegetarianism. It is not only ethical and spiritual but imperative of finer- feelings for human- beings, distinguishing him from brutes; nay for his very survival.

In west also therefore great thinkers like Bernard Shaw, H.G. Wells, Aldous Huxley and host of others started movement in favour of vegetarianism. Wells said, "To be vegetarian is to be civilized." Shaw said, "If I were

an omnipotent despot I would have arranged such a state of affairs as to ban fish, fowl, meat intoxicants..... as to free my subjects of them". In India Rukamani Devi Arandale established Animal-Welfare-Board and later 'Karuna-Mandals' in every school in a number of states.

Man has evolved much and rightly a galaxy of personages volunteered for non-violence and vegetarian diet. Some of those eminent persons inter-alia were Mahaveer, Buddha, Nanakdeo, Kabir, Sant- Tukaram and recently Gandhi, Einstein, Charles-Darwin, Leo-Tolstoy, Srimad Raichand, Walter--Newton. One whose hands are soiled in blood and butchery of fellow-creatures cannot pray God for piety and mercy. There are in India over 36000 registered slaughterhouses and other ones, where millions of sheep, goat and lakhs of buffaloes, cows, etc are slaughtered every year, driving them to brink of extinction not faraway. Yet some give strange arguments deludedly or misguidedly.

Life is there in water, air and plants. How then can we avoid taking life? It is true, but such invisible bacterias, microbes or unicellular or other-life is more or less neither saved nor lost in our process of living as compared to willfully slaughtering animals like us of flesh, blood and feeling, as cow, goat, pig etc. for palate. Unicellular beings do not possess mind. Lacs occupy hardly a point of needle.

It is also contended that unless animals are killed they would fill entire earth. It is a lie, in present age where in big animal-farms they are fed corn wheat etc in ratio of 8 Kg cereals to derive 1 Kg. of meat. It is therefore,

claimed that if non-vegetarians even spare eating meat for a day or two every-week, the grim famine and starvation deaths, could be banished from earth. Callous waste and unimaginable cruelty too could be abolished. As at times diseases like-mad-cow, due to perhaps feeding them unnaturally on remains of meat etc. of abattoir or avian-flu in birds, and then purposely exterminating them in millions, wreck havoc to them and in turn to us. It may be nature's way of wreaking vengeance through earthquakes, World Wars, occasional Tsunamis, Catrina etc. compelling us to pay heavy price for men and materials. especially of places notorious for cruelties and killing the helpless creatures.

Non-vegetarian diet cannot be supported even on health grounds as well. According to Dr. David Snow Down, meat diet promotes death in form of diabetic, atherosclerosis, thickening of blood-vessels, T B., anemia, influenza, pneumonia etc. Fish and chicken eggs are part of meat diet. Eggs particularly are notorious for high-cholestrol. W.H.O. stating almost 160 diseases associated with meat diet. Animals usually suffer from tapeworms and infecting others. For all these reasons and barbarity with which meat is derived, might one has seen a buffalo tied about all four legs, lifted invertedly by a crane at a height and guillotined under sharp blades, blood oozing out in all directions still who can then eat its meat? Only if he or she is slave of habit, or intoxicated; as drinking and non-vegetarian food usually go together, jeopardizing health doubly.

It is yet said by some people that meat is of higher biological-value. The lysine and other amino-acid content

of protein can be obtained alternatively from one or two-spoonfuls of milk or curd which is such a humane way of 'live and let live', befitting human beings using discretion, the greatest gift of God to man alone.

In criminal Law mensrea determines the guilt, so it is in spiriutal world. If we act cautiously to avoid killing beings, or hurting them physically or mentally while walking, talking, eating, speaking, lifting or placing or disposing things and yet if death etc. occurs we are not guilty of killing; as a doctor might cause death of a patient while fully cautiously and ably acting to save him, thus escapes guilt. This logic is based on Jainism and probably found in all rational faiths. There is no intentional killing-'Bhava-Himsa', although it may result in death by 'Dravya- Himsa'.

In contrast to it, is positive killing of beings, say five sensed, down to even two sensed i.e. from human beings, elephant etc. to small yet visible insect etc because we feel for taking their lives in the scale of evolution, due to their akinness of flesh, blood even feelings as our own. Thus non vegetarianism negates truth and non-violence. Every one wants to live happily. Thus bible also says,"You shall not kill", Janism says,"Live and let live".

Cruelty and killing even in name of some old faiths by scuttling any animal, or by maiming it or wounding and piercing by spears and then slicing it alive for killing, or cutting it in a stroke to terminate its life, negates truth of clinging to life by every one. So also in abattoirs and other places killing of animals for food and trading in it,

invites wrath, vengeance and such binding of lasting karma of enmity and sure invitation to hell. We earn pleasure or pain by doing corresponding acts. It is often seen-violence breeds violence, murders resulting in chain reactions.We have witnessed two world wars and it is said that after the third world war, any would be fought it would be by stones.

It is rightly said 'अभयो तुज्झ अभयदाय भवाहिय अणिच्चे जीव लोगम्मिकिंहिंसाए पसज्जसि' (उत्तराध्ययन' 18/11) ।

"When you are keen to be blessed with secured life for your self, in this mortal world then why do you indulge in violence to others? Why not you too, bless others with fearless life". ''एवं खुनाणिणें सांरजंण हिंसई किच्चणं''। ("Aivam khu nānino sāram jam no Hinsat Kiccanam"). "The test and essence of being really learned and wise, is to eschew violence i.e. killing beings". (Surta 11/10).

जैन दर्शन एवं आधुनिक विज्ञान

जैन दर्शन एवं आधुनिक विज्ञान

वर्तमान महान भौतिक वैज्ञानिक स्टीफन हॉकिन्स ने अपनी पुस्तक "काल के संक्षिप्त इतिहास" के अध्याय, "ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति एवं भविष्य" में लिखा है, "जब तक ब्रह्माण्ड प्रारम्भ हुआ हमारी कल्पना थी कि इसका कोई रचयिता या नियामक है, लेकिन यदि ब्रह्माण्ड स्वतः सम्पूर्ण है और इसकी कोई सीमा नहीं है तब तो यही स्पष्ट है कि इसका न कोई आदि है न कोई अंत है और इसमें रचयिता की क्या भूमिका या कार्य है?" महान वैज्ञानिक आइन्स्टीन ने भी इसलिए कहा, "ईश्वर के पास कोई काम नहीं रहा क्योंकि प्रकृति स्वयं अपने ही नियमों से बंधी हुई है।"

जैन दर्शन ने हजारों वर्ष पूर्व ही कह दिया था कि सृष्टि का कोई रचयिता नहीं है। प्रकृति स्वचालित और स्वायत्त व्यवस्था वाली है जो अपने ही नियमों और कायदों की पालना करती है। जैन–दर्शन ने यह भी प्रतिपादित किया कि ब्रह्माण्ड अनादि और अनंत है जबकि दुनिया के अन्य धर्म जो जैन और बौद्ध के पश्चात् आए जैसे यहुदी, ईसाई, इस्लाम आदि मत, सृष्टि के रचयिता के रूप में ईश्वर को मानते हैं। सेन्ट ऑगस्टीन ने तो सृष्टि को, अपनी पुस्तक "जैनेसिस" में 7000 बी.सी. वर्ष पुराना ही माना जो कदाचित 12000 वर्ष पहले "हिमयुग" के अनुसार समझा होगा।

आधुनिक विज्ञान का स्पष्ट कथन है कि किसी ईश्वर या खुदा द्वारा ऐसी सृष्टि की रचना नहीं की गई न कोई ब्राह्माण्ड

या पृथ्वी कुछ हजार साल पहले बनें हैं वरन् यह भौतिक–शास्त्र अनुसार भी लगभग अनादि अनंत है। क्योंकि सृष्टि का विस्तार लगातार जारी है और वो इतना विस्तृत है कि कल्पना से भी परे है। एक अनुमान के अनुसार लगभग आठ दशमलव तीन मिनट में नौ करोड़ मील की दूरी से सूर्य की रोशनी पृथ्वी पर आती है। सूर्य एक तारा है और पृथ्वी से सूर्य से निकटतम् तारों की रोशनी लगभग चार प्रकाश वर्ष यानी लगभग 23 करोड मील दूर है। ऐसे एक सौ करोड़ तारे एक–एक निहारिका में हैं और ऐसी 200 अरब निहारिकाऐं हैं। अतः निःसन्देह सृष्टि अन्तहीन विस्तार वाली है। हॉकिन्स के अनुसार एक अंक के पीछे चौबीस शुन्य लगाये जाने तुल्य मीलों में यह दूरी है। जैन दर्शन ने अतः हजारो वर्ष पूर्व ही कहा कि ब्रह्माण्ड अनंत विस्तृत है जो आज वैज्ञानिक सत्य है।

जहाँ तक जैन दर्शन के अनुसार कि पृथ्वी अनादि है, अनंत काल से है,वहां स्वयं स्टीफन–हॉकिन्स नें भी अपनी पुस्तक के प्रारम्भिक वाक्य में इसे अनादि माना है । फिर भी हॉकिन्स ने अपनी उसी पुस्तक में यह कथन किया है कि लगभग 1400 करोड़ वर्ष पहले महा विष्फोट (Big Bang) हुआ और तब से अब तक सृष्टि का विस्तार चल रहा है। यह अवधि कोई अंको वाली नहीं लगती वरन् खगोलीय दूरियों की तरह अनंत समय वाली ही लगती है और विस्तार अभी चालू है। स्वयं अन्य वैज्ञानिक जैसे Roger Penrose ने लिखा है कि ऐसे विस्फोट केवल एक मात्र अनोखी घटना नहीं है, वरन् ऐसे विस्फोट दोहराते रहे हैं। जैन दर्शन ने भी ऐसे अनंत काल की धारण की है जैसे एक अवसर्पिणी काल में छः आरे हैं जो 1 सुखम–सुख चार कोटा कोटी, 2. सुखम–तीन कोटा कोटी, 3. सुखम–दुखम दो कोटा–कोटी वर्ष, 4. दुःखम सुखम 1 कोटा– कोटी में (42000 वर्ष कम), सभी कोटा – कोटी सागरोपम हैं , पांचवा दुखम आरा और छठा दुःखम–दुःखम आरा ये दोनों 21000–21000 वर्ष के हैं । ये सभी प्रथम चार और शेष दो मिलकर दस कोटा कोटि सागरोपम

हैं। 20 कोटा कोटी का एक सम्पूर्ण काल चक्र है क्योंकि सागरोपम वह संख्या है जिसे अनंत माना हैं । वैज्ञानिकों के अनुसार 14000 दस लाख करोड़ वर्ष पूर्व हुआ महा विस्फोट भी अनंत काल के समान ही है।

वास्तव में यह विचित्र लगता है कि महा विस्फोट किसी एक बिन्दु से हुआ और उसमें से समस्त सृष्टि, जो विविध वैचित्र्य प्रकार की है जिसमें लाखों प्रकार के रसायन, केमिकल्स, ग्रहों, सितारों, निहारिकाओं एवं लाखों जातियों के जीवों, वनस्पतियों की उत्पत्ति हुई। अनेक से एक बीज रूप में होना अतः ज्यादा व्यावहारिक लगता है न कि एक से अनेक। जैनों के अनेकांत एंव विज्ञान के क्वांटम–सिद्धान्त से भी यही अपेक्षा लगती है।

सृष्टि के मूल पदार्थो (द्रव्यों) के बारे में भी जैन–दर्शन एवं विज्ञान के तुलनात्मक अध्ययन से इनमें समानता अधिक दृष्टिगोचर होती है। जैन दर्शन के अनुसार सृष्टि निर्माण के षट–द्रव्य हैं। जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश एवं काल ये सदा थे, सदा रहेंगें और अपने मूल स्वभाव से विचलित नहीं होंगे। हालांकि उनके पर्याय बदलते है। आज भौतिक विज्ञान सिवाय जीव–आत्मा के अलावा अन्तरिक्ष, आकाश, काल, पुदगल को उसी रूप में मानता है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय को मोटे रूप से ऐसे प्रभाव को मानते हुए भी कुछ विशेषता युक्त मानता है। स्टीफन– हॉकिन्स ने कहा कि विस्फोट के पहले कुछ नहीं था और यदि था तो वह भी सब नष्ट हो गया। सांमान्य बुद्धि को यह बात नहीं जंचती कि महा–विस्फोट के पहले अन्तरिक्ष नहीं था या पुद्गल न था, या काल नहीं था। लेकिन काल चक्र की धारणा सहित यह ज्यादा उचित लगता है कि अनंत काल से ये षटद्रव्य थे , केवल जहाँ विज्ञान के अनुसार आत्मा के अलावा धर्मास्तिकाय जो गति–तत्व है, चलने फिरने में सहायक हैं एवं इसके विपरीत अधर्मास्तिकाय जो स्थिति–तत्व है , वस्तुओं को आराम एवं स्थिर करने में सहायक हैं। उसे आधुनिक

भौतिक–वैज्ञानिक भी इस रूप में मानते हैं कि कुछ ऐसी स्थिति तत्व की शक्तियाँ हैं– जैसे गुरुत्वाकर्षण, अतिप्रबल, परमाणु–शक्ति, विद्युत, चुम्बकीय शक्ति, क्षीण, प्रबल शक्तियाँ आदि एवं इसके विपरीत डार्क–मेटर, डार्क–एनर्जी, रेडियेशन है जो 'गति–तत्व' के रूप में कार्य करता है। वहीं गति–तत्व से सारा ब्रह्माण्ड यहाँ तक कि हमारी तैजस, कर्म एवं कार्मण कर्म, भाषा, मनोवर्गणा शरीर आदि सांसारिक आत्मा के साथ उसके मृत्यु पर अन्य जीव में प्रवाहित होती हैं। जगत का सतत् विस्तार हो रहा है जैसे जोडरल बैंक के विशाल दूरबीनों से स्पष्ट हुआ है। हाल ही में अप्रेल 2 सन् 2012 के 'टाईम्स ऑफ इण्डिया' के पत्र के पृष्ठ आठ पर वैज्ञानिक प्रमाणों से डार्क–एनर्जी तत्व का कार्य गुरुत्वाकर्षण शक्ति को क्षीण कर ब्रह्माण्ड को विस्तारित करना माना है। वही 'स्थिति–तत्व' उस विस्तार की गति में बाधक तत्व की तरह कार्य करता है। जैन दर्शन इन दोनों शक्तियों को ब्रह्माण्ड निर्माण के मूल तत्वों में मानता है जिन्हें वैज्ञानिक आधार भी वर्तमान में प्राप्त है।

शायद ही किसी धर्म ने इन द्रव्यों को पहले जगत का निर्माता एवं अनादि काल से अस्तित्व में माना हो, जबकि वे ईश्वर को ही नियामक मानते थे। विज्ञान एवं दर्शन की अत्यन्त निकटता के साथ ही साथ विज्ञान को अपने स्वनिर्धारित भौतिकता के सीमा क्षेत्र को लांघना होगा और 'आत्म–तत्व' जिसे वे अभी नहीं मानते उसे और अधिक खोज एवं विनय, विवेक से इसके अनुसंधान में दर्शन की तरह बढ़कर एक दूसरे से लाभान्वित होना पड़ेगा।

विज्ञान के लिए भी अभी तक यह पहेली है कि पुद्गल एवं आत्मा इन दोनों का निर्माण किस तरह हुआ। मुख्य रूप से किस तरह अजीव पुद्गल में एक अन्य द्रव्य 'जीव' की उत्पत्ति हुई, कैसे उसमें चेतना आई और यहाँ तक कि आत्मा का विकास करते–करते मनुष्य जीवात्मा से, परमात्मा तक बनने की क्षमता पा सकता है। ऐसी क्षमता पूर्व में अनंत जीवों नें पाई है, और यही

क्रम रहेगा। इसलिये इस दृष्टि से विज्ञान एवं दर्शन में विद्रोह, नहीं वरन् समानता है, सहयोग है। आईन्सटीन ने इसलिए लिखा, "धर्म के बिना विज्ञान लंगड़ा है और विज्ञान के बिना धर्म अन्धा है।" उन्होंने यहाँ तक कहा कि, "मैंने भौतिक पदार्थों का अध्ययन किया है और मुझे, और जन्म मिले तो मैं इन सबको जानने वाले का अध्ययन कर सकूं।" W. Heisenberg ने भी इसलिए भौतिक–शास्त्र और दर्शन–शास्त्र पर लिखा। Feyman ने भौतिक– नियम की प्रकृति के बारे में लिखा। वैज्ञानिक एवं दार्शनिक डॉ. डी.एस. कोठारी ने 'पूर्व का दर्शन' एवं 'क्वांटम सिद्धान्त' (कान्टम मैकेन्किस) पर लिखा है। विनोबा जी ने भी यहाँ तक कहा कि "वर्तमान विभिन्न धर्म नींव मात्र है, जो कई बार भ्रमपूर्ण है एवं पूजा–पाठ के अलग–अलग प्रकार पर आश्रित हैं। अन्धविश्वास का भी सहारा लिया जाता है जबकि वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर जीव मात्र की एकता उनके संरक्षण, अहिंसा, अनेकांत जैसे सिद्धान्तों की वैज्ञानिक खोज के आधार पर इनमें एकरूपता लानी होगी।"

सन् 1960 की दशाब्दी के बाद भौतिक–विज्ञान में एक क्रांति आई उसके पूर्व भौतिक विज्ञान के नियमों में अटूटता निश्यचात्मक सिद्धान्त की प्रमुखता थी। जैसे 98 पदार्थों की खोज, जिसमें प्रत्येक का निश्चित अणुभार पाया गया उदाहरणार्थ जैसे हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, पारा, सोना, चांदी इत्यादि का अणुभार निश्चित है। गुरुत्वाकर्षण–नियम अपरिवर्तनीय एवं निश्चित है। लेकिन 1960 के बाद अणु के विभाजन पर न केवल अणु में और लघु–अणु , इलेक्ट्रोन, प्रोटोन, न्युट्रोन पाए गए वरन ऐसे भारविहीन सूक्ष्मतम पार्टीकल सैक्ड़ों पाये गये जो पुद्गल होते हुए भी अनेक–अनेक गुणधर्म युक्त थे। ये सूक्ष्मतम् 'नेनो' परमाणु इतने सूक्ष्म है कि वे एक इंच के दस लाखवे हिस्से के दस लाखवे के बराबर हैं। वैज्ञानिकों ने प्रयोग द्वारा पाया कि सूर्य की रश्मि में न केवल सूक्ष्मतम् परमाणु पार्टिकल फोटोन कण हैं वरन्

एक लहर (Wave) के रूप में भी है , इस द्विगुणात्मक धर्म के कारण प्रयोग से यह पाया कि किसी एक डिब्बे के दो भाग कर उसके बीच में विभाजन की दीवार में छेद किया जाए और फोटोन को प्रवेश किया जाए तो डॉ. डी.एस. कोठारी के अनुसार वह डिब्बे के एक भाग A में भी हो सकता है या अन्य भाग B में भी हो सकता है, A में होते हुए भी A में नहीं हैं इसी तरह B में होते हुए भी B में नहीं है। अथवा A और B दोनों में नहीं हैं।

अनेकांत के सिद्धान्त के अनुसार भी वस्तु के अनेक गुणधर्म के अनुसार सप्तभंगीरूप में अस्ति, नास्ति, दोनों का सम्मिश्रण तथा अव्यक्त, अस्ति अव्यक्त, नास्ति अव्यक्त, अस्ति–नास्ति दोनों अवयक्तव्यं, स्थितियाँ बन सकती है व भौतिक–विज्ञान के क्षेत्र में अतः W. Heisenberg ने अनिश्चतता का नया सिद्धान्त 'क्वांटम मैकेनिक' में दिया। अन्य वैज्ञानिक Neilbohr ने एक उसी सिद्धान्त को और बढ़ाते हुए दूसरे का पूरक सिद्धान्त दिया। क प्रत्यक्ष रूप में विरोधी गुण धर्म वाले वास्तव में एक दूसरे के लि आवश्यक एवं पूरक है, जैसे स्त्री–पुरूष, दिन–रात, श्रम औ विश्राम आदि। विरोधी–धर्म वाले भाव एवं वस्तुए पूरक हैं। जै दर्शन का भी यही संक्षेप में अनेकान्त सिद्धान्त है, जैसा वि तत्वार्थ सूत्र के अध्याय 5 सूत्र न 5.31 में दर्शाया है–**"अर्पिता अर्पिता सिद्धे"**– अर्थात जो प्रकट कहा गया है अथवा अप्रक रह गया है प्रमुख पक्ष और गौण, निश्चय और नय, दोनों मिलक ही सत्य बनता है । "उत्पाद व्यय ध्रोव्य युक्तम् सत्" अर्थात् एक साथ ही उत्पाद, व्यय अर्थात क्षरण एवं ध्रुव रूप से यानी शाश्वत का संयोग सम्मिलित रूप से सत्य है। शुभ प्रभावों का उदय , अशुभ का क्षय एवं ध्रुव रूप में आत्म ज्योति ये तीनों का योग साथ–साथ है।

जैन दर्शन में बहुत पूर्व ही परमाणु, अणु, स्कन्ध जो अजीव (पुद्गल) पदार्थ हैं ; जिनके मूल गुण, रस, वर्ण, गन्ध, स्पर्श आदि हैं और उसके अनेकानेक भेद है, जान लिये थे, इसकी पुष्टि भी

वैज्ञानिकों ने हाल में की है। ऐसे अणु से भी अति सूक्ष्म सैकड़ों परमाणु हैं जिनमें से 60 ऐसे परमाणुओं को चिन्हित किया जा चुका है। 61 वां परमाणु (Higgsboson) God's Particle को भी पहचानने के लिए विश्व भर के वैज्ञानिकों ने दो जगह प्रयोग किए हैं। स्विट्जर लैण्ड में मीलों लम्बी गहरी सुरंग में प्रोटोन को सूर्य की किरणों की गति से प्रहार कर चूर–चूर कर वह स्थिति, कृत्रिम रूप से उपस्थित की जो Big- Bang के समय बनी थी। उससे लगभग ऐसे उपरोक्त Particle की जांच और खोज संभव हो सकी है जो अन्य भारविहीन Particles को सघनता एंव भार (Mass) प्रदान करता है। कुछ Particles वाहक के रूप में भी कार्य करते हैं। जैसे फोटोन, ग्रेवियोन, क्वार्टज, ग्लुओन इत्यादि। संक्षेप में जैन दर्शन भी यही कहता है कि जीवात्मा भी मृत्यु के समय अपने साथ पुराने कर्मों का फल ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय इत्यादि आठ कर्म एवं उनके साथ भारविहीन जीवन धारण के अन्य कर्म पुद्गल–आहार, तैजस, मन, भाषा, श्वासोच्छवास आदि वहन कर ले जाती है और नया जन्म धारण करती है।

भौतिक–शास्त्र की नवीनतम खोज के अनुसार इन सूक्ष्मतम परमाणुओं की आपस में संघटन (Fusion) की क्रिया के अधीन एकीकरण होता है जो प्रबल न्यूक्लीयर शक्ति के अधीन होता है। उनसे प्रोटोन, इलेक्ट्रान, न्यूट्रोन बनते हैं और उसी शक्ति फलस्वरूप अणु का निर्माण होता है, कई अणु मिलकर स्कन्ध बनते हैं एवं विद्युत–चुम्बकीय–शक्ति से खनिज–द्रव्य, चट्टानें, लाखों रसायन तथा गुरुत्वाकर्षण एवं चुम्बकीय शक्ति के अधीन बड़े ग्रह, सितारे एवं निहारिकाएँ बनीं। विस्फोट के समय जब तापक्रम लाखों–लाखों डिग्रियाँ था वह एक हजार करोड़ वर्ष में गिरकर कुछ हजार डिग्री तक पहुंचा तब करीब 400 करोड़ वर्ष पूर्व पृथ्वी का निर्माण हुआ एवं एक कोशीय जीव त्रस एवं स्थावर इत्यादि शुरू होने में फिर 300 करोड़ वर्ष और लगे। कुछ अधिक

विस्तार से इस लेख में विज्ञान की रोशनी में इसका उल्लेख करेंगे।

जैन दर्शन में निगोद की धारणा है जो इस तरह विज्ञान की खोज से काफी मिलती जुलती है। भू–मण्डल पर एक कोशीय जीव विकास होने की कहानी उतनी ही पुरानी है जो समुद्र एवं पृथ्वी के अवशेषों (Fossils) से प्राप्त होती है। ऐसे जीवों को भी जैन दर्शन में निगोद के सूक्ष्तम जीव माना है। जीव कर्माधीन होने के कारण इन्हीं सूक्ष्मतम जीव के रूप में परमाणु, एक श्वास क्रिया में अनेक बार जन्मते हैं, मरते हैं ।यह क्रम अनंत काल तक अर्थात् करोड़ों वर्ष चलता रहा है। फिर जीव निगोद से वनस्पति अवस्था में आता है, जिससे एकेन्द्रिय जीव–पृथ्वीकाय, अग्निकाय, वायुकाय, स्थावर के रूप में बनते हैं।यही नहीं, तत्पश्चात् त्रस जीव–वनस्पतिकाय के या अन्य सूक्ष्म कोशीय जीव के रूप में जैसे वाइरस, बैक्टीरिया, माईक्रोब से अधिक कोशीय बनने में और करोड़ों–करोड़ों वर्ष लग जाते हैं और वहाँ की यातनाएँ अकाम निर्जरा के रूप में भोगकर जीव उच्च–उच्चतर श्रेणी तक पहुंचता है। जिससे बेइन्द्रीय लट्, कृमि, घुण, सींप–शंख, तेईन्द्रिय जैसे चिंटी, जूं, लीख, चतुरिन्द्रिय–मक्खी, मच्छर, बिच्छु तक पहुंचता है।

इसी क्रम में कर्म निर्जरा उत्तरोतर होने पर, पंचेन्द्रिय जीव राशि को प्राप्त करता है। इस प्रकार सृष्टि में विविध जातियों के पशु–पक्षी आदि अपने पुण्योपार्जन के अनुसार बनते हैं। पंचेन्द्रिय में भी संज्ञी (मन) या असंज्ञी, सम्मूर्च्छिम मनुष्य होते हैं, जैसे स्वेद या वीर्य में रहे शुक्राणु जो एक भोग में लाखों करोड़ों की संख्या में (एक दो छोड़कर) मर जाते हैं। जीव कर्माधीन होने से लाखों भव पाकर मनुष्य भव, उत्तम कुल, धर्म में श्रद्धा एवं चारित्र पालन पर कर्मों का उपशम, क्षयोपशय कर पाता है। जीव के विकास की कहानी परमाणु सम भौतिक एवं जीव द्रव्य के योग से शुरू होती है। अनन्त काल में उत्तरोत्तर बढते–बढ़ते मनुष्य की योनि प्राप्त

करता है। "योग उपयोग जीवेषु" (5:44, तत्वार्थ सूत्र) जीवात्मा में काया, प्राण व आत्मा विद्यमान है।

एक ही समान कर्मों के समूह को कर्म–वर्गणा कहते हैं। इनमें से चार वर्गणाओं – 1. अणु वर्गणा 2. संख्यात अणु 3. असंख्यात अणु और 4. अनंत अणु वर्गणाओं के सहयोग से सम्मिश्रण, संघात, भेद आदि से भौतिक ब्रह्माण्ड (Physical-Universe) की रचना हुई जिसका उल्लेख किया जा चुका हैं। अब मुख्यतः वे वर्गणाएं जो वास्तविक जगत में जीव विकास के लिए आवश्यक हैं – वे पांचवी–आहार–वर्गणा, सातवीं–तैजस–वर्गणा (शरीर में पाचन क्रिया एवं उसको पचाने वालीं), नवीं–भाषा–वर्गणा, ग्यारहवीं– मनोवर्गणाएं हैं। यहाँ कार्मण–वर्गणा का संक्षिप्त उल्लेख आवश्यक है। समस्त संसार कार्मण–वर्गणा के आठों काय–ज्ञान, दर्शन, साता, असाता,–वेदनीय, मोहनीय, नाम, गौत्र और अन्तराय कर्मों से खचाखच भरा हुआ है। कार्मण–वर्गणा अपने भाव एवं कार्य के अनुसार ऐसे कर्म–पुदगल ग्रहण करती हैं और तद्नुसार ही फल देती हैं। इसमें 17 नम्बर की प्रत्येक शरीर वर्गणा भी सम्मिलित है। जिसका तात्पर्य एक शरीर में एक ही जीव है। अन्य जीव उस पर आश्रित नहीं है। इनमें छठी वर्गणा 10 वीं एवं 12 वीं अग्राह्य है, जिसका तात्पर्य है कि, जीवन के कर्मबन्ध के साथ उनसे छुटकारा भी संभव है। प्रथम चार वर्गणाओं की तरह 19 वीं वर्गणा निगोद, 21 वीं सूक्ष्म निगोद, सृष्टि की भौतिक रचना में सहायक है।

विज्ञान के जगत में डार्विन की खोज जो प्राणियों के अवशेष (फोसिल्स) कंकाल, चट्टानों में दबी आकृतियों (फुट प्रिन्ट्स) के गहन अध्ययन एवं प्रमाणों पर आधारित थी इससे विदित हुआ कि लगभग चार सौ सत्तर करोड़ वर्ष पूर्व हमारी पृथ्वी बन सकी। उसके लगभग 1000 करोड़ वर्ष पूर्व बिगबेंग महाविस्फोट हुआ; और शनैः शनैः निहारिकाएँ, सितारे, ग्रह आदि बने और दस सौ

करोड़ वर्ष लग गए। उसके पश्चात् सूर्य में वर्तमान तापक्रम 4000 सेंटीग्रेड होने पर तब भी पृथ्वी एक गैस का गोला थी। उसे आज के अनुकूल तापक्रम बनने में इतनी दीर्घ अवधि लगी। अन्यथा 1700° डिग्री से.ग्रेड तक पृथ्वी पिघली हुई द्रव्य थी , 700° सेन्टीग्रेड तक पृथ्वी पर सात मील की पपड़ी बनीं। साठ हजार वर्षों तक वर्षा होने से तापक्रम गिरा। समुद्र बने। एमिनोएसिड, न्यूक्लुआई–एसिड, यूरीया, प्रोटीन पदार्थों के रसायन से समुद्र में एलगी, बेक्टीरिया जैसे सूक्ष्मतम जीव निर्माण के प्रारम्भिक कारण बने।

जब निगोद में अनन्त–काल तक जीव बादर–निगोद एवं सूक्ष्म निगोद के रूप में जीव रहे है एवं अनंत काल तक अकाम–निर्जरा उग्रतम (तापक्रम) आदि सहन कर एक कोशीय जीव बने। दीर्घ अवधि एवं सूक्ष्मतम् वनस्पति एवं अन्य जीव के निर्माण की अवधि की तुलना में काफी हद तक विज्ञान सम्मत जान पड़ती है। कहाँ 14000 (दस लाख वर्ष पूर्व महा विस्फोट एवं उससे शनैःशनैः भौतिक विश्व की रचना मय जीवधारण करने वाला मात्र पृथ्वी ग्रह, स्वयं उसके एक हजार करोड़ वर्ष बाद बना। जो आज से लगभग 470 करोड़ वर्ष पूर्व बनी तथा समुद्र में प्रथम बार एक कोशीय जीव लगभग 200 करोड़ वर्ष पूर्व बना)।

जैन दर्शन में दी गई अवधि एवं निगोद में पड़े रहने की जीवों की अवधि अनंत काल के रूप में काफी समानान्तर लगती है। एक–कोशीय के दो भेद एलगी एवं बैक्टीरिया बनने में करोड़ों वर्ष बीत गये। निगोद से फिर जीव समुद्र एवं पृथ्वी पर रहने योग्य 40 करोड़ वर्ष पूर्व बने। 20 करोड़ से 7 करोड़ वर्षों की अवधि तक धरती पर रेंगने वाले बड़े जीव मगर, डाइनोसर का राज्य रहा। जिनमें स्तनधारी एवं बच्चे थैली में रखने वाले मेमल भी शामिल थे। लेकिन वातावरण की प्रतिकूलता वश डाइनोसर लगभग इन 13 करोड़ यानि 1300 लाख वर्ष के काल में विलुप्त हो गये। 7 करोड़ वर्ष पूर्व से 4 करोड़ पूर्व के बीच कई और

प्रकार के पक्षी एवं जीवों का विकास होते हुये प्राईमेट 4 करोड वर्ष पूर्व आये जो मानव एवं बन्दरों के पूर्वज थे। वर्तमान मनुष्य (होमोसेपियन) लगभग 20 लाख वर्ष से वर्तमान स्वरूप में विकसित हुआ। मानव सभ्यता का लिखित रिकॉर्ड लगभग मात्र 7000/8000 वर्ष पुराना है। डार्विन की खोज एवं जैन दर्शन में निगोद से एकेन्द्रिय बेइन्द्रिय इत्यादि से कर्म निर्जरा के फलस्वरूप मनुष्य जाति में जन्म भी लगभग अकल्पनीय वर्षों की दीर्घ अवधि में ही संभव है। वास्तव में यही यात्रा एक रूप से अनंत काल की यात्रा है। जैसे जैन दर्शन में भी कहा गया है।

खेद है विज्ञान जब दीर्घ अवधि तक यानी लगभग 100–200 वर्ष पूर्व तक भी वनस्पति में भी जीव नहीं मानता था, एवं हाल की खोज से विज्ञान को विदित हुआ कि पेड़ पोधों में भी जीव है, जो अपना खाद्य जड़ों सें खींचकर पत्तों तक पहुंचाते हैं और हरे पत्ते सूर्य की रोशनी में Photosynthesis प्रक्रिया से अवशोषित पदार्थों का पाचन करते हैं और बदले में ऑक्सीजन का उत्सर्जन करते हैं। यहाँ से वनस्पति में भी जीव बनता है। कहते हैं एलगी समुद्री काई हरित एक कोशीय वनस्पतिकाय से ऑक्सीजन का सर्वप्रथम प्रादुर्भाव हुआ। अब विज्ञान पौधों एवं अन्य जीवधारियों में जीवन को मानता है। जीव विकास की इस कड़ी में हमने वर्गणाओं में आहार–वर्गणा, मन–वर्गणा, श्वासोंच्छवास–वर्गणा, तैजस–वर्गणा आदि का वर्णन किया है। इनमें सबसे महत्वपूर्ण मनो–वर्गणा है। मस्तिष्क के विकास की मनुष्य के लिए विशेष महत्ता है। विज्ञान के अनुसार भी किस तरह लगभग 4 करोड़ वर्ष पूर्व बन्दरों (ape) एवं मनुष्यों के एक ही पूर्वज थे लेकिन दो भागों में धीरे–धीरे विभाजित होते हुए एक शाखा ने जंगलों से बाहर रहना शुरू कर शनैः शनैः आज के Homosapien वर्तमान मनुष्य की तरह सीधे लम्बवतः चलने वाले इंसान बनें। जिनका दिमाग विकसित था। मनुष्य की लाखों लाखों कोशिकाओं में डी. एन.ए. के साथ 'जीव–तत्व' भी है। हाल ही नोबल पुरस्कार

विजेता श्री वैंकटरमन वैज्ञानिक द्वारा यह प्रमाणित किया गया है। जैन दर्शन में भी पूर्व में भी यह कहा है कि आत्मा का आयतन शरीर के बराबर है क्योंकि वह शरीर के अणु अणु में व्याप्त है।

मनुष्य में एक विशिष्टता लोक संज्ञा है। अर्थात वह अपने पूर्वजों के द्वारा हर क्षेत्र में दिए गए ज्ञान को न केवल सुरक्षित रखता है वरन् उससे लाभान्वित होकर अपने पूर्वजों के कंधों पर चढकर उत्तरोत्तर वृद्धि करता जाता है। "परस्परोपग्रहो जीवानाम" (तत्वार्थ सूत्र , 5:21) जीवात्माऐं अपने सद्ज्ञान, भावना एवं चारित्र से एक दूसरे का उपकार करती हैं। हमें अपने पूर्वजों एवं वर्तमान महापुरूषों से प्रगति पथ मिलता है। मनुष्य की भौतिक समृद्धि एवं विकास का ये मूल मंत्र, उसके मस्तिष्क के विकास के आधार पर है। जो चेतना के विकास के आधार पर है इससे उसमें न केवल चेतना का विकास हुआ, वरन् चैतन्य का, आत्मा का, अर्थात् सद् (ज्ञान--दर्शन--चारित्र) का भी विकास हुआ। मनीषियों ने 'जीओ और जीने दो' का मार्ग सिखाया। अहिंसा, सहअस्तित्व, अनेकान्त, सेवा, नैतिकता को स्वयं वरण कर अन्यों को भी उस मार्ग पर चलना सिखाया। जैन दर्शन इस सम्बन्ध में विशेष उल्लेखनीय है क्योंकि इसने प्रकृति के उन मूल सिद्धान्तों को भी धर्म में उतारा है जिनसे न केवल मनुष्य ही अपनी प्रगति कर सकता है वरन् समस्त चराचर विश्व लाभान्वित होता है।

मनुष्य ने अपनी भौतिक उन्नति के लिए प्रकृति के साथ घोर कुठाराघात भी किया है। लगभग 40 प्रतिशत से अधिक वर्षा वनों की कटाई की जा चुकी है। कई दुर्लभ प्रजातियाँ, वनस्पतियों मनुष्यों के द्वारा विवेकहीन लोभ, अर्थ--लाभ एवं स्वादवश पशुओं का मांसाहार करने के कारण नष्ट हो चुकी हैं। यही नहीं अपनी क्षुद्रता से कट्टरपंथ, आंतकवाद, धर्मान्धता, विश्व--विनाशकारी शस्त्रों की होड़ से सम्पूर्ण विनाश की तैयार भी कर ली है।

निस्सन्देह विज्ञान ने हमारे जीवन को अनेका अनेक सुविधाएँ भी प्रदान की हैं। महामारियों, अभावों और अकालों से मानवता को

काफी राहत देकर आज 7 अरब जनसंख्या का जीवन आधार भी बना है। लेकिन यही विज्ञान कहीं हमारे लिये भस्मासुर न बन जाये। समस्त ब्रह्माण्ड में मात्र एक बिन्दु जितना पृथ्वी ग्रह, जहाँ जीव मात्र का उदयकाल पुनः संक्षिप्त तथा मानव जीवन पलक झपकने मात्र है। जिसमें विकास की भी विपुल संभावनायें हैं।

अतः संक्षेप में यही निष्कर्ष है कि विज्ञान एवं धर्म एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी नहीं वरन् सहयोगी एवं पूरक बनें और एक दूसरे से समृद्ध बनें, यही विश्व का त्राण है। जैन–धर्म प्रारम्भ से ही सत्यान्वेषी एवं सहिष्णुता वादी रहा है। यह विज्ञान आधारित मानव धर्म बनने की योग्यता रखता है।

JAIN RELIGION AND MODERN SCIENCE

Stephen Hawking; one of the greatest physicists of our time wrote in the end of chapter, 'The Origin and Fate of the Universe', in his famous book , 'A Brief History of Time'-'So long the universe had a beginning we could suppose it had a Creator. But if the universe is completely self contained having no boundary or edge, it would have neither beginning nor end; it would simply be. What place then for a Creator?' Einstein therefore said, "God is left with little to do. Nature is governed by its own laws."

It is what precisely Jainism predicted thousands of years ago. There was no creator, nature itself is automatic and autonomous to follow its own disciplined laws and principles. When most of the religions -Jewish, Christian , Islam , believed in creation by a Creator. St. Augustine accepted date of about 5000B.C. for creation of the universe. According to book of Genesis it could be not far from the last Ice Age i.e.10,000 B.C.. On the contrary conforming to the present scientific- version, Jainism held the universe was there since infinity "Anadi and Anant", no beginning and no end . There is no God ,

no Creator , nature is autonomous and automatic , a concept sounding more of modern physics than of religion .

Modern Physics states however also of big bang – from crunch to creation, about 14 billion i.e.14000 million years ago, almost infinity, not in terms of geometric progression, but in astronomical terms of time , as it simultaneously states that before that 'singularity', there was no time and even if it was there, it was destroyed including every thing ; say matter, space, forces etc. . It did not practically exist as such.

It does not however appeal to common -sense that before big -bang there was no time nor space or other fundamental entities like particles , gravitation or forces etc. Even if started from a crunch it must have contained all those entities in seed form ;from many to one , seems more reasonable and not vice versa ,because scientific law of matter is that , it is neither created nor destroyed, of course matter and energy are interinvertible but sum total is always equivalent . Hence in Bhagwad Gita in II Chapter verse 12 it is said , " There was never a time when I was not there or when you were not there, nor is it a fact that we here after , shall all cease to be ."As shown earlier Stephen Hawking himself doubted looking to endless expanding nature of universe if it had a beginning or not. There are other important scientific theories of also regarding beginning of nature. "Universe is not defined by one beginning or end as thought by Hawking ," said a cosmologist Roger -Penrose . In fact a universe goes through a succession of beginnings and endings. "It is a cycle following succession of big-bangs

in different aeons." This is what Jainism believes in. Six aeons of different periods, had a cycle.

1 Sukham, Sukhan i.e. Joy Joy-40 million sagropam.

2 Sukham i.e. Joy- 30 million sagropams.

3 Sukham Dukham i.e. Joy and Sorrow -20 million sagropam.

4 Dukham Sukham i.e. Sorrow and Joy - 10 million sagropam {reduced by 42000 years}.

5 Dukham i.e. Sorrow- 21000 years.

6 Dukham Dukham i.e. Sorrow and Sorrow 21000 years.

Total is one 'Avasarpani' or 'Utsarpani', much near the predictions of science, each about 100 million years, a period akin to science than religions . Jainism says there are six substances of which this entire universe is created-soul, matter, force-[helping movement],force-helping bodies to rest i.e. retarding movement , time and space. Science also confirms formation of universe from substances , matter i.e. particles, energy ,or forces of gravitation ,nuclear radiation, electro-magnetic forces, dark-matter, dark-energy; in short forces, forming and expanding universe and opposite ones retarding it.

Broadly, Science accepts all of them except 'Soul'. How the inanimate matter became alive, got consciousness, or even how matter originated , science is still uncertain about it. Science has to move forward from self - imposed limitation of dealing with things material. Knowledge is not compartmentalised. Einstein

said, "Religion without science is lame and Science without religion is blind ."Great modern physicists like W.Heisenberg therefore ventured writing "Physics and Philosophy", "Physics and Beyond", Feyman wrote, "Character of Physical Law" and D.S.Kothari wrote, "The Complementarity Principle and Eastern- Philosophy," etc, etc.

Vinobaji rightly said to the effect that future generations would like religion with scientific background. Present religions are mere foundations, sometimes based on myths, metaphysical speculations or different forms of worship. They have to find unity of being humane in this diversity, as shown by scientific principles. These are Anekant, non-violence, live and let live, perhaps never underlined better than in Jainism.

Since 1960's science has made a quantum-jump in form of Quantum- Mechanics. By using high-energy-accelerators, smashing atoms or sub-atoms like proton etc underneath ,discovered that there were hundreds of particles with different properties. They existed at the time of big –bang or may be even before if such cycles repeated .The deterministic laws of classical physics did not much apply for these particles. These particles are millionth and millionth of an inch. Photon was proved to have dual property, behaving as particle or wave and thus, there were discovered several properties in hundreds of elementary particles. The dual nature has been explained by a great Indian scientist Dr D.S.Kothari as mentioned earlier on principles of Anekant, experimentally as follows .A box with a partition making two compartments A and B and a hole in a partition – a

particle in that box can be in box A, or in box B, in A and still not in A, in B and still not in B, not in A and B. These may be put differently , say [1] positive or [2] negative or [3] mixture of positive and negative or [4] inexpressible [Avyakta] or [5] positive inexpressible or [6] negative inexpressible or [7] mixture of positive negative inexpressible .With multifarious properties of elementary particles dealt by quantum ,any definite view would be crazy and most uncertain; yet much progress in the world due to these discoveries has been made .In certain ranges the principles were found applicable facilitating growth of television, mobiles, internets, in fields of biology etc., etc . W.Heisenberg propounded new law of 'uncertainty' for quantum- mechanics; while old law of say gravity, existing .

Then Neil Bohr gave principle of complementarity . Most of the apparently contradictory properties were complementary like Chinese concept of Yin and Yang, day and night ,labour and rest, mobile and fixed beings, opposites existing together. Carrier particles say photon, gravion, W.Boson and quarks.

Experiments are conducted with cooperation of world's scientists at Cleveland[England] and at CERN [Europe] to find Higgs Boson or God's particle, which lends mass to other particles. The search is on in about 20 km long tunnel by smashing protons at a speed of light to know conditions that prevailed at big – bang. At Cleveland properties of dark-matter and dark energy are specially searched along with Higgs- Boson. Then is the principle of exclusion –no identical particles can coexist *as Kabir said, "When I am there, God is not there and*

when God is there I do not exist , space being too narrow to accommodate both", [i.e. on acquisition of Godhood], so is there the entanglement and confinement principle which implies that all the matter in the Universe was integrated and it therefore behaves in an inter - related manner ,having 'butterfly' effect of raising storm.

The Jain Philosophy of 'Anekant' i.e. 'Syadvad' the way of narrating it, is much similar in emphasis as is the quantum mechanics. Immense are the properties of matter, or end - particles and so are the properties of soul as we move on spiritual path of liberation so will there be ups and down and therefore without wavering shall steadfastly achieve liberation, by removing ignorance, ridding from endless desires, indulgences, passions, being detached seeing truth, knowledge, observing good conduct, laws of conservation as nature gave us.

We earlier observed the material universe is infinite not only in relation to time but also space. Let us first know basics of how universe was constituted. Under strong nuclear force, particles combined to form electrons, protons, neutrons. They then formed atoms to form 122 elements -98 stable and 24 unstable ones. Then were formed molecules, which in turn under the electromagnetic force constituted compounds, millions of chemicals, minerals, rocks and under gravitational and electromagnetic forces formed galaxies, stars, planets etc around them.

The vastness of universe is astounding. Jains also say it is 'Anant' i.e. infinite. There are as per scientists - 200 billion galaxies with each about 100 billion stars and many planets around them. An approximate estimate of

distance of universe may be made, e.g. the sun rays travel at a speed of 1.86 lac miles in a second and thus to reach earth it takes about 8.3 minutes covering about 90 million miles or say 150 million kms. The nearest star to our sun is about 4 light years away, imagine the vastness of space .It is said one may add 24 zeroes after one to have approximation of infinite distance without boundary. How could Jainism predict without any equipments like present giant telescopes at Jodral Bank such immensity of space. Certainly it was great feat of spiritual knowledge, transcendental of time and space .

Modern Physics does not state about forces as mentioned in Jain –Scripture but says universe was formed from matter i.e. particles, their aggregates under influence of strong nuclear and electromagnetic, gravitational forces. Further science says universe ultimately consisted of 4% matter, 20%dark matter and 74% dark energy. It is interesting to note that experiments conducted to assess whether universe was expanding or not has led to the result that it was definitely expanding. It was earlier said that observations through giant telescope of Jodral Bank Observatory, make out that universe through galaxies was expanding. Confirmation of this view was reported in Times of India dated 2, April 2012, biefly as under, " New study confirms of expanding universe driven by dark energy, as Speed Professor Einstein had told." A team of cosmologists of Union of Pertsmouth and Max-Planick Institute of Extra Terrestrial Physics viewed, Big Bang at 14 billion years ago, establishes constant vacuum energy, empty space creating a repulsive force as driving acceleration of

space. Dark energy was not simply an illusion. The question is much solved that how against forces or pulls of gravitation limiting expansion, the universe still expanded." Thus one is force of expansion and other is force for retarding creation .In fact Jainism has much earlier said there were forces helping movement which is called "dharmāstikaya" and the opposite one is called "adharmāstikaya", helping rest . Thus what is lacking is recognition of soul only, out of all six fundamental entities, common to both Science and Jainism .

Modern Science which however has laid down that it took about 10 billion years after big- bang to form earth, as it was in the gaseous form until at 4000 degree C, then again at 700 degree C , to form a seven mile thick crust of earth , followed by 60,000 years of rain causing seas and to reach present levels of hospitable temperature . It had to cover this long span of time . It is only then that it could start accommodating life on our planet .The soup of life was already created of amino-acids, urea , methane, carbon etc, flown to the sea. Life in the form of distinct unicellular animal or plant began still 2.5 billion years after it i.e. only 15 00 million years earlier. Man is just 2-3 million years old almost 10 seconds of a day of period of life which is on our only planet. Here there are again some striking similarities between the evolution as described in 'Origin of Species' by Charles Darwin and Jainism.

The record of evolution is mostly contained in fossils. The life on earth began as unicellular organism, plant and animal only 1.5 billion years ago, much after the big – bang i.e. 14 billion years ago. It took almost ten billion

years since the mother earth itself came in creation and again it took about 1 billion or more years for unicellular organisms to develop into multicellular ones. Life started from sea and then came amphibians at about 3 billion years ago i.e. 30 crore years then in turn came reptiles, 20 crore years ago., then pouched mammals or animals etc with placenta, amongst them were elephants , horses , carnivores animals and even primates , apes ; the ancestors of man , whose existence is not more than about 30 million years ago. How it has some consonance with the jain view of life – species? As we have earlier said science has still not confirmed existence of soul although believing more or less in five other substances. Science has not explained the origin of matter too. Life started as per science with different combinations of carbon, amino acids, methane etc.

It is said that the sustenance that a plant draws from its roots is matter ,but acquires life when there is photosynthesis . Jainism also believes in life in plants and additionally a soul too. Jainism also says all worldly beings have not only life but souls also. We shall describe in detail how worldly souls have not only life but consciousness as well as conscience. But presently we will first deal with differentiation/ evolvement of species. It is accepted in Jainism that unicellular species, is condemned to exist in 'nigod', 'anant' –unending or billion of years . It suffers perpetually, involuntarily for lacking important organic developments and adverse circumstances. It may be larger unicellular life like earth, water, fire, air etc also. Same long innumerable years pass by earning merit by involuntary suffering to get

benefit of being two, three sensed life like ants and so progresses to four and five- sensed animals, which form not only animals but even human beings after meriting such fortunes by destructions of past incurred sins ,derelictions etc. Thus there are human –beings who by dint of right- faith, right- knowledge ,right- conduct, evolved their worldly-souls into great spiritual heights , getting transcendental vision ,much introspection or intuitive abilities to grasp other being's thought and to acquire even omniscience, etc.

Although 'Quantum Mechanics' was developed after 1960's, Jainism has much earlier found basic constituent to form not only physical world but organic life , consciousness and soul in a combined theory of karmas ,also classified into 23 varganās . In this article we can only briefly allude to it. They are broadly as under number [1] is anuvarganā [2] is sankhyāānuvarganā [3] is asankhyāānuvarganā [4] is anatanuvarganā. All these four varganās are almost akin to the concept of sub – atoms i.e. hundreds of particles forming electron, proton, neutron, and then by fusion and fission forming atoms and 'asankhya' atoms, making molecules and 'anant', making the entire physical universe.

Similarly there are different types of bodies having life. They are due to past karmas, 'Āharakvarganā' i.e. transitory body to seek information from enlightened ones.

Then Number – [6], [8], [10], [12] are 'agrahaya,' which all mean unstable.

Then number [7] is 'Tejas'- it accompanies the departing soul to provide necessary nutrition to the body which is to take birth.

Then number -[9] 'bhasha', [11] 'mann'(mind), [13] karma varganā,[15], 'saantar', matter discontinuous, [17] 'pratyek' body varganā sharer,[19]' bādar - nigod'(unicellular),[21]'sukshama-nigod'(unicellular), [24] mahāskanda varganā (all visible matter).

It would be seen that all these are pertaining to consciousness and development of soul. How without any modern instruments such theory of development of physical world through particles , atoms ,etc to consciousness and spiritual growth ,could be developed by Jainism , is surprising and credit may be accorded to those possessing such extra –ordinary vision through spiritualism.

"Sarirā – van – manah – prāna pānah pud galān" ,

['Tattavārth Suttra', by Uma Swati, verse -5:19]

"Suka-duhkha-jivita marnopgra has ca"

['Tattavārth-Suttra', by Uma Swati, verse-5:20]

The matter has assumed form of body, speech, mind even life so also, pain, pleasure and even birth and death, matter becoming animate and conscious. Life is sustained by ingestion and digestion of food and is killed by toxins or fatal things striking the body.

In the field of soul and its great potentials science leaves us in lurch. It has yet reached the stage of knowing what is conscious, what is mind and what are its products and knowledge through it .

"yoga upyog jivesu"

['Tattavārth Suttra',by Uma Swati, verse 5:44]

Meaning thereby that this worldly soul consists not only the clay –cast mould .i.e. our body ,but also has spiritual capacity to earn knowledge, self control, and right -conduct .The path to deliverance is only through amalgam of body and soul, which plays an ennobling role of its purification through pursuit of path relentlessly, as said in the first stanza of Ttattavarth –"Samayag darşan gyān caritrāni moksha mārg"- right vision, faith, enlightened world view and right knowledge and lastly treading such path of shedding attachments and aversions , malice etc. leading to liberation.

It is only the soul power which can control the instincts which are like hundred-headed-hydra. Intelligence is too feeble a rider to control instincts. Soul power is fortified by long practice until emancipation . Those who have practiced it like Lord Mahaveera, Buddha Christ, Kabir, and a host of suffi saints like Khawaja Mohammad Chisti etc. and others in the past and presently like Vivekanand , Srimad Raychand, Gandhiji ,Tolstoy, Ruskin , Lincoln , Romainrolland ,and a number of eminent jain and other acharyas etc, brought succour , freedom for depraved mankind . The soul power is not an illusion like astrology. Therefore real

scientific approach would be, to investigate this power dispassionately and not to deny it stubbornly.

The soul has several merits as the matter possesses several properties as discussed earlier through Quantum-Mechanics. Acharya Mahapragya has said that, "Soul is knower, it is formless, as well as with form. It has life also, and yet it is weightless. It is substance which is conscious as well as conscience. It is knower and also knows the knower." Some such thoughts were also uttered by Einstein that, "he knew about materialis of matter, but would if given next birth, like to know the knower".

We noticed many similarities between Jainism and Modern Science. It is also true that in the evolutionary-scale, man has made giant strides; although it is only through development of mind and intellect. Jainism however stresses that it is our worldly soul's actions, earning merits and demerits , that we make or mar, our future.

Through ignorance, blind-faith, violence, non-cooperation, indulgences, absolute views, fanaticism, fundamentalism, terrorism, etc we act against our conscience ;which has potentiality to rid ourselves of above vices and find ourselves in conformity with the laws of science and nature - 'Anekānt' i.e. non-absolutism and the principle enunciated by Quantum-Mechanics i.e. Principle of uncertainty, complementarity, entanglement of entire universe etc. lead to non-violence, conservation, coexistence etc.

Science however devoid of ethics, would lead to immoral games, by entering into trades, professions, industries which are harmful and hazardous to mankind, destruction of plants and other species and imbalance in the eco- system. The simplest form of non violence is vegetarianism . Much destruction of plant species i.e. about 40% rain forest and much loss of potable water occurred through non vegetarian diet. It is feared that future wars, would be fought to procure this life sustaining scarce commodity.

In international relations also the divorces of ethics lead to self aggrandisement attitude, overlooking the welfare of all mankind. It foments evils like internecine conflicts and wars, which is in the interest of big and powerful countries as they earn by selling and producing weapons, including weapons of mass destruction. Already we are in the throes of blind suicidal nuclear and other weapons' race.

Science is neutral, a knowledge like Alladin's lamp ,to be used for boon or bane. Undoubtedly it has provided great amenities and made life much easier to sustain presently a population of about seven billion and yet much of the population face scourge of starvation and malnutrition and worse still , the fear of extinction.

The way to growth is undoubtedly through Science joining hand with human and scientific religion like Jainism, which will enrich each other in the interest of the entire mankind.

REFERENCES -

1- A Brief History of Time by Stephen Hawking.

2- Complementarity Principle and Eastern Philosophy by Dr D.S.Kothari.

3- Jainism by Mr Narendra Bhandari.

4- Jain Studies and Science by Dr Mahaveer Raj Galeda.

5- Jainism and Modern Science a Comparative Study by Mr Dulichand Jain.

6- Jainism and Modern Science by Mr Narendra Bhandari.

7- Jeev Pudgal Karma Chakra by Mr Jethmal Gulecha.

8- Tattavarth Suttra by Shrimad Uma Swati.

9- Two Million Years Ago, Readers' Digest special publication.

विज्ञान के अनुसार सूक्ष्मतम् वायु काय के जीवाणुओं का संरक्षण किस तरह

इन जीवों को मात्र हमारी खुली आंखों से नहीं देखा जा सकता। केवल खुर्दबीन से दस हजार गुणा या लाख गुणा बड़ा कर ही, वे दिखाई देते हैं। पौधों में एक कोशिका के समान–बैक्टीरिया की कोशिका अपनी दीवार से घिरी होती है। ये वायु, पृथ्वी, पानी से खाद्य पदार्थ लेते हैं। समुद्र के गहरे तल पर झरनों, बर्फीले ध्रुव–प्रदेशों एवं गर्म–चश्मो, झरनों में भी मिलते हैं। लगभग शायद ही ऐसी जगह हो, जहाँ वे न हों। अधिकांश नुकसान रहित हैं। कुछ लाभप्रद हैं। कई घातक भी हैं। बाहरी दीवार इतनी कठोर है कि तापक्रम की चरम विषमता सह सकते हैं। ये सभी सुक्ष्म जीवाणु बैक्टीरिया, फन्जाई (फफूंद),एलगी (काई), प्रोटोजोआ एवं वायरस जातियों में विभक्त हैं।

1. **बैक्टीरिया**:– एक कोशिका वाला–बिना हरित पौधा जाति का जीव, खुर्दबीन से देखा जा सकता है। जैविक वस्तु मृत हो जाने पर उनमें पाये जाते हैं। अपने शास्त्रों के अनुसार यहाँ तक कि युवा की सुन्दर देह भी मरने पर वह जीव उसी मृत देह में कृमि बन सकता है। यह उस कृमि से सहस्त्र गुणा छोटा बैक्टीरिया है। पशुओं की आंतों में उनके भोजन को जुगाली से पचाने में सहयोगी है। खतरनाक बैक्टीरिया से टी.बी., टिटनेस, डिप्थीरिया(गले की बीमारी का बुखार), कोढ़, कोलेरा (हैजा), धनुषटंकार आदि रोग होते हैं। दवाईयां–इनसे स्ट्रेप्टोमाइसिन, आरोमाइसिन, क्लरोमाइसिन दवाइयाँ बनती हैं। कृषि में पौधो की वृद्धि में सहयोगी हैं।

उद्योग–चाय की पत्तियों को पकाने, रंग देने, चमड़े पर रंग लाने में, मृत वस्तुओं के विघटन, विसर्जन में काम के हैं।

2. **फन्जाई**:–बिना हरित–पौधे–जीव–खुंभी, सड़ने वाले आचार, सड़ने वाले फल, पशुओं के मल से कई रोगाणु के कारण बनते हैं। पच्चीस प्रकार की "पेन्सिलिन दवाईयां– एन्टीबायोटिक बनाई जाती हैं। उद्योग–बेकरी, बिस्कुट, ब्रेड, खमीर से पनीर, कृषि में, खाद्य में भी, इडली, डोसे बनाने में काम आती है।

3. **एल्गी**:– काई, लील, पानी के पौधे, हरित पर्ण पौधे। स्वतः अपना भोजन बना लेते हैं। खाद्य प्रोटीन बनता है। भूरी एल्गी से सोडियम, पोटेशियम, आयोडिन मिलता है। हरित पर्ण कार्बन–डाईऑक्साइड ग्रहण कर फोटोसिन्थेसिस प्रणाली से भोजन बनाते हैं, काम में लेते हैं, वृद्धि पाते हैं और ऑक्सीजन उत्सर्जित करते हैं। समुद्र की काई अतः संसार की पहली ऑक्सीजन फैक्ट्री बनी, जिससे जीवों की वृद्धि और विकास हुआ। (प्रोटोजोआ–हरित पूर्ण भी है एवं नहीं भी। वैज्ञानिकों के लिए इसे पौधे या अन्य जीव मानने में अतः समस्या है। जीव की तरह मुंह खुला है। कई प्रोटोजोआ खतरनाक हैं। प्लेसमोडियम–मलेरिया–कीटाणु, मादा मच्छर लेती है, वह मानव रक्त चूसते समय इसे मानव शरीर में डाल देती है जो मलेरिया, डेंगू का कारण बनता है। ये अपनी खुराक एल्गी से पाते हैं।)

4. **वायरस**– खुर्दबीन साधारण से न दिखने वाले बल्कि दस हजार या लाख गुणा बढ़ाकर दिखाने वाले से वायरस नजर आते हैं। खाली जीवित–मानव या जीवधारी के शरीर में ही बढ़ते हैं। डंडाकार भी होते हैं। रोगाणु के कारण पौधों एवं अन्य जीवधारियों में मिलता है, इनसे भोजन सड़ता है। पेट–व्याधि होती है। इकट्ठा अनाज सड़ता है। भवनों को नुकसान, दीवारों का चूना खराब हो जाता है, मकान जर्जर हो जाते हैं। जल विषाक्त हो जाता है। ऊनी, सूती कपड़े गल जाते हैं, लकड़ी किताबें भी। फ्रुट–जूस स्वाद रहित हो जाता है। दूध चाय भी प्रभावित हो जाते हैं। चमड़ी की एलर्जी, शरीर में सर्दी, जुकाम, खांसी, ओरी, अचपड़े होते

हैं। पोलियों का वायरस सबसे सूक्ष्म होता है। आलू, पपीता, भिण्डी, तम्बाकू , पत्तियाँ दुष्प्रभावित हों, दाने–दाने पड़ जाते हैं।

सारांशः–

1. बेक्टीरिया बिना हरित, पौधा जाति का 'जीव'। मृत देह में पशुओं की आंतों में पाये जाते है। जुगाली से भोजन पाचन, दूध से दही। अन्य खतरनाक बेक्टीरिया से टी.बी. टिटनेस, कोढ हैजा हो सकता हैं। उपयोग दवाओं में–Streptomycine, Auromycin, Chloromycin एवं उद्योगों में उपयोगी, चमड़े पर रंग, चाय, पौधे वृद्धि आदि में काम आता है।
2. फंगी बिना–हरित–पौधे–जीव, खुंभी आदि हैं जिससे खमीर , सड़ने वाले अचार, खाद्य पदार्थ, बिस्किट, पनीर 25 प्रकार के पेन्सिलिन एन्टीबायोटिक बनते हैं।
3. एल्गी–पानी में लील, हरित–पर्ण, प्रोटीन, खाद्य–भूरी–एल्गी से सोडियम पोटेशियम।
4. प्रोटोजाआ –हरित–पर्ण भी , नहीं भी। जीव की तरह मुंह खुला। प्रोटोजोआ खतरनाक भी है। क्योंकि वह प्लासमोडियम मादा मच्छर के काटने पर , मानव को मलेरिया रोग पहुंचाता है। उससे एलर्जी, खांसी आदि भी होते है।
5. वायरस– भोजन के स्वाद को बदल देता है। भोजन सड़ता है। पेट की बीमारी होती है। पोलियों, भवनों को भी नुकसान, जुकाम, सर्दी, कपड़े, किताबें सड़ना, पौधे, आलू, पपीता, भिण्डी भी दुष्प्रभावित।

   निगोद में वर्णित जीवों की तरह ये सभी प्रकार के जीव हमारी एक सांस की अवधि में लाखों मर जाते हैं और अनुकूल वातावरण पाकर देह आदि में घंटे भर में द्विगुणितया, कई अधिक बढ़ जाने पर उस व्यक्ति को उससे ग्रसित कर लेते हैं यदि उन्हें रोका न जाये। प्रकृति ने स्वतः हमारे देह में रक्त में रोगनिरोधक गुणसूत्र दिये हैं इसलिए उस शक्ति के रहते हम इनके शिकार नहीं होंगे। सामान्यतः

हमारे किसी कपड़े आदि को मुँह पर लगा लेने से न उनकी रक्षा कर सकते हैं न उन्हें मार सकते हैं।

6. इन्हीं से खोज के आधार पर पूर्व में, प्राण घातक टी.बी. टिटनेस, पोलिया, चेचक, जैसी एवं अन्य कई बीमारियों को समाप्त किया गया अथवा उनका इलाज संभव हुआ। कई हमारे कृषि, उद्योग, खाद्य आदि में उपयोग आते हैं।

7. मेरी छोटी समझ अनुसार वायुकाय की रक्षा का अर्थ वायुमण्डल को विषाक्त होने से रोकना है। इस उपभोक्तावादी एवं येन–केन प्रकारेण रूप से, आर्थिक लाभ कमाने की धुन में अत्यधिक औद्योगिकरण विश्व में हुआ है। जिससे पृथ्वी पर कार्बनडाइआक्साइड एवं अन्य जहरीली गैसे जैसे अधिक मांसाहार से मीथेन, एवं बढ़ते फ्रीज , एयरकंडीशनर जैसे अन्य उपकरणों से क्लोरो–फ्लोरो गैस में इतनी वृद्धि हुई है , जिसने पृथ्वी के कवच, ओजोन गैस को छेद दिया है। ऐसी स्थिति में सूर्य की सीधी किरणें पृथ्वी पर आने से रेडियेशन, कैंसर आदि होने से बहुत नुकसान होता है। ओजोन का यह छेद बढ़ता ही जा रहा है। संयुक्त–राष्ट्र के सभी सदस्य देश ऐसे औद्योगिक देशों के विषैले उत्सर्जन कमकर जीव मात्र को रोगों से बचाकर पृथ्वी पर ऑक्सीजन की सही मात्रा सुनिश्चित करावें। आणविक मिसाईलों के प्रयोग में निरन्तर वृद्धि हो रही है जो वायु को रेडियोधर्मी बना रही है। बढ़ते मांसाहार नें पशुओं के खाद्यपूर्ति के लिये चालीस प्रतिशत वर्षा–वनों को नष्ट कर दिया है। अतः प्राण–वायु आक्सीजन पर भी दुष्प्रभाव होगा। दिन प्रतिदिन भयंकर शस्त्र, गोले–बारूद बनाने की होड़ लगी है। कभी किसी दिन किसी धर्मान्ध, कट्टर पगले द्वारा विश्वयुद्ध के लिए अणु शस्त्रों में आग लगाई जा सकती है। वैसे भी वर्षा वनों की कटाई, वर्षा पर दुष्प्रभाव डालती है। कहते है शिव महादेव ने जहर पीया , एवं अमृत दिया। हरित पेड़ पौधे कार्बनडाईऑक्साइड खाकर सूर्यदेव की साक्षी में हमें ऑक्सीजन देते हैं। अतः पेड़ पौधों का संरक्षण संवर्धन करें। वायुमण्डल के विषाक्तिकरण होने को अधिका–अधिक

सीमित करें एवं हमारी पृथ्वी, वायु, जल, इंधन एवं आकाश को बढ़ती क्षति से बचावें।

कत्लखानों से बढ़ते उद्योगों से नदियों के पेयजल में मलबा, प्रदुषण प्रवाहित किया जाता है। सर्वत्र भारी मात्रा में विश्वभर में औद्योगिकरण के रूप में मुर्गीपालन, हजारों लाखों की संख्या में कृत्रिम संकुचित वातावरण में पालने से वायरस के रूप में समय–समय पर फ्लू, टाइफाइड, कोलेरा के बेक्टीरिया या प्रोटोजोआ के विषाणु, पड़े गंदे पानी में मलेरिया एवं डेंगू जैसी खतरनाक बीमारियाँ और नई नई बिमारियाँ फैलाते हैं।

अतः इन एक कोशीय वायुकाय की जीव उत्पति को अच्छी तरह समझा जाये। वायुमण्डल को विषाक्त होने से रोकने पर कार्य किया जावे एवं उसमें मानव एवं संसार के अन्य जीवों को बचाने के उपाय किये जावें। केवल मुंह पर कपड़ा रखने या बाँधने से संतुष्ट होकर किसी पंथ के प्रतीक मात्र न बन जावें। धर्म जहाँ विज्ञान का गुरु है, उस धर्म को विज्ञान की प्रगति का तथा नई चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा। विशनोई समाज ने जाम्बेजी महाराज के उपदेश पालते हुए एवं पेड़ पौधों एवं वन्य जीवों के संरक्षण के लिये साहसिक बलिदान द्वारा सराहनीय सेवा की है। प्रदूषण बढने से न केवल वायु एवं उनके सूक्ष्मजीव, वरन हमारी पृथ्वी, जल, ईंधन, अग्नि एवं सभी जीव राशि–त्रस, स्थावर, सबको जीवन बचाने का भारी खतरा है। आध्यात्म के आलोक से ही इस समस्या का समाधान हो सकेगा। अतः समस्या को ठीक समझना पहली जरूरत है।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ संख्या	कहाँ (जहाँ अशुद्धि है)	अशुद्धि (वर्तमान)	शुद्ध रूप (पढ़ा जाये)
13	आठवीं लाइन	566 ई.पू.	599 ई.पू.
51	पैरा 2 तीसरी लाइन	Rihabbudutta	Rishabdutta
52	पैरा 3 दूसरी लाइन	Reggriha	Rajgriha
79	सातवीं लाइन	क्रआचारंग	आचारंग
177	दसवीं लाइन के नीचे दोहा	नीचै गोत्रस्य	नीचे गौत्रस्य
209	दसवीं लाइन दोहा	मनुव वादूर	मनुवगादीए

This work provides an actually existing modest model of 'Jains', non - violent living , adopting vegetarianism; truth by patiently appreciating its various aspects, by peaceful coexistence of varied sects and lastly, striving for ethical conduct; absolutely necessary for our survival, with potential for all-round development.

लेखक परिचय

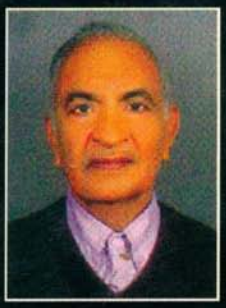

श्री छगन लाल जैन नें आचार्य श्री यतीन्द्र–सूरी जी द्वारा स्थापित 'राजेन्द्र–जैन–गुरूकुल–बागरा' में प्रारम्भिक अध्ययन किया। उसका स्तर सामान्य पाठशालाओं से बहुत अधिक रखा गया। आपने जैन धर्म के पंच प्रतिक्रमण भी , पांचवी कक्षा तक अर्थ सहित सीखे। इन सबका लाभ आपको अपने जीवन, व्यवहार में भी मिला। आपने शिक्षा का स्तर भी उच्चतम बनाये रखने का सतत् प्रयास रखा। आपकी आन्ध्र विश्वविद्यालय की 12 वीं इन्टर में भी तीसरी रेंक आई। श्री जैन ने भारतीय प्रशासनिक सेवा में भी पदोन्नति पाई। आपने जन कल्याण के कार्य–कुछ उदाहरणार्थ–प्रशासनिक सहयोग से–600 सौ हरिजन परिवारों को सभी सुविधायुक्त लगभग निःशुल्क बस्ती श्रीकरणपुर में उपलब्ध कराई तथा वर्ल्ड बैंक द्वारा प्रदत्त विश्व खाद्य–वितरण लाखों मजदूरों में किया एवं किसानों के लिए सिंचाई हेतु नहर से पक्की नालियों के निर्माण का विश्व बैंक के शिथिल पड़े प्रोग्राम को 1100 गांवों के लिए सफलीभूत किया । हजारों भूमिहीन कृषकों को राजकीय भूमि उपलब्ध कराई। आदि , आदि ।

सेवाकाल के समय तथा सन् 92 में सेवानिवृति के पश्चात् भी जो प्रारम्भिक समय से सम्यग्–ज्ञान पढ़ने, प्रसार करने का बीज बोया था वह बढ़ता गया। नवकार मंत्र पर लिखना प्रारम्भ कर, तत्वार्थ सूत्र का सरल हिन्दी व अंग्रेजी में अनुवाद लगभग मूल के अनुकूल किया। जैसे जैन जगत के अधिकारी प्रोफेसर श्री सागरमल जी ने अपनी भूमिका में लिखा है। अब इसी क्रम में लेखमाला संग्रह जो जैनों के संक्षिप्त इतिहास, दर्शन, व्यवहार एवं विज्ञान व जैन दर्शन के समन्वय पर प्रस्तुत है। अंतिम लेख नवीनतम वैज्ञानिक खोज पर आधारित हैं। ये काफी विस्तार से लिखे गये हैं। इन विषयों पर स्वतंत्र ग्रंथ लिखे जा सकते हैं। लेकिन पाठकों के लिये अतः सार रूप में सुलभ किये गये हैं। लेखों को लिखने में आपकी पुत्रियों डॉ. श्रीमती संतोष जैन व डॉ. श्रीमती तारा जैन की भी भागीदारी रही है।

मुनि श्री रिषभविजय जी की प्रेरणा से तथा वर्तमान आचार्य श्री रवीन्द्र सूरी जी के आशीर्वाद फलस्वरूप ही यह लेख–संग्रह पाठकों की सेवा में पेश है।श्री छगन लाल जैन द्वारा पुनः पुनः हृदय से इन्हें वन्दन किया जाता है । जन–जन के आराध्य देव श्री राजेन्द्रसुरी जी के चरण कमलों में लेखक द्वारा परम विनम्रता पूर्वक यह ज्ञान पुष्प अर्पित है।